डाक-पंजीयन म.प्र./भोपाल/4-472/2024-26
पोस्टिंग दिनांक : प्रतिमाह दिनांक 2 से 3, पृष्ठ सं. 134
प्रकाशन दिनांक : 1 से 1 प्रतिमाह

आर.एन.आई क्र. : 38470/83
आई.एस.एस.एन. क्र. : 2456-7167

मूल्य 50/-

अक्षरा

233

साहित्य की मासिकी

42 वाँ वर्ष

अगस्त 2024

सावन का झूला इस बार
इतना बड़ा डालना
जिसमें समा जाए संसार।
उस डाली पर
जो फैली है आसमान के पार
उस रस्सी का
कोई न जिसका पारावार!
एक पेंग में मंगल ग्रह के द्वार
और दूसरी में
इकदम से अंतरिक्ष के पार!

- नवीन सागर

साधो सबद साधना कीजै
अजित वडनेरकर

स्तंभ
सुरेश पटवा,
रामेश्वर मिश्र पंकज,
कुसुमलता केडिया

अनुवाद
विभा खरे

आलेख
प्रमोद पुष्कर, करुणाशंकर उपाध्याय,
शंकर शरण, प्रमोद भार्गव, सुनील देवधर,
सुधा गुप्ता अमृता, चंदन कुमारी

शोधालेख
अजीत कुमार पुरी, सुनीता अवस्थी,
अनामिका, अनिता.पी.एल, संगीता सिंह,
कीर्ति माहेश्वरी, गौरव गौतम, बिभा कुमारी

स्मरणांजलि
कृष्ण कुमार यादव

यात्रा वृत्तांत
गोवर्धन यादव

व्यंग्य
संतोष श्रीवास्तव

आत्मकथ्य
ओम उपाध्याय

कहानी
रेनू श्रीवास्तव, देवांशु पाल, रजनी शर्मा बस्तरिया

कविता
दिनकर कुमार, गरिमा सक्सेना, लक्ष्मीनारायण बुनकर

दोहे
जयजयराम आनंद

गीत
गिरीश पंकज

अक्षरा
अंक-233
मूल्य 50/- रुपये

वरिष्ठ छायाकार
जगदीश कौशल

रमेश बक्षी

जन्म - 15 अगस्त 1937
प्रयाण - 17 अक्टूबर 1992

हिंदी साहित्य में लीक से हटकर प्रयोगात्मक कहानियाँ लिखने के लिए बहुचर्चित रहे श्री रमेश बक्षी जी का जन्म 15 अगस्त 1937 को हुआ था। उन्होंने क्रिश्चियन कॉलेज इंदौर से एम.ए. हिंदी में किया था। वे बचपन से ही एकांत प्रिय थे। कला और साहित्य के प्रति उनका विशेष रुझान था। अपने लेखन में नए प्रयोग और मुहावरे गढ़ने का भी उन्हें विशेष शौक था। शुरुआती दिनों में वे रमेशचंद्र बक्षी 'प्रत्युष' नाम से लिखते थे।

छटे दशक के दौरान वे इंदौर की शनिगली में रहते थे। इंटक के दैनिक जागरण में साहित्य संपादक थे। तब नई दुनिया इंदौर में सुविख्यात व्यंग्य लेखक श्री शरद जोशी जी साहित्य सम्पादक थे और जाने-माने पत्रकार श्री राजेन्द्र माथुर जी संपादकीय विभाग में थे। ये तीन मूर्तियों ने बाद के वर्षों में कलकत्ता, मुंबई और दिल्ली में पहुँचकर मध्यप्रदेश का गौरव बढ़ाने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। शरद जी और बक्षी जी इंदौर छोड़कर भोपाल आए और फिर अपने-अपने कारणों से भोपाल छोड़कर मुंबई और कलकत्ता चले गए।

रमेश बक्षी मध्यप्रदेश के उन रचनाकारों में से थे जिन्होंने एक कहानीकार के रूप में बहुत जल्दी अपनी अलग पहचान बना ली थी। साठोत्तर के दौर में विद्रोही स्वर वाले रमेश बक्षी मानवीय रिश्तों और पीढ़ियों के टकराव को रेखांकित करने वाली कहानियाँ लिखने वाले सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं -

(कहानी संग्रह) मेज पर टिकी कुहनियाँ, कटती हुई जमीन, दुहरी जिंदगी, पिता दर पिता, एक अर्मूत तकलीफ, मेरी प्रिय कहानियाँ, दस प्रतिनिधि कहानियाँ। (उपन्यास) हम तिनके, किस्से ऊपर किस्सा, अट्ठारह सूरज के पौधे, बैसाखियों वाली इमारत, चलता हुआ लावा, खुले आम, (नाटक) देवयानी का कहना है, तीसरा हाथी, वामाचार, छोटे नाटक, एक नाटककार, कसे हुए तार, खाली जेब, (व्यंग्य)गुस्ताखी माफ, अपने-अपने लतीफे, कविता-संग्रह बूमरंग, (फिल्म) सत्ताइस डाउन।

दुबले पतले, लंबे गौरवर्ण, वाणी में मिठास भरे, अपनी रहस्यमय आँखों पर बड़े फ्रेम का चश्मा लगाए रमेश बक्षी नाम के इस आकर्षक व्यक्तित्व से मेरा पहला परिचय सन् 1960 में भोपाल में हुआ था। जब वह 24-25 वर्ष के युवक थे। शासकीय महाविद्यालय में हिंदी के व्याख्याता थे और साउथ टी.टी. नगर में पोस्ट ऑफिस के बगल वाले शासकीय आवास में रहते थे। उन्हीं दिनों मैंने उनके घर जाकर उनके तथा उनकी पहली पत्नी एवं पिता जी माता जी के साथ उनके फोटो क्लिक किए थे। उन दिनों कहानी लेखन के अलावा वह कुछ कलात्मक कार्य भी करते थे जिनका मैंने छायांकन किया था।

अक्षरा

233

यू.जी.सी. द्वारा मान्यता प्राप्त
42 वाँ वर्ष

मनोज श्रीवास्तव
प्रधान सम्पादक

संजय सक्सेना
प्रबंध सम्पादक

जया केतकी
सम्पादन

सुधा बाथम
अक्षर-संयोजन

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 500 रुपए
दस वर्षीय सदस्यता शुल्क : 5000 रुपए
एक प्रति 50 रुपये
विदेशों के लिए : एक अंक : 10 डॉलर, वार्षिक : 120 डॉलर
चेक या ड्राफ्ट 'म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति- 'अक्षरा' के नाम देय
ऑनलाइन पेमेंट के लिये- इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल
Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

सम्पर्क : म.प्र. राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल - 462002 (म.प्र.)
दूरभाष : 0755- 2660909, (लेखाविभाग-2661087)
ई-मेल - **myakshara18@gmail.com**
hindibhawan.2009@rediffmail.com
वेबसाइट - **www.एमपीराष्ट्रभाषा.com**

इस बरसात के छोटे-छोटे कृमि तक में जो सौंदर्य दिखाई पड़ता है, वह किसकी विभुता का प्रतीक है? मैं तो उस वीर बहूटी को देखकर चकित हो गया था। जिसे इतनी प्रीति से रचा गया है। सुबह-सुबह दिखीं ये। मेरा पाँव पड़ते-पड़ते रह गया। वैसे इतनी सावधानी कहाँ रखी जाती है। पर वो तो कुछ ऐसा था कि जिस राह पर हम लोग चल रहे थे, उस राह पर बहुत से भुनगे थे जो सामने आ रहे थे। ध्यान से देखा तो पता लगा कि चींटे थे जिनके पर निकल आए थे। वे छोटे-छोटे हेलीकॉप्टर यहाँ-वहाँ सब तरफ थे। उनसे नीचा मुँह किए निकलो तो नीचे भी चींटे थे जो ड्रोन बनकर उड़ने की तैयारी में थे। ये वो ग्लाइडर कीट नहीं थे जो बड़ी दूर-दूर तक चले जाते हैं। ये तो चींटों के अंतिम समय के या निषेचन समय के सूचक थे।

इनके कारण नीचे भी सावधानी से देखकर चलना पड़ रहा था। सो इनके द्वारा कराए गए पूर्वाभ्यास के कारण ये मख़मल-सी मसृण वीर बहूटी बच गईं पैरों के नीचे आने से। कैसी अंतर्निर्भरता है सृष्टि में। एक मरता है ताकि दूसरा बच सके। क्या इस वीर बहूटी को कभी ज्ञात होगा कि वह किसकी आसन्न मृत्यु से अभी-अभी स्वयं की मौत की आसन्नता से सुरक्षित रह सकी है?

कैसा है यह विश्व जहाँ जब कोई परिदृश्य से अदृश्य हुआ जाता है तब ही दूसरे अधिक सुंदर, अधिक मृदुल का प्राकट्य होता है। सबके अपने-अपने मौसम हैं। इन चींटी-चींटों के लिए कैफी आज़मी के शब्दों में 'जान देने की रुत' आ गई है। और इस इन्द्रवधू के लिए वर्मा मलिक के शब्दों वाली 'पिया मिलन की रुत आई'।

या जीवों में जैसे मेटिंग का मौसम होता है, क्या वैसे ही मरने का मौसम भी होता है। जैसे ये मानसून की पहली बारिश है और ये चींटी-चींटे मर रहे हैं। मरते हुए भी इस वीर बहूटी के काम आए जिस पर मेरा पैर न लगा। और लोग ऐसे बलिदान के बावजूद भी नहीं बख्शते। कहते हैं कि मरते समय चींटी के भी पर निकल आते हैं यानी जो मुहावरा भी बना वह भी दंभ और अहंकार को लेकर बना है। और क्या पता कि ये जिनके पंख निकल आए हैं, वे मरने के लिए नहीं हैं, निषेचन के लिए निकले हों और वे इसी कारण से स्वयं अपना पार्टनर तलाश रहे हों और उसी कारण इस नई-नई वधू की सुरक्षा के लिए भी उतने ही चिंतित हों। क्योंकि इन्हीं के कारण हम नीचे मुख किए चलते रहे थे और याद आतीं रहीं वे पंक्तियाँ -

Turn, turn thy hasty foot aside,
Nor crush that helpless worm!
The frame thy scornful looks deride
Requir'd a God to form.

और इस वीर बहूटी ने तो शर्तिया साथ ले लिया है ईश्वर का अपनी निर्मिति में। इसीलिए तो संस्कृत में इसे हरिहूति कहते हैं। यह मौसम है ही हरीतिमा का। उसमें हरि के ही दर्शन होते हैं। यह जो तुलसी चौबारे में है, इसका नाम हरिप्रिया है। ये जो वृक्ष मौसम की पहली बारिश में झूमने लगे हैं, ये हरिद्रुम कहलाते हैं। ये जिस घास पर हम क्षण भर को बैठे थे इसे हरितालिका कहते हैं। ये जो कदंब मेरे घर के सामने है, इसे संस्कृत में हरिप्रिय कहते हैं। ये जो जवाकुसुम खिली हुई है, यह हरिवल्लभा है। ये जो पीपल इन हवाओं में सिर हिला रहा है, हरिवास के नाम से जाना जाता है। ये कुशघास हरिदर्भ है और ये शाक-सब्जी हरितक। ये हल्दी हरिद्रा है। ये पत्तों में जिंदगी की तरह जिसका वजूद है, वह क्लोरोफिल हरतिल है। यह हरियाली अमावस्या जो आएगी, यह हरियाली तीज जो आएगी, यह प्रकृति में हरि के होने का हर्षोत्सव होगी। हरि को श्रृंगारित करने ही तो हरसिंगार खिला। जब कल्पना भी की मनचाहे फल देने वाले तरु की तो उस कल्पवृक्ष को भी हरिचंदन कहा।

सो यह हरिहूति भी प्रकृति में परम पुरुष की उपस्थिति का ही प्रमाण है। इस मानसून में निकली है क्योंकि है तो इन्द्रवधू। और इन्द्र हैं वर्षा के देवता। अब यहीं हमारे वामी नाराज भी हो सकते हैं कि ये इसे कोई सेकुलर नाम दिया जाना था। ये क्या देवता का नाम दे रहे हैं जैसे ये इन्द्र की ज़रखरीद लौंडी है। लेकिन उन्हें कौन समझाये कि वधू होना क्या होता है। देखो न कि यह एक सुहागन का लाल जोड़ा पहन के निकली है। इंद्रवधू इसे बरसात में निकलने और इस सुहागन वाले लाल जोड़े के कारण कहा गया होगा पर मुझे तो लगता है कि शायद नववधू की तरह यह छूते ही लज्जा में जो सिकुड़ जाती है तो

इसलिए भी –

ज्यों-ज्यों परसे लाल तन त्यों-त्यों राखे गोय।
नवलवधू डर लाज तें इन्द्रवधू सी होय।।

वाकई एक नववधू की तरह लगती है यह वीर बहूटी। लेकिन मैं तो यह सोचकर हैरान होता हूँ कि यह कृमि है, कि कविता है और वह दृष्टि जिसकी भी रही हो कि जिसने इसमें एक वधू को देखा, पर वह कैसी प्रीतिपूर्ण दृष्टि थी –

आधे नखकर आँगुरी, मेंहदी ललित विराजि।
मनु गुलाब की पाँखुरी, वीरबधू रहि छाजि॥

ठाठ-बाट कम क्यों होंगे। आखिरकार इन्द्र की वधू है और चाहे कितना ही नई समझ के सेकुलरिज्म का विपरीत दबाव हो, वह भी कुछ इसी वधू की तरह का है। ऐसा नाम सुनते ही सिकुड़ जाता है ये। इसके लिए कोई दूसरा नाम रखते भी क्या? हाँ एक नाम और था इसका। इसकी पीठ पर जो सुर्ख़ रंग था, वह अग्नि या अंगार-सा भी लगता है। इसीलिए तो रीतिकालीन कविहृदय ने कहा-

छन परभा के छल रही चमक मार करबार,
बीरबधू के ब्याज रीं दहकत आज अंगार।

और शायद इसी कारण संस्कृत में इसे अपेक्षाकृत सेकुलर नाम से 'अग्निरजा' भी कहा गया। पर क्या करें इन मुए भारतीयों का। उन्होंने तो हर जगह देव-देवता घुसा रखे हैं। तो इसका यह अग्निरजा शब्द भी काफी नहीं क्योंकि अग्नि तो इनका ऋग्वेद की प्रथम ऋचा से चला आने वाला देवता है। दरअसल इस इन्द्रवधू का सेकुलराइजेशन प्रोजेक्ट इसलिए जरूरी है कि हम प्रकृति की इस चीज का अपने लिए बेहिचक भोग कर सकें। कि भले ही आयुर्वेद के आधार-ग्रंथों में इस वीर बहूटी का भूलकर भी उल्लेख न हो, कुछ घटिया लोग ये माने बैठे हैं कि वीर बहूटी के पाँव तथा सिर निकाल कर जो अंग बचें, उसे पान में रखकर कुछ दिन लगातार सेवन करने से फ़ालिज रोग दूर होता है। ऐसा सुझाने वालों को फ़ालिज मार क्यों नहीं जाता। इसी तरह आजकल घटिया वैद्यों और यूनानी शिफाखानों ने नामर्दी दूर करने की एक दवा बनाई है जो इस कीट को मारकर ही बनती है। वो दरअसल ऐसा है न कि एक निर्वीर्य समाज वीर बहूटी नाम से ही उसमें अपनी नपुंसकता का निराकरण ढूँढ़ता है। यह वीर की ही वधू हो सकती है। क्लीब की तो यह विक्टिम है। यह वीर वधू थी क्योंकि यह इन्द्रवधू थी और इन्द्र चूँकि वज्रधारी हैं, इस कारण संस्कृत और सुसंस्कृत समय में इस वीर बहूटी का एक नाम वज्रगोप भी था, इंद्रगोप भी था। इन्द्र इन्हें सुरक्षित रखते थे।

यह एक विचित्र-सी बात है कि गाँवों में कहीं इन्हें डुकरिया भी कहते हैं। बूढ़ी। क्या इसलिए कि जैसे बूढ़ी अम्मा की पीठ झुककर ऐसी हो जाती है जैसे कोई गठरी उठाकर चल रही हो, वैसे भी यह बूढ़ी घोड़ी लाल लगाम भी अपनी पीठ पर बोझा लादे धीरे-धीरे चलती नज़र आती है? बिहारी ने तो यही कहा था –

कुढँगु कोप तजि रँगरली करति जुवति जग जोइ।
पावस गूढ़ न बात यह बूढ़नु हूँ रँग होइ॥

उनकी बूढ़नु यही वीर बहूटी है और बिहारी कह यह रहे हैं कि देखो, नटखटपन और गुस्सा त्याग संसार की युवतियाँ अपने प्रीतमों के संग रँगरलियाँ (विहार) करती हैं। और तो और, यह बात भी छिपी नहीं है कि इस वर्षा-ऋतु में बूढ़ियों (वीर बहूटियों) में भी रंग आ जाता है-उमंग उमड़ आती है। (फिर युवतियों का क्या पूछना?)

बिहारी के यहाँ उसे बार-बार 'बूढ़' ही कहा गया है –
रस की-सी रुख ससिमुखी हँसि-हँसि बोलति बैन।
गूढ़ मानु मन क्यौं रहै भए बूढ़-रँग नैन॥

कि यह चन्द्रवदनी प्रेम की-सी चेष्टा से हँस-हँसकर बातें करती है, उसके हृदय का मान गुप्त कैसे रह सकता है, (फलतः) आँखें वीर बहूटी के रंग की (लाल-लाल) हो उठी हैं। तो नवयौवना की बात करेंगे और वीर बहूटी को बूढ़ भी बोलेंगे। बड़ी नाइंसाफ़ी है। पर चलिए दृष्टि-दृष्टि का फ़र्क है। जो एक को वधू नज़र आती है, वही दूसरी को डुकरिया। यों गाँव में डुकरिया शब्द बड़े स्नेह के साथ भी बोला जाता है।

पर जो भी हो सच तो यह है कि अब उन्हें मार-मार के दुर्लभ बना दिया गया है। कैसे होते हैं वे लोग जो इतनी निरीह, इतनी मासूम, इतनी सुंदर रचना को भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरह से नष्ट कर देते हैं। कभी तो वे इतनी ज्यादा थीं कि जायसी लिखते थे –

कोकिल बैन पाँति बग छूटी / धन निसरी जनु बीरबहूटी।

इतनी कि तुलसी को बारिश में मेंढकों से पहले उनका ध्यान

आता था और वह सही भी है। जैसे अभी यह बारिश की शुरुआत है। मेंढक अभी नहीं दिख रहे पर ये वीर बहूटी दिख रहीं हैं जगह-जगह। तो तुलसी ठीक ही इन्हें पहले याद करते हैं -

बीर बहूटी बिराजहिं दादुर धुनि चहुँ ओर।
मधुर गरज धन बरखहिं सुनि-सुनि बोलत मोर॥

और कहाँ अब वे इतनी विरल होती जा रही हैं। खैर तुलसी की क्या कहें। जब इतनी पोयटिक प्रेजेन्स वाला कीट उनके सामने आएगा तो वह उनकी कल्पनाशक्ति पर छा ही जाएगा। वैसे भी यह कुछ अंचलों में राम की गुड़िया के रूप में ही जानी जाती है। उनकी ममता जितनी गिलहरी पर थी, उतनी इस नन्हीं सी जान पर भी। फिर यह क्यों नहीं होता कि राम के शरीर पर जब उनके रक्त के छींटे निकल आए थे तब तुलसी को यही वीर बहूटी की उत्प्रेक्षा सूझ पड़ी थी -

श्रोनित छीट छटानि जटे तुलसी प्रभु सोहैं महाछवि छूटी
मानो मरकत सैल बिसाल में फैलि चलीं बर बीर बहूटी

और राम का रक्त तब क्या आज तक भी बहाया ही जा रहा है। कुछ लोगों का तो यह प्रिय शग़ल है। पर काश कि हम यह महसूस करते कि यह पृथ्वी राम का ही शरीर है और ये बीर बहूटियाँ उनकी धमनियों का रक्त हैं।

यह हरियाली का माह है। हरियाली तीज और हरियाली अमावस्या मनाने वाले भारत का वास्तविक पर्यावरण दिवस तो इन्हीं दिनों पड़ता है। शास्त्रों में इन्द्र, सूर्य और सिंह को भी हरि कहा गया है और विष्णु, कृष्ण और राम को भी। जीवन की हरीतिमा से जुड़े हुए हैं ये समस्त पर्याय। इन्द्र की वर्षा भी उस हरियाली के लिए उतनी ही ज़रूरी है जितनी सूर्य की ऊष्मा जिससे फ़ोटोसिन्थेसिस संभव होती है। सिंह तो उस बायोस्फीयर का प्रतिसाद है ही। विष्णु तो साक्षात् जीवकार ही प्रत्यक्ष होते हैं। प्रकृति उन्हीं की है-राम और कृष्ण उन्हीं के रूप। उसमें आभा फूट पड़ती है। राम का जीवन इसी हरित का चुनाव है। महलों के कृत्रिम वातावरण से निकलकर वे शाद्वल की शोभा तक पहुँचते हैं। भवन से वन तक उनकी यात्रा सजावट से सहज तक की यात्रा है, नुमाइश से निसर्ग तक। 14 साल तक प्रकृति का साहचर्य। प्रकृति जिसका एक नाम अदिति भी था। अदिति से ही देवत्व फलित होता है। हरि हर्षित करते हैं तो इसी शस्य श्यामलता से पाई शक्ति के आधार पर। उनका ऊर्जायन इसी हरियाली के बीच हुआ।

एक वह समय था जब अरण्य में शिक्षा पाया बटुक दीक्षित होकर समाज में लौटता था। एक समय यह है कि समाज में शिक्षित होकर हमारा युवा समाज से ही कट जाता है। वन में बॉटनी ही नहीं सीखी जाती थी, वनस्पतिशास्त्र बल्कि बोधि और संबोधि के अन्य प्रकार भी उपलब्ध होते थे। राम, बुद्ध और महावीर तीनों प्रासाद की जगह प्रकृति को चुनते हैं। ऐसा करके वे दिए हुए और मिले हुए का उपभोग करने की जगह जीवन को एक एडवेंचर बनाते हैं। कुछ तो होगा कि जिसके कारण तुलसी को हरिप्रिया कहते हैं, वृक्ष को हरिद्रुम। हरियाली तीज और हरियाली अमावस्या प्रकृति की पूजा के पर्व हैं, उनमें हरि को तो उपस्थित होना ही है। जब देवउठनी ग्यारस पर तुलसी की पूजा होती है और आँवला नवमी आदि कितने ही वृक्ष संबंधी त्यौहार मनाए जाते हैं तो सभी में हरि ही झाँकते हुए प्रतीत होते हैं। कुछ तो होगा कि दूब को हरितालिका कहा गया। मृग को हरिण, रत्न को हरितोपल, आकाश में चंद्रमा में उनकी झलक देखी गई जब उसे हरिणांक कहा गया। समुद्र की सुलभ मछली हरिपृष्ठा है तो नाग की दुर्लभ मणि हरिनग। विश्व में विष्णु को व्याप्त देखने वाली इस मानसिकता ने प्रकृति को प्रभु की सत्ता से चर्चित पाया तो जगह-जगह उनकी याद के दीपक जलाए। चरणदास जी की बानी से एक पंक्ति उद्धृत करें, तो 'जो बूड़े हरिभक्ति में सोई उतरै पार।'

पौधों में देवानुरक्ति का संकेत पौधों के नामकरण माध्यम से हमारी संस्कृति ने दिया था। कदम्ब को हरिप्रिय या तुलसी को हरिप्रिया कहने के पीछे पौराणिक कथाएँ हैं लेकिन उनके पीछे वृक्ष और वन को उपभोक्तावादी दृष्टि की जगह एक श्रद्धा और आत्मीयता देने का भाव भी है। आम को शिववल्लभ कहने या देवदार को देवदारु कहने, पलाश को ब्रह्मद्रुम कहने और बबूल को ब्रह्मशल्य कहने, मौलसिरी को महापाशुपत कहने और सहजन को कृष्णबीज कहने, साल को देवधूप कहने और बरगद को शिवाह्वय कहने, कमल को विष्णुपद कहने और गुलदाउदी को शिववंती कहने, चमेली को स्वस्तिका कहने, सूरजमुखी को आदित्यभक्ता कहने और पीपल को देवसदन कहने वाली इस संस्कृति के बुनियादी अभिप्राय क्या थे?

क्या ये पागल और बचकानी दुनिया थी या इसके पागलपन में भी एक 'मेथड' थी और इसके बचकानेपन में भी एक तजुर्बा था? सिर्फ पौधों को ये नाम देकर अपने पर्यावरण-प्रेम की

पूर्ति करने का मक़सद नहीं था? जुगनू को इंद्रगोप और वीर बहूटी को इंद्रवधू कहने वाले ये संस्कार छोटे-छोटे कृमि-कीट को सम्मानित करते थे। पलटू साहब को 'हरि' पर यही विश्वास तो था-'हरि को भजै सो बड़ा है जाति न पूछे कोय।' सूरदास को भी यही भान था-हरि, हरि, हरि सुमिरौ सब कोई/ऊँच नीच हरि गनत न दोई।। तो ये छोटे-छोटे कीड़े भी ईश्वर के नाम-संस्पर्श से अनुप्राणित थे। वे तुच्छ न थे। ईश्वर के रूपों में से थे। मनुष्यों से यह नाम-कल्पना पशुओं को जोड़ रही थी।

वह अंतर्निर्भरता और सिम्बाओसिस के वैज्ञानिक सिद्धांत की काव्याभिव्यक्ति थी। इसलिए इसने पृथ्वी का ही एक पर्याय हरिप्रिया रखा। प्रकृति और परमात्मा का यह युगल हमारी सैद्धांतिकी में निरंतर रहा। बावजूद इस अंतर के कि प्रकृति की परिणतियाँ होती हैं, परमात्मा का प्रसाद होता है।

आज हम आधुनिक लोग पृथ्वी के रहस्य को उघाड़ देने का दावा करते हैं- सॉल बेलो जिसे 'विश्वास की झाड़पोंछ' (House cleaning of belief) कहता है। लेकिन प्रकृति को इस तरह नंगा कर जिस उपभोक्तावाद को हमने पनपाया है, वह अनंत का अपमान है। वह वर्तमान भविष्य को अधिकतम विपन्न कर रहा है, कि हम अपने नाती-पोतों के क़र्ज़दार बन रहे हैं। वहाँ टाइम की इटर्निटी से टकराहट है। प्रकृति में परमपुरुष की उपस्थिति के मायने एक सस्टेनेबल विकास के मायने थे कि बिना इस व्याप्ति के, बिना हरि की इस मौजूदगी के विश्व एक वंध्या भूमि है।

सभी जगह ईश्वर। सर्व खल्विदं ब्रह्म। जगदीश्वर की संकल्पना भारतीय विश्वास और तर्क प्रणाली के एक बड़े आधार को उल्लिखित करते हैं। इस विश्वास-तर्क प्रणाली ने प्राचीन समय से ही दुनियाभर को प्रभावित किया है। वर्जिल (70-19 ई.पू.) ने कहा : आकाश और पृथ्वी, जलमय मैदान, चंद्रमा का चमकता मंडल, सूर्य और सितारे सब उसके भीतर सक्रिय एक आत्मा (Spirit) से सशक्त होते हैं। विलियम वर्ड्सवर्थ ने कहा 'एक गति और एक आत्मा सभी चीज़ों को अंत:चालित करती है। मैंने एक उपस्थिति महसूस की है जिसका अधिवास सूर्यों के प्रकाश में है, गोल सिन्धु और जीवंत वायु में, नीले आकाश में और आदमी के मन में-एक गति और एक आत्मा जो सभी चीज़ों में प्रवहमान है' (टिंटर्न एबी)। जोहानन वोल्फ गैंग वॉन गोएथे (1749- 1832) ने कहा कि-'दिव्य शक्ति सर्वत्र व्याप्त है।' भगवान संसार को बाहर से नहीं भीतर से ड्राइव करता है, पूरे विश्व को अपने में आश्रय देता है।

योगवाशिष्ठ में भी ऐसा ही कहा गया था-परमात्मा न तो हमसे बहुत दूर है और न ही कठिनाई से प्राप्त होता है। वह अपनी देह के भीतर ही है और आत्मानंद के रूप में प्रत्यक्ष है-**नह्येष दूरे नाभ्याशे नालभ्यो विषमे न च स्वान्दा भासरूपोडसो स्वदेहादेव लभ्यये (11 3/6/3 I)**

जॉन क्लेयर ने कहा कि जहाँ फूल खिलते हैं, ईश्वर है। फूल ईश्वर के हस्ताक्षर हैं। ट्रेनीयसन अल्फ्रेड (1809-1892) ने कहा-हम महसूस करते हैं हम कुछ नहीं हैं। सब कुछ तू है। तुझमें है। हम महसूस करते हैं कि हम कुछ हैं और वह कुछ भी तुझसे आया है। आस्कर वाइल्ड (1854-1900) ने कहा- हम उससे एक हो जाते हैं जिसे हम छूते और देखते हैं। एक विराट महान है। तुलसी का जगत में ईश्वर देखना ओल्ड टेस्टामेर की उस व्यवस्था से काफ़ी भिन्न है, जहाँ भगवान ने आदम और ईव को पृथ्वी सौंप दी ताकि वे उसमें से हर चीज़ का इस्तेमाल कर सकें। इस व्यवस्था से तो ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति (जगत) के अपने आप में कोई अधिकार नहीं है, वह सिर्फ मनुष्यों के उपभोग के लिए है। तुलसी के लिए तो जगत में ईश्वर का होना-सृष्टि का स्वयं में एक मन्दिर होना है। प्रदूषण उस मन्दिर को अपवित्र करता है। हम इस जगत में निर्वासित होकर नहीं पड़े हैं। यह हमारा घर है। यदि हम अपनी कल्पना से यह कृत्रिम अड़ंगा खड़ा कर लेते हैं कि हमारा वास्तविक घर यह नहीं है, बल्कि मृत्यु के पार किसी दूसरी जगह है तो हम 'जगदीश्वरं' के सिद्धांत के कहीं आसपास भी नहीं हैं। 'जगदीश्वरं' का तर्क प्रकृति और खगोल के उत्सव का तर्क है। इस जगत सर्वस्व से एकात्म होना ईश्वर से मिलना है। ईश्वर को घटघटवासी, जगदात्मा, जगन्नाथ, त्रिभुवनेश्वर, त्रिलोकीश्वर, विश्वंकर, विश्वंभर, विश्वकर्मा, विश्वनाथ, विश्वपाल, विश्वात्मा, विश्वाधिप, विश्वेश्वर, सर्वांतर्यामी, सर्वेश्वर कहकर हम इसी बात की स्वीकारोक्ति करते हैं कि ईश्वर से एकाकार होने का अर्थ विश्व या जगत से एकाकार होना है, उस चिन्मयी शक्ति से सायुज्य जो इस पदार्थ को अर्थ देती है। जब जगत और ईश्वर का ऐक्य है तो ईसाइयत या इस्लाम की तरह यहाँ ऐसा नहीं होगा कि भगवान आकाश को स्क्रोल की तरह एक दिन लपेट लेगा और पृथ्वी पर अग्निवर्षा करेगा जैसा कि जीसस, मुहम्मद या ओल्ड टेस्टामेंट के मसीहा हमें बताते हैं क्योंकि यदि जगत का यही सब कुछ होना है तो फिर इसकी सुरक्षा के लिए हम संघर्ष क्यों करें, तब तो पर्यावरण का विनाश कर हम भगवान के रास्ते में उसकी

सहायता के लिए खड़े हो जाएँगे, लेकिन यदि जगत और ईश्वर सारूप्य हैं और यह सृष्टि उसी का चिद्विलास है तो हम उसको, लीला के इस मंच को अपावन क्यों करेंगे?

ऋग्वेद में कहा गया था कि एको विश्वस्य भुवनस्य राजा। वह सब लोकों का एकमात्र स्वामी है। तो आज जीवन धरती के विशाल हृदय भर में धड़कता है। यहाँ जगदीश्वर की बात करते हुए हम उस विचार प्रणाली से अलग होते हैं जो एक 'पर्सनल' या नृतत्वशास्त्रीय ईश्वर की कल्पना करती है और जो किन्हीं अर्थों में विश्व से पृथक है, उसे अतिक्रांत करता है। भगवान उनके लिए जगत में है–इस सृष्टि में वही धड़कता है। शोपेनहार ने कहा कि जगत को ईश्वर कहना उसकी व्याख्या करना नहीं है। यह तो हमारी भाषा को 'जगत' नामक शब्द के एक और अतिरिक्त पर्याय से समृद्ध करना है। जगदीश्वर के ज़रिए हम विविधता में एकता देखते हैं। एकता में दिव्यता को यानी किसी 'देव' की मौजूदगी को नहीं बल्कि पवित्रता और शुद्धता को। यह बहुवचनात्मकता (Pluralism) है। लेकिन है शुद्धत: सनातनी– ईश्वर: सर्वभूतानां, हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति, कि हे अर्जुन! ईश्वर सबके हृदय में निवास करता है। 'समोऽहं सर्वभूतेषु' गीता में कृष्ण ने कहा। ऋग्वेद का ऋषि भी यही कहता था– 'तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा' कि उस परमात्मा में ही सम्पूर्ण लोक स्थित है।

पॉल हैरीसन इन दिनों वैज्ञानिक सर्वदेववाद (साइंटिफिक पैंथीज़्म) की बात करते हुए कह रहे हैं कि ईश्वर जगत का ही रूपक (मेटाफर) है। वे जगत मात्र में ही सारी दिव्यताएँ देख लेते हैं। उनका कहना है कि यह विश्व डिज़ाइन नहीं किया गया, यह स्व–संगठनकारी (सेल्फ ऑर्गनाइज़िंग) है। जीव एक–दूसरे को डिज़ाइन करते हैं और पर्यावरण को भी। डिज़ाइन प्राणियों के समुदायों की संक्रिया है। पदार्थ लगातार गति (Flu&) में है और उसकी अत:क्रियाएँ चलती रहती हैं। लेकिन हम जो 'सिया राममय सब जग जानी' या 'ब्यापकु एकु ब्रह्म अबिनासी/ सत चेतन घन आनंद रासी' की बात करते हैं, पदार्थ के इतने बड़े प्रेमी नहीं हैं। क्या कभी देखा गया है कि कोई चीज़ स्वयं का ही कारण हो क्योंकि तब उसे अपने से ही पहले होना होगा जो सम्भव नहीं है। हमारा जगत में ईश्वर देखना ओल्ड टेस्टामेर की उस व्यवस्था से काफ़ी भिन्न है जहाँ भगवान ने आदम और ईव को पृथ्वी सौंप दी ताकि वे उसमें से हर चीज़ का इस्तेमाल कर सकें।

आज आदमी पृथ्वी नामक इस ग्रह का कितना ही नियंत्रण कर ले, वह इस ग्रह से बाहर ज़्यादा कुछ नियंत्रित नहीं करता। उसके बाहर अग जग बहुत बड़ा है जो हमसे अछूता है। हबल स्पेस टेलीस्कोप के चित्र देखकर पता लगता है। इस पृथ्वी पर भी हमारा नियंत्रण नहीं है क्योंकि प्रकृति की परिणतियों पर हमारा वश नहीं है। यदि ओज़ोन परत क्षतिग्रस्त हुई तो हमें उसे भोगना है। इसलिए 'भुवनस्य राजा' तो जगदीश्वर ही है। प्रक्रिया–धर्मशास्त्री एंडरसन और डी. व्हाइट हाउस जगत को ईश्वर का शरीर कहते हैं–लेकिन ईश्वर के मन (माइंड) या पर्सनहुड को इस जगत से किसी तरह कुछ ज़्यादा या अतिरिक्त ही मानते हैं। 'समूचा जगत परमात्मा की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त कुछ नहीं है।' अरविंद ने कहा था। रवीन्द्र कहते थे कि सृष्टि की रचना करके ईश्वर स्वयं अपने को ही प्रकट करता है। यहाँ 'जगदीश्वरं' की बात कर तुलसी 'जगन्मिथ्या' के विचार से काफ़ी आगे बढ़ जाते हैं। सृष्टि परमात्मा का आत्मचरित्र है तब वह हमारी श्रद्धा का पात्र बनती है। गीता में कृष्ण कहते हैं–'यत: प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्' अर्थात् 'जिस परमात्मा से संपूर्ण प्राणियों की प्रवृत्ति होती है और जिस परमेश्वर से यह सब संसार व्याप्त है।' उस परमात्मा या परमेश्वर की ओर तुलसी हमें खींचते हैं। 'जगदीश्वरं' अभिधान से तुलसी इन दोनों की अभिन्नता की ओर संकेत करते हैं। जगत को जब हम ईश्वर से व्याप्त देखते हैं तो फिर उसमें कुछ 'और' भी देखते हैं। एक प्रक्रिया–दार्शनिक चार्ल्स हार्द्रसहोर्न का कहना है कि चिड़िया के गीत की पूरी व्याख्या जैविक उत्तरजीविता के डार्विनियन फंक्शन या एक जोड़ा ढूँढ़ने की क्रिया से नहीं की जा सकती। यह मुमकिन है कि चिड़िया का गीत कभी–कभी उस प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति उसकी खुले दिल की प्रतिक्रिया है जो यह चिड़िया महसूस करती है। वैदिक विचार था– ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत– इस सारे संसार के सभी पदार्थों में ईश्वर व्याप्त है अर्थात् सब कुछ ईश्वरमय है। क्या यही अल्बर्ट आईंस्टीन की 'जागतिक धार्मिक भावना' (कास्मिक रिलीज़स फीलिंग) थी? कबीर जब कहते थे कि 'जहँ–जहँ भगति कबीर की तहँ–तहँ राम निवास' तो क्या वे इसी तरह की अनुभूति नहीं करते थे?

विश्व में ईश्वर की आभा को देखने वाले उसके प्रति उपभोगवादी जीवनदृष्टि नहीं रख पाएँगे। न वे उसका बाज़ार बना पाएँगे। तब वे उसे सस्टेनेबल बनाएँगे–'यह नीड़ मनोहर कृतियों का' तब उस स्थिति में नहीं आएगा कि बसंत खामोश हो जाए। तब

ज़हरीले रसायनों से धरती की उर्वरा शक्ति पर हमला न किया जाएगा। तब धरती जल-संग्रह के काम आएगी, जल-उत्खनन के नहीं। तब यह कोई यूटोपिया नहीं होगा, एक सच्चा अस्ति-भाव या आस्तिकता होगी।

यह जो प्रकृति में ईश्वर को देखने वाली बात हरि और हरीतिमा में देखकर की जा रही है, उसमें इस बात का अवधान भी है कि आदिशंकर ने भक्ति की पंच स्वरूपा स्थितियाँ बताई थीं। उनमें से एक (तीसरी थी-'साध्वीनेज विभुम्')। यह एक ऐसी स्थिति है जैसी किसी पतिव्रता की अपने पति के प्रति प्रेम और निष्ठा की स्थिति। लेकिन यहाँ तुलसी का विभुम् उस द्वैत का विभुम् भी नहीं है जहाँ पत्नी और पति की दो भिन्नताएँ अस्तित्व में होती हैं। यह तो सर्वव्यापकता का विभुम् है। शिवाष्टकम् में यही विभुम् है- प्रभुं प्राणनाथम् विभुं विश्वनाथम। विष्णु पुराण में 'मनसैव जगत सृष्टिं संहारं च करोति या/तस्य और पक्ष क्षपाणे कियं उद्यम विस्तार' कहकर विष्णु भगवान के इसी 'विभु' स्वरूप का वर्णन है जिसमें वह अपने संकल्प मात्र से जगत का सृजन और संहार करता है। विभुं ईश्वर का वह गुण है जिसके द्वारा वह ब्रह्मांड को-उसके सभी अंगों को-एक साथ अपनी उपस्थिति से सर्वत्र भरता है। ईश्वर का अंश नहीं-संपूर्ण ईश्वर-हर स्थान पर मौजूद है। इसका शायद एक अर्थ हमारे लिए यह है कि ईश्वर से बचकर नहीं जा सकते, ईश्वर से छुप नहीं सकते, ईश्वर से पलायन नहीं किया जा सकता है। यदि हम पाप कर रहे हैं तो वह हमें देख रहा है। बाइबल में भी कहा गया कि 'यदि मैं स्वर्गारोहण करूँ, तो वहाँ तू है। यदि मैं नरक में शयन करूँ तो तू वहाँ भी है।' 'क्या कोई किसी ऐसे गुप्त स्थान पर छिप सकता है जहाँ मैं उसे न देख सकूँ? क्या मैं आकाश और पृथ्वी को नहीं भरता?' कहीं ऐसा मनुष्य का गंतव्य नहीं कि जहाँ ईश्वर पहले से पहुँचा हुआ न हो। ईश्वर एक अनलिमिटेड कंपनी है। ऐसा साथ जो असीमित है। एलन टर्नर का कहना है कि 'गॉड इज़ नॉट प्रेजेंट इन ऑल स्पेस। ही इज़ प्रेजेंट टू ऑल ऑफ़ स्पेस।' यानी हमारे आकाश के प्रत्येक बिन्दु में उस विभु की पूर्ण व्याप्ति है। हर समय उसके सामने है। हर स्थान उसके सामने है। कण -कण में परमात्मा है।

भारत में उसे अंतर्यामी, घटघटवासी, चराचरगुरु, जगन्निवास, विश्वंभर, विश्वात्मा जैसे नाम इसी कारण दिए गए। हरिवंश पुराण में 'अन्तश्चरं पुरुषं' की जो बात कही गई-सबके अन्त:करण में विचरने वाले अन्तर्यामी पुरुष की-वह 'विभु' स्वरूप का ही वर्णन है। श्वेताश्वर उपनिषद् में इसे 'व्याप्तं सर्वमिदं जगत्' के रूप में व्याख्यायित किया गया। कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में इसे 'या स्थिता व्याप्य विश्वम्' कहा। विष्णु पुराण में 'विंभु सर्वगतं नित्यं भूतयोनिरकारण/व्याप्य व्याप्तं यत: सर्व यद् वै पश्यंति सूरय:' कहा गया। कि जो व्यापक, सर्वगत, नित्य, भूतों का आदिकारण तथा स्वयं कारण रहित है, जिससे वह व्याप्त और व्यापक प्रकट हुआ है। नारद पुराण में 'विभुं' को 'वैशेषिकाद्याश्च' कहा गया है, कि वैशेषिक इन्हें 'विभु' कहते हैं। वेदव्यास ने महाभारत के भीष्मपर्व में कहा-'मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।' मणियों में सूत्र की तरह यह 'विभु' सभी को एक करता है। 'सब घटि मेरा साँइयाँ, सूनी सेज न कोई', कबीर कह गए। रैदास कह गए-'सब में हरि है, हरि में सब हैं, हरि अपनो जिन जाना'। भोलेबाबा की वेदान्त छंदावली-'यह विश्व तुझसे व्याप्त है, तू विश्व में भरपूर है/तू आर है, तू पार है, तू पास है, तू दूर है।' फ़ारसी में जामी का कहना यही था-अज़ हर तरफ़ जमाले मुतलक़ ताबाँ-उस ईश्वर का प्रकाश सर्वत्र फैला हुआ है। जामी आगे कहता है : दीद के आलम ज़े समक ता समा/नेस्त बूजुज़ बाज़िबो मुमकिन बमा। यानी पृथ्वी से लेकर आकाश तक संपूर्ण विस्तार में ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। सिन्धी कवि किशिनचन्द 'बेबस' के शब्द हैं मुल्कु मिडिओई मन्दरु आहे। यह सारा ही भगवान का मंदिर है। तेलुगु कवि त्यागराज का भी यही कहना है -

'**अखिलोड कोटुलर अरंदिलो / गगनानिल तेजो जल भूमयमगु/मृग खग नग तरु कोटुललो/सगुणमुललो विगुणमुललो / सततमु साधु त्यागराजार्चितु डिललो**' कि अखिलांड भुवन में, जन-जन में, जल-थल में, नभ में, पवन, प्रकाश, चराचर जगत्, खग, नग, मृग, तरु, लताएँ, सब में वही सगुण-निर्गुण त्यागराज का आराध्य ईश्वर व्याप्त है। तेलुगु के एक कवि वेमना ने कहा कि परमात्मा का इस विश्व में पृथक अस्तित्व नहीं है। यह सारा ब्रह्मांड ही उनका शरीर है, वायु प्राण है, सूर्य, चन्द्र और अग्नि नेत्र समूह हैं। इस प्रकार यह विश्व उन त्र्यंबक महादेव का ही विराट रूप है। दादूदयाल 'सब दिखि देखों पीव को' कहते थे और सहजोबाई 'सब घट व्यापत राम है' की पुकार लगाती थीं।

तुलसीदास ने राम की विभुता दिखाने के लिए एक बड़ा मौजूँ प्रसंग चुना है। वह समय जब सारे देवता अपने संकटमोचन भगवान श्री हरि को पुकार रहे हैं और विमर्श कर रहे हैं कि वे कहाँ मिलेंगे। तब कोई कहता है कि वे वैकुंठ में मिलेंगे तो कोई कहता है क्षीरसागर में। भगवान शंकर उस बहुत अस्त-व्यस्त सी भीड़ में जिसमें हर कोई कुछ बोल रहा है-मौका पाकर एक वचन के ज़रिए देवताओं की आँखें खोल देते हैं। वे कहते हैं

'हरि ब्यापक सर्बत्र समाना/प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना//देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं/कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं//अग जगमय सब रहित बिरागी/प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।' ईश्वर सर्वतोवृत्त है, इसे कितने मधुर तरीक़े से यहाँ समझाया गया है। देवता ईश्वर के दर्शन ही तब कर पाएँगे जब वे सर्वतोदिक् परमात्मा के इस रहस्य को समझें। राम विश्ववेदा हैं, वे सबके मन की बात जानते हैं और वे सबमें रमे हैं। वे ऊपर नीचे अन्दर-बाहर, इधर -उधर, कहीं भी, गली-गली, गाँव-गाँव, चप्पे-चप्पे में जिधर -तिधर, नगरी-नगरी, द्वारे-द्वारे चहुँ ओर विराजते हैं।

'विभुं' सिर्फ़ सार्वत्रिक व्याप्ति की भौतिकता में नहीं है, वह सर्वज्ञानी की और सर्वशक्तिमान होने की भी स्थिति है। तोराह में कहा Heavenly Father Sees All, यह भी दिलचस्प है कि 'तोराह' में यह कहने के साथ ही ईश्वर को एक शरीर-विग्रह में भी प्रदर्शित किया गया है। बेबीलोन, ग्रीस और रोम जैसी विकसित सभ्यताओं में प्राचीन समय के सर्वोपस्थित ईश्वर का विचार नहीं है। हमारे राम निषाद, केवट, शबरी, गीध, वानर में किसी भी किस्म या छुआछूत नहीं करते। श्रीपाद शास्त्री (भद्राचल राम चरित्रम्) ने एक तेलुगु कविता में कहा था- **नीवन नेननाडन/गावेरनि/तलवकात्मगति बोवकडे/नीवुनु नेनुनु वाडुनु/देबुनि प्रतिबिम्ब मनुचु देलियग वलयुन्।** 'अर्थात्' तुम, मैं और वह/तुम अलग हो, मैं अलग हूँ और वह अलग है ऐसा भिन्नता का दृष्टिकोण छोड़कर सोचो तो हम सब की आत्मा एक ही है। यह जानना चाहिए कि हममें, तुममें और उसमें भी भगवान हैं। ये सब भगवान के प्रतिबिम्ब हैं। ऋग्वेद में इस विभुं को हज़ारों आँख वाला और हज़ारों पैर वाला कहा गया जो विश्व को सर्वत: स्पर्श करता हुआ दस अंगुल आगे गया हुआ है। सहस्त्रशीर्षपुरुष-सहस्त्रापात/स भूमि सर्वत स्वृत्वात्यतिष्ठद्यशांगुलम'। ऐसा विभुं उन संकीर्णताओं में कैसे फँसेगा जिनमें बंधु लोग उन्हें फँसाना चाहते हैं? स्कंद पुराण में जब 'श्रीराम शरणं समस्त जगतां' कहा गया कि श्री रामचन्द्र समस्त संसार को शरण देने वाले हैं तो उसमें से किन्ही जाति विशेष को बहिष्कृत नहीं किया था। शंकराचार्य ने निर्वाणाष्टक (में 'न मे जातिभेद:' क्यों कहा था? भागवत ने 'स्ववभूतिप्रियो हरि:' अर्थात् भगवान को सभी प्राणी प्रिय हैं, कहा। देवी भागवत् ने 'भेदोऽस्ति मतिविभ्रमात्'-भेद की प्रतीति को बुद्धि का भ्रम कहा। सूरदास ने जब 'स्याम ग़रीबनि हूँ के गाहक' कहा तो उसमें यह भी जोड़ा कि 'कहा बिदुर की जाति-पाति, कुल, प्रेम-प्रीति के लाहक।' अग्निपुराण में कहा गया कि 'परापरस्त रूपेण विष्णु सर्वहृदिस्थिति' अर्थात् विष्णु सभी लोगों के हृदय में स्थित हैं। विभु की अवधारणा जात-पाँत और मजहब के संकरेपन के विरुद्ध सक्रिय होती है। वह पेड़-पौधों और पशुओं, तितली और झींगुर के भी इस दुनिया पर दावे को स्वीकार करती है। यह मूलत: एक वैदिक विश्वास है। प्रागैतिहासिक देशी अमेरिकियों, प्रारंभिक ईसाइयों आदि में भी यह मान्यता प्रचलित थी। जयशंकर प्रसाद के शब्दों में यह विश्व चिति का विराट वपु मंगल है।

कुछ लोगों का मानना है कि ईश्वर के सर्वज्ञाता होने और मनुष्य के स्वतंत्र संकल्प के बीच अंतर्विरोध है। यदि ईश्वर सब कुछ पहले से ही जाना हुआ है तो विकल्पों के बीच चयन कर सकने वाले 'मैं' के होने का अर्थ ही क्या है? किन्तु ईश्वर का 'ज्ञान' हमारी चयन-स्वतंत्रता (फ्रीडम ऑफ़ च्वाइस) को प्रभावित करता हो, यह ज़रूरी नहीं है। पवित्र कुरान में भी ईश्वर को सभी चीज़ों का ज्ञान होने की बात कही गई है। ईश्वर को हमारी क्रियाओं का ही नहीं, हमारी चीज़ों का ज्ञान होने की बात कही गई है। ईश्वर हमारे कारनामे ही नहीं, हमारी भावनाएँ और विचार भी जानता है। बिना किसी सेंसरी डेटा के। बिना दुनिया के साथ किसी तरह की भौतिक अन्त:क्रिया के। ईश्वर का जानना सीधा है। क्या एक गैर-भौतिक सत्ता जानती है? मनुष्य एक भौतिक सत्ता है, अत: उसे आंशिक ज्ञान ही उपलब्ध है। चूँकि ज्ञान मस्तिष्क की विशेषता है तो 'विभुं' कोई प्रज्ञावान ही होगा। दूसरे विभु शब्द के आधार पर प्रारंभ से ही भारतीय दर्शन में एक उदारवाद चलता रहा जो बहुत प्रगतिशील था। विभु यदि सर्वव्यापकत्व का गुण है तो जातिगत ऊँच नीच या रेसिस्ट बातें कैसे चल सकती हैं? विभु तो अणु में भी है। मनुष्य किसी वर्ण, धर्म, जाति का हो, है तो अमृतस्य पुत्रा:।

हरियाली का यह माह मन के विस्तार और औदार्य का माह है। आप सभी को इस हरियाली के संवर्धन और संरक्षण की शुभकामनाएँ

(मनोज श्रीवास्तव)
राम-रज, 3-पारिका-फेज-2,
चूना भट्टी, कोलार रोड,
भोपाल-462016 (म.प्र.)
मो.-9425150651
ई मेल- **shrivastava_manoj@hotmail.com**

अंक 233 अगस्त 2024

अनुक्रम

सम्पादकीय

साधो सबद साधना कीजै

अथ 'डिकरा-डिकरी' कथा / **अजित वडनेरकर/11**

हिंदी एक विचार अनेक- 7

राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा की गुत्थी / **सुरेश पटवा/12**

धर्मशास्त्रों में प्रतिपादित समाज शास्त्र-16

सम्पत्ति संबंधी भारतीय और यूरोपीय दृष्टियाँ / **रामेश्वर मिश्र पंकज/16**

पाण्डवों को विपदा में देखने के लिए दुर्योधन का द्वैत वन में जाना/ **कुसुमलता केडिया/19**

अनुवाद

असमानता को कम करना सर्वोच्च मानवीय उपलब्धि है (**मूल : विलियम हेनरी गेट्स**) / **अनु. विभा खरे/22**

आलेख

दिग्विजयी शंकराचार्य : मण्डन मिश्र (गतांक से आगे) / **प्रमोद पुष्कर/27**

हिंदी आलोचना के शिखर पुरुष आचार्य रामचंद्र शुक्ल / **करुणाशंकर उपाध्याय/31**

क्या नीरद चौधरी गलत साबित हो रहे हैं?/ **शंकर शरण/35**

खजुराहो के मंदिर : पुरुषार्थ और आनंद के बीज मंत्र / **प्रमोद भार्गव/38**

श्रीकृष्ण : अवतरण, सच्चिदानंद का / **सुनील देवधर/44**

कहाँ खो गए वे आजादी के गीत / **सुधा गुप्ता अमृता/46**

सुमिरि सीय नारद वचन / **चंदन कुमारी/49**

शोधालेख

यशोधरा का काव्य वैभव / **अजीत कुमार पुरी/53**

समकालीन हिंदी साहित्य : जीवनमूल्यों और समरसता की चुनौतियाँ / **सुनीता अवस्थी/57**

पुराणों में वर्णित भूखंड / **अनामिका/61**

नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों में चित्रित पौराणिक कथाओं का नवीन परिदृश्य / **अनिता.पी.एल./65**

बौद्ध भिक्षुओं की दीक्षा पद्धति एवं वेशभूषा / **संगीता सिंह/69**

अर्चना पैन्यूली के साहित्य में प्रवासी जीवन और मूल्य आधारित शिक्षा / **कीर्ति माहेश्वरी/72**

'विवेकानंद' पुराने साँचे में नई काव्य कृति / **गौरव गौतम/76**

डम्फू उपन्यास में युद्ध और अधिवास से सम्बंधित समस्याएँ / **बिभा कुमारी/81**

स्मरणांजलि

साहित्य की अनुपम दीपशिखा : अमृता प्रीतम / **कृष्ण कुमार यादव/86**

यात्रा वृत्तांत
यात्रा अमरनाथ की / **गोवर्धन यादव/89**
व्यंग्य
बाढ़ / **संतोष श्रीवास्तव/92**
आत्मकथ्य
जीवन की आपाधापी में क्या भूला क्या याद रहा / **ओम उपाध्याय/94**
कहानी
लेन-देन / **रेनू श्रीवास्तव/98**
झूमर-बाती / **देवांशु पाल/102**
बहुरूपिया / **रजनी शर्मा बस्तरिया/107**
अनुवाद
एक रात की खातिर **(मूल : शाहिद जमील अहमद)** / **बानो सरताज/111**
कविता
बंजारे को पुकारता रहता है एक घर / **दिनकर कुमार/113**
कब उजियारा आयेगा / **गरिमा सक्सेना/114**
रजनीगंधा / **लक्ष्मीनारायण बुनकर/115**
दोहे
योग विज्ञान एक परिचय / **जयजयराम आनंद/116**
गीत
गीतों को मरने न दूँगा / **गिरीश पंकज/117**
समीक्षा
अगन हिंडोला (उषाकिरण खान) / **अभिषेक मुखर्जी/118**
हिंदी की वाचिक परंपरा का समकालीन परिदृश्य (उद्भ्रांत) / **अंजनी कुमार झा/120**
स्मृति शेष कथा अशेष (प्रतिभू बनर्जी) / **राजेन्द्र सिंह गहलौत/122**
ठेला मेरा खटारा (तेजनारायण) / **अभिषेक जैन/124**
तीन श्रेष्ठ कवियों का हिंदी पत्रकारिता में अवदान (अच्युतानंद मिश्र) / **मनीषचन्द्र शुक्ल/125**
कर्म से तपोवन तक (संतोष श्रीवास्तव) / **जया केतकी/127**

अथ 'डिकरा-डिकरी' कथा

- अजित वडनेरकर

जन्म - 1962।
शिक्षा - हिंदी साहित्य में स्नातकोत्तर उपाधि।
रचनाएँ - पाँच पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - राजकमल प्रकाशन का विद्यानिवास मिश्र कृति पांडुलिपि सम्मान।

सन्तति के प्रति स्नेह के सम्बोधन खूब लोकप्रिय होते हैं। इनमें अनेक भाषाओं के शब्द समाहित होते हैं। प्रसार माध्यमों के ज़रिये ऐसे अनेक शब्द हिन्दी और अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी प्रचलित हो जाते हैं। लाडेसर, बेटू, बिट्टू, बालू, बाला, बच्चन, गुंडा, गुंडुराव, मुन्ना, मुंडा, छोटू, नन्हा आदि। ऐसा ही एक शब्द है डीकरा/डिकरी जो अक्सर मुम्बइया फिल्मों में पारसी पात्रों के मुँह से सुना जाता है। इसका प्रसार मुम्बइया मराठी में अधिक है। खानदेश की तरफ़ अहिराणी बोली में डिकरा, डिकरी का अर्थ होता है पोता या रूप पोती। गुजराती में इसे बेटा-बेटी को में भरपूर इस्तेमाल किया जाता है। कुछ सिन्धी क्षेत्रों में भी इसकी व्याप्ति है। अब हिन्दी में भी नाटकीय संवाद में इसे बरता जाने लगा है।

डिकरा यानी सेवक :- 'डिकरा' की अर्थवत्ता सेवक से ठीक उसी तरह जुड़ती है जैसे अरबी के गुलाम की। बाक़ी मतलब दोनों का बच्चा ही है। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना है कि गुलाम में जहाँ सेवक का भाव रूढ़ हो गया वहीं 'डिकरा' में बच्चे का। कृपा कुलकर्णी के मराठी व्युत्पत्तिकोश में डिकरा संस्कृत के 'डिङ्गर' से विकसित हुआ है। अमरकोश में 'डिङ्गर' का अर्थ सेवक ही है। 'डिङ्गर' का एक रूप मराठी में ढिंगर भी होता है। इसका ही परवर्ती विकास डिकरा हुआ। इसी तरह गुजराती में ढिकरा भी बोला जाता है।

रामसेवक और गुलामनबी :- गौर करें अरबी में 'गुलाम' शब्द सेमिटिक ग़ैन-लाम-मीम से बना है जिसमें लड़का, खूबसूरत युवती, वासना, लालसा, सीमोल्लंघन जैसे भाव हैं। ध्यान रहे, दुनियाभर में पुराने दौर से ही बाल-मज़दूरी भी रही है। अरब देशों में इसका चलन अरब के कारोबारी अतीत के मद्देनज़र भी समझा जाना चाहिए। इसका एक रूप हाल के दिनों में बच्चों की ऊँट दौड़ तक में नज़र आता रहा है। जिस तरह हमारे यहाँ रामसेवक का अर्थ राम के आराधक से है उसी तरह गुलामनबी या गुलाम मोहम्मद का भी हुआ। किन्तु दूसरे अर्थों में गुलामनबी का अर्थ जिसे नबी ने पाला हो अर्थात् नबी का पुत्र भी होता है। इस तरह हम रामसेवक या रामदास को नहीं देख सकते। पूर्वी बोली में इस अर्थ में रामबालक अलग व्यक्तिनाम है।

गुलाम जो बच्चा था :- दासप्रथा के चलते अरब में बड़े पैमाने पर दासों का कारोबार होता था। ये लोग श्रमिकों से लेकर घरेलु सेवादार तक होते थे। प्राय: हर समाज में मालिक को सेवक का पिता कहा गया है क्योंकि वह उन्हें पालता है। मुमकिन है अरब समाज में गुलाम शब्द का प्रयोग क्रीतदासों के लिए इसी रूप में होने लगा हो और बाद में वह सेवक के अर्थ में ही इतना रूढ़ हो गया कि अब तो नौकर शब्द भी गुलाम से ज्यादा रसूख रखता है। नौकर तो सेवा की एवज में तनख्वाह पाता है मगर गुलाम तो सिर्फ हुक्म बजाता है। जहाँ तक डिङ्गर का प्रश्न है, यह मूलत: सेवक ही था। उपरोक्त गुलाम की व्याख्या के मुताबिक ही बाद में इसमें बच्चे का भाव समा गया होगा, ऐसा लगता है। अपने मराठी-गुजराती रूपों में डिकरा / डिकरा का मूलार्थ बच्चा, सन्तान, पुत्र या शिशु ही होता है।

मोबेदजीना डिकरा-डिकरी :- पारसियों का अल्पप्रचलित कुटुम्ब नाम मोबेदजीना भी है। इसकी कथा में डिकरा-डिकरी का दख़ल है। बताया जाता है इस कुटुम्ब के पूर्वपुरुष का नाम मोबेद था। जिसका अर्थ पुजारी/ पुरोहित (दस्तूर-मोबेद) होता है। मोबेद के वंशज पहले ईरान से चल कर गुजरात आए और फिर अपने कुटुम्ब के साथ मुम्बई आ बसे। उन्हें परम्परानुसार इलाके में 'मोबेदजी' कहा जाने लगा। उनकी अनेक सन्तानें थी जिन्हें मोहल्ले में मोबेदजीनां डिकरा-डिकरी, ऐसा कह कर परिचय दिया जाता था। समाज में भाषायी पद जब शब्द का रूप लेते हैं तब संक्षेपीकरण होता जाता है। ज़ाहिर है यहाँ भी वही हुआ। मोबेदजी के बाल-बच्चे' की अर्थवत्ता वाला यह वाक्य सिर्फ मोबेदजीना के अर्थ में पितृपुरुष मोबेद के कुटुम्ब की अभिव्यक्ति देने लगा।

जी-37, फेज-1, ग्रीन मीडोज
भोजपुर रोड, पी.ओ. मिसरोद,
भोपाल-462047 (म.प्र.)
मो.- 6265739044

राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा की गुत्थी

- सुरेश पटवा

जन्म – 10 जुलाई 1952।
शिक्षा – एम. कॉम., सी.ए., आई.आई.बी।
रचनाएँ – आठ पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – तुलसी साहित्य सम्मान सहित अनेक सम्मान।

भारत जैसे विविधतापूर्ण महान देश में अनेक नागरिकों के लिए यह प्रश्न अभी भी उलझा हुआ सा लगता है कि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है या राजभाषा या संपर्क भाषा। कई लोग इन शब्दों का सही अर्थ समझे बग़ैर उपयोग करते रहते हैं। हिन्दी अगर राष्ट्रभाषा नहीं है तो वह राष्ट्रभाषा बनेगी भी या नहीं। राष्ट्रभाषा और राजभाषा में क्या अंतर होता है। कतिपय कारोबारी कारणों से अखिल भारतीय स्तर पर एक संपर्क भाषा की ज़रूरत महसूस की जाती रही है। जिसे पूरा करने की योग्यता हिन्दी में है, क्योंकि देश में वह अधिकांश लोगों द्वारा बोली और समझी जाती है। फिल्मों और कारोबारी ज़रूरतों के फलस्वरूप हिन्दी को संपर्क भाषा के रूप में मज़बूती से स्वीकार किया जाने लगा है। राष्ट्रभाषा, राजभाषा और संपर्क भाषा का सवाल सत्ता, रोज़गार और भाषाई पहचान से जुड़ा होने के कारण भावनात्मक रूप से संवेदनशील है।

राष्ट्रभाषा वह भाषा होती है जो किसी राष्ट्र या देश के ज्यादातर क्षेत्रों में अधिकतर जनसंख्या द्वारा बोली और समझी जाती हैं। यह भाषा देश का प्रतिनिधित्व करती हैं तथा देश की सरकार की आधिकारिक भाषा होनी चाहिए। राजभाषा, किसी राज्य या देश की आधिकारिक घोषित भाषा होती है जो कि सभी राजकीय प्रयोजन अर्थात् सरकारी काम-काज में प्रयोग होती है।

भारत में कभी कोई राष्ट्रभाषा नहीं रही, जैसे इंग्लैंड में अंग्रेज़ी, फ्रांस में फ्रेंच, इटली में इटैलियन या जर्मनी में जर्मन भाषा वहाँ की राष्ट्र भाषाएँ हैं। इसका कारण भारत का एक बहुत पुरानी सभ्यता होना है। जबकि यूरोप के देशों का अभ्युदय रोमन साम्राज्य के विखंडन उपरांत हुआ था। भारत के हिंदूकाल में संस्कृत और ब्राह्मी पाली राजभाषा रहीं। मुस्लिम युग में फारसी और ब्रिटिश पीरियड में अंग्रेज़ी राजभाषा रहीं। मुस्लिम काल में हिंदुस्तानी अर्थात् हिंदवी और उर्दू संपर्क भाषा के रूप में विकसित होती रहीं। ब्रिटिश पीरियड में उत्तर भारत में हिन्दी और उर्दू तथा दक्षिण भारत में तमिल परिवार की भाषाएँ संपर्क भाषाएँ रहीं और आंचलिक इलाक़ों अवध, बृज, बुंदेलखंड में क्षेत्रीय बोलियाँ संपर्क भाषा का कार्य करती रहीं।

महात्मा गाँधी के नेतृत्व में आज़ादी के आंदोलन की शुरुआत 1915 में होने से एक संपर्क भाषा की आवश्यकता महसूस हुई। देश का भ्रमण करने के उपरांत महात्मा गाँधी ने सन् 1917 में सबसे पहले संपर्क में काम होने वाली हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता प्रदान की थी। यह कोई क़ानूनी प्रावधान नहीं था। कांग्रेस के सालाना अधिवेशन में नीतिगत निर्णयों के प्रस्ताव पारित किए जाते थे। वही बाद में संविधान सभा द्वारा अंगीकृत कर लिए गए। इसीलिए भारत का संविधान एक संपूर्ण विधान माना जाता है जो कि 1915 से 1949 तक विकसित होता रहा।

देश में सबसे ज्यादा बोली जाने वाली भाषा हिंदी ही है और यही वजह है कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने हिंदी को जनमानस की भाषा कहा था। उन्होंने साल 1918 में हिंदी साहित्य सम्मेलन में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की बात कही थी। महात्मा गाँधी के अलावा जवाहरलाल नेहरू भी थे जिन्होंने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने की वकालत की थी। महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू ने हिंदुस्तानी (हिंदी और ऊर्दू का मिश्रण) भाषा का समर्थन किया, इनके साथ कई और सदस्य भी शामिल हुए लेकिन विभाजन की वजह से लोगों के मन में काफी गुस्सा था, इसलिए हिंदुस्तानी भाषा की जगह शुद्ध हिंदी के पक्षधर का पलड़ा ज्यादा भारी होने लगा। जबकि भाषाओं के मामलों में शुद्ध जैसी चीज नहीं होती। जो भाषा अन्य भाषाओं और बोलियों से शब्द लेने की क्षमता रखती है वह तेज़ी से विकसित होती एचडीआई जैसे अंग्रेज़ी हुई। हिन्दी में भी यही क्षमता विद्यमान है।

1946 में संविधान को बनाने की तैयारियाँ शुरू कर दी गईं। संविधान में हर पहलू को लंबी बहस से होकर गुजरना पड़ा ताकि समाज के

किसी भी तबके को ये न लगे कि संविधान में उसकी बात नहीं रखी गई है। लेकिन सबसे ज्यादा विवादित मुद्दा रहा कि किस भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा देना है, इसे लेकर सभा में एक मत पर आना थोड़ा मुश्किल लग रहा था। इसलिए राष्ट्रभाषा का मुद्दा एक तरफ़ करके राजभाषा का बिंदु विमर्श हेतु रखा गया। दक्षिण भारत के सदस्य हिंदुस्तानी और हिंदी दोनों भाषा के खिलाफ थे, जब कभी भी इन दोनों भाषाओं को लेकर चर्चा होती तो सबसे पहले इन सदस्यों की ओर से तैयार पाठ्य सामग्री और अनुवाद की माँग की जाती।

संविधान सभा में इस मुद्दे को लेकर जोर-शोर से बहस छिड़ गई, दक्षिण भारत के लोग हिंदी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाने के खिलाफ थे। मद्रास के प्रतिनिधित्व कर रहे टीटी कृष्णामाचारी ने कहा कि 'मैं दक्षिण भारतीय लोगों की ओर से चेतावनी देना चाहूँगा कि दक्षिण भारत में पहले ही कुछ ऐसे घटक हैं जो बँटवारे के पक्ष में हैं। अगर यूपी के दोस्त हिंदी साम्राज्यवाद की बात कर हमारी समस्या और न बढ़ाएँ। अंग्रेज़ी को ही राजभाषा रहने दें।' उन्होंने कहा कि 'मेरे यूपी के मेरे दोस्त पहले यह तय कर लें कि उन्हें अखंड भारत चाहिए या हिंदी भारत।' लंबी बहस के बाद सभा इस फैसले पर पहुँची कि भारत की राजभाषा हिंदी (देवनागिरी लिपि) होगी लेकिन संविधान लागू होने के 15 साल बाद यानी 1965 तक राजकाज के सभी काम अंग्रेजी भाषा में किए जाएँगे। राज्यों को अपनी राजभाषा तय करने का अधिकार रहेगा। हालाँकि हिंदी समर्थक नेता बालकृष्णन और पुरुषोत्तम दास टंडन ने अंग्रेजी का विरोध किया।

14 सितंबर 1949 को संविधान सभा ने एकमत से इसे राजभाषा का दर्जा देने को लेकर सहमति जताई। 1950 में संविधान के द्वारा हिंदी को देवनागरी लिपि के रूप में राजभाषा का दर्जा दिया गया। साथ में यह भी निर्णय हुआ कि प्रत्येक राज्य को खुद की राजभाषा घोषित करने का अधिकार रहेगा। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अंतर्गत देवनागरी लिपि में हिंदी को संघ की राजभाषा घोषित किया गया है। 1950 में भारतीय संविधान द्वारा देवनागरी में लिखी गई हिंदी को संघ की आधिकारिक भाषा घोषित किया गया था। आधिकारिक उद्देश्यों के लिए अंग्रेजी का प्रयोग संविधान के प्रभावी होने के 15 वर्ष बाद, या 26 जनवरी, 1965 को समाप्त होना था, जब तक कि संसद अन्यथा मतदान न करे। जिसे प्रत्येक दस वर्ष हेतु बढ़ाया जाता रहा है।

दुनिया के सबसे अधिक भाषाई रूप से विविधतापूर्ण देशों में से एक होने के नाते, भारत में कुल 121 भाषाएँ और 270 मातृभाषाएँ हैं। इसे ध्यान में रखते हुए, भारत में राज्य विधान मंडल कानून के माध्यम से अपनी आधिकारिक भाषा चुन सकते हैं। भारत में दो आधिकारिक राज भाषाएँ (हिंदी और अंग्रेजी) हैं और भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची के अनुसार 22 अनुसूचित भाषाएँ हैं-असमिया, बंगाली, बोडो, डोगरी, गुजराती, हिंदी, कन्नडा, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, ओड़िया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिंधी, तमिल, तेलुगु और उर्दू-ताकि सार्वजनिक और निजी मामलों में किसी भी तरह की बाधा न आए।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कहा था कि -

'निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल,
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटे न हिय के सूल।'

मतलब मातृभाषा की उन्नति बिना किसी भी समाज की तरक्की संभव नहीं है तथा अपनी भाषा के ज्ञान के बिना मन की पीड़ा को व्यक्त कर दूर करना भी मुश्किल है। हिन्दी वाले इसी दोहे की दुहाई देकर हिन्दी को अखिल भारत में थोपने की वकालत करते रहते हैं। सोचने वाली बात यह है कि जिस देश में 270 मातृभाषाएँ हों, वहाँ भारतेंदु हरिश्चंद्र के कथन को किस तरह लागू किया जा सकता है। सभी को उनकी मातृभाषाओं की आज़ादी देनी होगी। यहीं आकर संपर्क भाषा की महत्ता पता चलती है।

भारत सरकार द्वारा संचार के लिए अंग्रेजी का उपयोग किया जाता है, और यह भारत के संविधान में निहित है। अंग्रेजी भारत के सात राज्यों और सात केंद्र शासित प्रदेशों में एक आधिकारिक भाषा भी है, और सात अन्य राज्यों और एक केंद्र शासित प्रदेश में अतिरिक्त आधिकारिक भाषा है।

संवैधानिक प्रावधान के अनुसार 1955 में स्थापित राजभाषा आयोग की रिपोर्ट में सिफारिश की गई कि 1965 तक पूर्ण कार्यान्वयन के साथ, केंद्र सरकार के विभिन्न कार्यों में हिंदी को धीरे-धीरे अंग्रेजी का स्थान लेना चाहिए। हालाँकि, आयोग के दो सदस्य, एक पश्चिम बंगाल और तमिलनाडु के प्रत्येक सदस्य ने अन्य सदस्यों पर हिंदी समर्थक पूर्वाग्रह का आरोप लगाते हुए असहमति जताई। संयुक्त संसदीय समिति (जेपीसी) ने अपनी सिफारिशों को लागू करने के लिए रिपोर्ट की समीक्षा की।

1959 में, प्रधान मंत्री नेहरू ने संसद में आश्वासन दिया कि अंग्रेजी एक वैकल्पिक भाषा के रूप में तब तक जारी रहेगी जब तक लोगों को इसकी आवश्यकता होगी। अप्रैल 1960 में, राष्ट्रपति ने एक आदेश जारी किया जिसमें कहा गया कि 1965 के बाद, हिंदी प्रमुख

आधिकारिक भाषा होगी, जबकि अंग्रेजी बिना किसी प्रतिबंध के सहयोगी आधिकारिक भाषा के रूप में जारी रहेगी। हिंदी को बढ़ावा देने के लिए, राष्ट्रपति के निर्देश के अनुसार, केंद्र सरकार ने कई कदम उठाए, जिनमें केंद्रीय हिंदी निदेशालय की स्थापना, विभिन्न क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण कार्यों को हिंदी में या हिंदी अनुवाद में प्रकाशित करना, केंद्र सरकार के कर्मचारियों के लिए हिंदी में प्रशिक्षण अनिवार्य करना शामिल है। प्रमुख कानूनी ग्रंथों का हिंदी में अनुवाद करना और अदालतों में उनके उपयोग को बढ़ावा देना।

1963 में राजभाषा अधिनियम लागू किया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य एक निर्दिष्ट तिथि, अर्थात् 1965 के बाद अंग्रेजी के उपयोग पर संविधान द्वारा लगाए गए प्रतिबंध को हटाना था।

इस अधिनियम को 'करेगा' के स्थान पर 'हो सकता है' शब्द के उपयोग से उत्पन्न अस्पष्टता के कारण आलोचना का सामना करना पड़ा। विरोध में गैर-हिंदी नेताओं ने राजभाषा के मुद्दे पर अपना दृष्टिकोण बदल दिया। प्रारंभ में, उन्होंने अंग्रेजी के प्रतिस्थापन में मंदी की माँग की थी, लेकिन उन्होंने परिवर्तन के लिए समय सीमा निर्धारित करने की वकालत करने के लिए अपना रुख बदल दिया।

तमिलनाडु में महत्त्वपूर्ण विरोध प्रदर्शन हुए, कुछ लोगों ने आत्मदाह तक का सहारा लिया। केंद्रीय मंत्रिमंडल में दो तमिल मंत्रियों, सुब्रमण्यम और अलागेसन ने विरोध में इस्तीफा दे दिया। दुख की बात है कि आंदोलन के दौरान पुलिस की गोलीबारी में लगभग 60 लोगों की जान चली गई।

संविधान में यह निर्धारित किया गया कि देवनागरी लिपि में और अंतर्राष्ट्रीय अंकों के साथ लिखी जाने वाली हिंदी को भारत की आधिकारिक भाषा के रूप में नामित किया जाएगा। 1965 तक सभी आधिकारिक उद्देश्यों के लिए अंग्रेजी जारी रहेगी, जिसके बाद इसका स्थान हिंदी ले लेगी। हिंदी का परिचय चरणों में किया जाना था। 1965 के बाद, यह एकमात्र आधिकारिक भाषा बन गई। फिर भी, संसद ने 1965 के बाद भी निर्दिष्ट उद्देश्यों के लिए अंग्रेजी के उपयोग की अनुमति देने का अधिकार बरकरार रखा।

1965 में राष्ट्रभाषा पर फैसला लेना था, तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने का फैसला तय कर लिया था लेकिन इसके बाद तमिलनाडु में हिंसक प्रदर्शन हुए। प्रदर्शन के दौरान दक्षिण भारत के कई इलाकों में हिंदी की किताबें जलने लगीं, कई लोगों ने तमिल भाषा के लिए अपनी जान तक दे दी, जिसके बाद कांग्रेस वर्किंग कमिटी ने अपने फैसले पर नर्मी दिखाई और एलान किया कि राज्य अपने यहाँ होने वाले सरकारी कामकाज के लिए कोई भी भाषा चुन सकता है। कांग्रेस के फैसले में कहा गया कि केंद्रीय स्तर पर हिंदी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं का इस्तेमाल किया जाएगा और इस तरह हिंदी कड़े विरोध के बाद देश की सिर्फ राजभाषा बनकर ही रह गई, राष्ट्रभाषा नहीं बन पाई।

जब इंदिरा गाँधी ने 1966 में प्रधान मंत्री की भूमिका सँभाली, तो उन्होंने 1967 में 1963 के राजभाषा अधिनियम में एक संशोधन पेश किया। 1967 के आधिकारिक भाषा संशोधन अधिनियम ने केंद्रीय स्तर पर आधिकारिक काम के लिए हिंदी के अलावा अंग्रेजी को एक सहयोगी भाषा के रूप में स्थापित किया। इसके अलावा, केंद्र सरकार और गैर-हिंदी राज्यों के बीच अंग्रेजी में संचार तब तक जारी रहेगा, जब तक गैर-हिंदी राज्य इसे आवश्यक समझेंगे। इस संशोधन ने प्रभावी रूप से द्विभाषावाद की अनिश्चितकालीन नीति अपनाई।

राज्यों को त्रिभाषा फार्मूला लागू करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। इसमें हिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी और अंग्रेजी के अलावा दक्षिणी भाषाओं में से एक आधुनिक भारतीय भाषा का अध्ययन शामिल था, गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषाओं और अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी का अध्ययन भी इस फॉर्मूले में शामिल था।

इसके अलावा, संसद ने एक नीतिगत प्रस्ताव अंगीकृत किया, जिसमें कहा गया कि सार्वजनिक सेवा परीक्षाएँ हिंदी और अंग्रेजी के साथ-साथ सभी क्षेत्रीय भाषाओं में भी आयोजित की जाएँगी। यह निर्धारित किया गया था कि उम्मीदवारों को हिंदी या अंग्रेजी में अतिरिक्त दक्षता होनी चाहिए।

एक महत्त्वपूर्ण कदम में, भारत सरकार ने जुलाई 1967 में भाषा नीति पर काम किया। 1966 से शिक्षा आयोग की रिपोर्ट की सिफारिशों के आधार पर, इसने घोषणा की कि भारतीय भाषाएँ अंततः विश्वविद्यालय स्तर पर सभी विषयों के लिए शिक्षा का माध्यम बन जाएँगी। हालाँकि, इस परिवर्तन के लिए विशिष्ट समय-सीमा प्रत्येक विश्वविद्यालय द्वारा अपनी सुविधा के अनुसार निर्धारित की जाएगी। यह निर्णय उच्च शिक्षा में भारतीय भाषाओं के उपयोग को बढ़ावा देने की दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है।

भारत की कोई राष्ट्रभाषा नहीं है, हिंदी एक राजभाषा है यानी कि राज्य के कामकाज में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा। भारतीय संविधान में किसी भी भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा नहीं मिला हुआ है। भारत में 22 भाषाओं को आधिकारिक राजकाज का दर्जा मिला हुआ है, जिसमें अंग्रेजी और हिंदी भी शामिल है।

देश की अदालत ने कई बार ये साफ किया है कि ये सभी भाषाएँ बराबर हैं और कोई भी भाषा न किसी से कम है और न किसी से ज्यादा। भारत में केरल, तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, तेलंगाना और कर्नाटक, पश्चिम में गोवा, महाराष्ट्र और गुजरात, उत्तर-पश्चिम में पंजाब और जम्मू-कश्मीर, पूर्व में उड़ीसा और पश्चिम बंगाल, उत्तर-पूर्व में सिक्किम, अरुणाचल प्रदेश, मिजोरम, त्रिपुरा, नागालैंड, मणिपुर, मेघालय और असम ऐसे राज्य हैं जहाँ हिंदीभाषी बहुत कम हैं।

शासन की आधिकारिक भाषा और राज्यों के भाषाई पुनर्गठन का मुद्दा राजनीति, संस्कृति और पहचान के हिसाब से एक चुनौती पूर्ण मुद्दा रहा है, जो एक राष्ट्र के ढाँचे पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव डालता है। भाषा, संचार और अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में, सामाजिक गतिशीलता को आकार देने और जनता बीच अपनेपन की भावना को बढ़ावा देने में अपार शक्ति रखती है।

राष्ट्र की एक आधिकारिक भाषा और भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन को लेकर बहस बहुत लंबी है, जो अक्सर भावनात्मक तनाव पैदा करती है। भारत में यह गहरे ऐतिहासिक क्षेत्रीय तनाव को दर्शाती है। कई देशों में, विशेष रूप से विविध भाषाई परिदृश्य वाले देशों में, आधिकारिक भाषा और क्षेत्रीय सीमाओं से संबंधित निर्णयों का शासन, सामाजिक एकजुटता और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण पर गहरा प्रभाव पड़ सकता है। यूरोप में इस समस्या ने जन्म ही नहीं लिया क्योंकि वहाँ भाषाई आधार पर ही राष्ट्रों का निर्माण हुआ है जैसे इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली इत्यादि।

भारत जैसे बहुभाषाई जटिल भूभाग पर भाषाई विविधता को स्वीकार करने और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने के साथ-साथ भाषाई अल्पसंख्यकों की आकांक्षाओं और अधिकारों को संबोधित करने के बीच एक नाजुक संतुलन की आवश्यकता होती है। भारत की आज़ादी के बाद शुरुआती दो दशकों में भाषा का मुद्दा सबसे विवादास्पद और विभाजनकारी मुद्दों में से एक बनकर उभरा। इस अवधि के दौरान भाषाई पहचान समाज में एक शक्तिशाली शक्ति बन गई।

भाषाई विविधता की इस समस्या ने राष्ट्रीय एकता के लिए दो महत्त्वपूर्ण चुनौतियाँ प्रस्तुत कीं और भारतीय संघ की आधिकारिक भाषा पर संघर्ष एक केंद्रीय मुद्दा था। यह विशेष रूप से हिंदी के विरोध में भड़का, जिससे हिंदी भाषी और गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों के बीच तनाव पैदा हो गया।

दूसरा प्रमुख पहलू भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन था। यह विवाद एक एकल राष्ट्रीय भाषा स्थापित करने के बारे में नहीं था जिसे सभी भारतीय उचित समय पर अपना लेंगे। भारतीय राष्ट्रीय पहचान के लिए एक राष्ट्रीय भाषा के विचार को राष्ट्रीय नेतृत्व के बहुमत ने पहले ही खारिज कर दिया था।

भारत एक बहुभाषी राष्ट्र था और इसे ऐसा ही रहना था। भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने अपना वैचारिक एवं राजनीतिक कार्य विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के माध्यम से संचालित किया था। उस समय, प्रत्येक भाषाई क्षेत्र में उच्च शिक्षा, प्रशासन और अदालतों के माध्यम के रूप में अंग्रेजी के स्थान पर मातृभाषा को लाने की माँग थी। महात्मा गाँधी ने एक विदेशी भाषा के रूप में अंग्रेजी के खिलाफ अपना रुख रखते हुए, स्वतंत्र भारत में संचार के अखिल भारतीय माध्यम के रूप में अंग्रेजी के विचार का विरोध किया। हालाँकि, यह मामला खत्म नहीं हुआ। देश का सरकारी कामकाज इतनी सारी भाषाओं में संचालित होना व्यावहारिक नहीं था। एक सामान्य भाषा की आवश्यकता थी जिसके माध्यम से केंद्र सरकार अपना संचालन कर सके और राज्य सरकारों के साथ संचार बनाए रख सके। नतीजतन, राजभाषा का मुद्दा शुरू से ही अत्यधिक राजनीतिक था।

अंग्रेजी से हिंदी में संक्रमण की समय-सीमा के सवाल ने हिंदी भाषी और गैर-हिंदी भाषी क्षेत्रों के बीच विभाजन पैदा कर दिया। हिंदी के समर्थक तत्काल बदलाव चाहते थे, जबकि गैर-हिंदी क्षेत्रों के लोग अनिश्चित काल के लिए नहीं तो लंबे समय तक अंग्रेजी को बनाए रखने पर जोर दे रहे थे। राष्ट्रीय भाषा के मुद्दे का समाधान तब हुआ जब संविधान निर्माताओं ने अनिवार्य रूप से सभी प्रमुख भाषाओं को 'भारत की भाषाएँ' या भारत की राष्ट्रीय भाषाओं के रूप में स्वीकार किया।

रोज-367, न्यू मिनाल रेजिडेंसी,
जे.के. रोड, गोविंदपुरा,
भोपाल-462023 (म.प्र.)
मो.-992629497

सम्पत्ति संबंधी भारतीय और यूरोपीय दृष्टियाँ

- रामेश्वर मिश्र पंकज

वर्तमान में निरंतर सृजनरत, रीवा मध्य प्रदेश में जन्मे ख्यातिलब्ध दार्शनिक, समाजवैज्ञानिक एवं इतिहासविद, समाजवादी एवं गाँधीवादी आंदोलनों में सक्रियता से सहभागिता कर विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों से सेवा निवृत्त। आपकी बाइस पुस्तकें प्रकाशित हैं।

सम्पत्ति के विषय में और सुख तथा आनंद के विषय में भी यूरो-ईसाई दृष्टि और हिन्दू दृष्टि में आकाश-पाताल का अंतर है। वस्तुत: सम्पत्ति समृद्धि का रूपविशेष है। समृद्धि का अर्थ है-जिससे हम आनंदित हों, जिससे हम श्री-सम्पन्न हों, जो हमें पूर्ण करे और हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि करे। 'ऋषु वृद्धौ' धातु से ऋद्धि शब्द बना है। सम्यक ऋद्धि को समृद्धि कहते हैं। जो वस्तुए व्यक्ति, परिवार, समूह, समाज और राष्ट्र की अपूर्णता को दूर करें, उन वस्तुओं को प्राप्त करना, अर्जित करना, उन पर स्वामित्व प्राप्त करना ही समृद्ध होना है। अपूर्णता से मुक्ति और पूर्णता की प्राप्ति ही समृद्धि है। यह 'वेल्थ' और 'मनी' से भिन्न है।

'वेल्थ' और 'मनी' आधुनिक यूरोपीय दृष्टि :- भिन्न-भिन्न संस्कृतियों की अपनी-अपनी अर्थदृष्टियाँ हैं। आधुनिक यूरोपीय अर्थशास्त्र की अर्थदृष्टि के अनुसार 'वेल्थ' या सम्पत्ति की परिभाषा यह है कि किसी भी व्यक्ति की 'वेल्थ' उसके स्वामित्व की ऐसी समस्त चल-अचल वस्तुओं का कुल 'स्टॉक' है, जिन वस्तुओं की कोई 'मार्केट-वेल्यू' हो अर्थात् उन वस्तुओं के विनिमय स्वरूप धन या अन्य वस्तुएँ मिल सकती हों।' इसका अर्थ है कि उनके स्वत्व यानी स्वामित्व का हस्तांतरण सम्भव हो। इसमें घर, स्टॉक, शेयर, बैंक एकांउट आदि तो शामिल हैं ही, व्यापारिक एवं प्रोफेशनल 'कनेक्शन्स' तथा सम्बन्धित हुनर की कीमत भी शामिल है। इस दृष्टि से 'मानवीय सम्पत्ति' एवं 'गैर-मानवीय सम्पत्ति' का वर्गीकरण भी किया जाता है। सम्पत्ति (वेल्थ) का एक आधारभूत गुण है कि वह आय उत्पादन का एक जरिया है। आय वस्तुत: 'वेल्थ' पर मिलने वाला 'रिटर्न' है। इसी अर्थ में मानवीय श्रम भी सम्पत्ति (वेल्थ) है क्योंकि वह भी आय-उत्पादन का जरिया है।

इस दृष्टि से धन की भी परिभाषा उल्लेखनीय है। यूरोप में पहले 'मनी' का प्रचलित अर्थ था सोने-चाँदी-जवाहरात, गाय-बैल-घोड़े तथा अन्य ऐसी वस्तुएँ जिनकी कीमत अंतर्निहित मान्य थी, क्योंकि उनके द्वारा भी भुगतान होता था। वस्तुत: हर वह वस्तु 'मनी' है जो ऋण की अदायगी के साधन के रूप में सामान्यत: मान्य है। आधुनिक अर्थ-व्यवस्था में 'मनी' का सामान्य अर्थ है शासन अथवा बैंक की देयताएँ अर्थात् शासन एवं बैकों पर व्यक्तियों के दावे (क्लेम)। शासन के स्तर पर नोट और सिक्के तथा बैंकों के स्तर पर बैंक-खाते ही व्यक्तियों की 'मनी' का प्रचलित रूप है। 'मनी' के इस स्वरूप को कोई स्वयं में अंतर्निहित मूल्य नहीं है अपितु वह वस्तुओं के विनिमय में सार्वभौम रूप से स्वीकार्य उस 'विश्वास' का प्रतीक-चिह्न है जो विश्वास व्यक्ति बैंकों एवं शासन पर रखते हैं। अत: 'मनी' इस प्रकार बैंकों पर और 'राज्य' पर लोगों के 'फेथ' का प्रतीक-चिह्न मात्र हैं क्रमश: बैंक खाते तथा नोटों-सिक्कों के रूप में। अर्थात् आधुनिक समय में जिसे सामान्यत: 'मनी' कहा माना जाता है, वह बैंकों एवं राज्यांगों पर लोगों के 'फेथ' का 'टोकन' है। यह टोकन राज्य या बैंक द्वारा सम्बन्धित लोगों की सम्पदा को किसी न किसी रूप में रेहन रख कर ही दिया जाता है।

इस सम्पदा में मानवीय श्रम, सहित 'वेल्थ' के विविध रूप समाहित हैं-घर, जमीन, मकान, स्टॉक, शेयर, बैंक खाता, व्यापारिक कनेक्शन्स प्रोफेशनल कनेक्शन्स, हुनर के हस्तांतरण से प्राप्त आय आदि। 'मनी' और सम्पत्ति (वेल्थ) की इस परिभाषा, मान्यता एवं दृष्टि में राज्य की सर्वोपरिता और व्यक्ति की राज्य द्वारा मान्य सीमा तक स्वतंत्रता एवं गतिशीलता अंतर्निहित है। इस प्रकार वर्तमान अर्थाशास्त्र व्यवहार में, व्यक्ति एवं राज्य-इन दो आधारभूत इकाइयों को ही मूलत: मान्यता देता है। राज्य की स्वीकृति से व्यक्तियों के विविध निकाय निर्दिष्ट मर्यादा में गतिशील एवं कार्यरत रह सकते हैं। यह है सम्पत्ति सम्बन्धी आधुनिक यूरो-अमेरिकी दृष्टि जो इन दिनों लगभग सार्वभौम है। भारत में भी सम्पत्ति की यही दृष्टि इन दिनों अधिकृत तौर पर मान्य एवं प्रभावी है। ऐसी स्थिति में समृद्धि के हिंसक या अहिंसक होने का परीक्षण राजकीय नीतियों एवं नियमों के आधारों का परीक्षण करके ही हो सकता है। क्योंकि सम्पत्ति के रूपों और सीमाओं तथा

विनिमय एवं विनिवेश का स्वरूप-निर्धारण इन दिनों राज्य द्वारा ही नियंत्रित है।

सम्पत्ति-भारतीय दृष्टि :- सम्पत्ति सम्बन्धी भारतीय (हिन्दू) दृष्टि इससे नितांत भिन्न रही है। अधिकांश भारतीय धर्मशास्त्रों में सम्पत्ति दो प्रकार की कही गई है-1 स्थावर, जैसे कि भूमि खंड और घर तथा 2 जंगम (बृहस्पति स्मृति एवं कात्यायन स्मृति द्रष्टव्य)। याज्ञवल्क्य स्मृति आदि में सम्पत्ति के तीन प्रकार कहे गए हैं-1 भू (भूमि खंड और घर) 2 निबन्ध (बंधान) और 3 द्रव्य। यों द्रव्य चल और अचल दोनों प्रकार की सम्पत्तियों का द्योतक माना गया है। 'निबन्ध' का अर्थ है वह स्थायी द्रव्य जो दान अथवा आवधिक शुल्क के रूप में किसी व्यक्ति या निकाय को राज्य द्वारा अथवा किसी संगठन (पंचायत, श्रेणी, निगम आदि) द्वारा दिया जाए।

सम्पत्ति को 'दाय' भी कहते हैं। भारतीय शास्त्रों में सम्पत्ति के लिए 'दाय' शब्द का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन है। ऋग्वेद में भी 'दाय' शब्द का प्रयोग हुआ है। ब्राह्मण ग्रन्थों में सम्पत्ति के अर्थ में 'दाय' शब्द प्रयुक्त है। इस प्रकार, दाय, सम्पत्ति और धन शब्द प्राय: पर्यायवाची हो जाते हैं।

पैतृक सम्पत्ति को 'अप्रतिबंध दाय' कहा जाता है। दूसरी ओर, जब पैतृक सम्पत्ति अन्य कुटुम्बी को दी जाती है तो उसे 'सप्रतिबंध दाय' कहा जाता है। यों सभी दाय सप्रतिबंध ही होते हैं क्योंकि पिता या स्वामी की मृत्यु हो जाने अथवा उसके पतित हो जाने या संन्यासी हो जाने के उपरांत ही पुत्र, पौत्र, पुत्री, पत्नी आदि को दाय का स्वामित्व प्राप्त होता है।

इसीलिए स्वत्व या स्वामित्व का प्रश्न सम्पत्ति के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वत्व के पाँच उद्गम या स्रोत हैं-1. रिक्थ या वसीयत, 2. क्रय या खरीद, 3. संविभाग या विभाजन, 4. परिग्रह यानी बलपूर्वक ली हुई सम्पत्ति और 5. अधिगम यानी अनायास प्राप्त सम्पत्ति। गौतम स्मृति का कहना है कि ब्राह्मणों को दान से, क्षत्रियों को विजय से, वैश्यों को कृषि और व्यापार के लाभ से और शूद्रों को अनुग्रह से भी सम्पत्ति प्राप्त होती है जो कि पैतृक सम्पत्ति की तरह ही सम्पत्ति है। माना यह जाता है कि स्वत्व या स्वामित्व की एक लोकसिद्ध परम्परा चली आ रही थी और शास्त्रों ने केवल उनको व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया। सम्पत्ति के स्वामित्व को लेकर शास्त्रों में विशद विवेचना है। परन्तु आधुनिक राज्य सम्पत्ति का परम स्वामी 'राज्य' यानी स्वयं को मानता है। वह सम्पत्ति-सीमा, भूमि-हदबन्दी, आय-सीमा आदि भाँति-भाँति के कानूनों द्वारा दाय एवं सम्पत्ति का परिग्रह करता रहता है। यह धर्म-सम्मत नहीं है। राज्य द्वारा नागरिकों की सम्पत्ति पर स्वत्व की यह स्थापना परिग्रह-पूर्वक की गई है। इस्लाम काफिरों की सम्पत्ति पर बलपूर्वक स्वत्व स्थापित करता है परंतु मोमिनों की सम्पत्ति पर केवल राज्य का स्वत्व इस्लाम में मान्य नहीं है। यूरोक्रिश्चियन लॉ से संचालित राज्य और कम्युनिस्ट राज्य नागरिकों की सम्पत्ति पर परिग्रहपूर्वक राज्य का स्वत्व स्थापित करते हैं।

प्राचीन भारतीय शास्त्रों में सम्पत्ति के दो वर्ग किए गए हैं -
1. संयुक्त कुल सम्पत्ति, 2. पृथक् सम्पत्ति। पृथक् सम्पत्ति में स्वअर्जित सम्पत्ति भी सम्मिलित है। यह अर्जन दान, विजय, कृषि, व्यापार, वेतन या अनुग्रह के द्वारा हो सकता है। परिग्रह को धर्मसम्मत अर्जन नहीं माना जाता।

शास्त्रों ने विचार किया है कि यदि कोई व्यक्ति कुल की सम्पत्ति को हानि पहुँचाए बिना अपने परिश्रम और पुरुषार्थ से कुछ अर्जित करता है तो वह सम्पत्ति पृथक् सम्पत्ति मानी जाएगी। विद्या और ज्ञान से प्राप्त धन को विद्याधन कहा जाता है और विद्याधन भी पृथक् सम्पत्ति ही है।

शौर्यधन परिग्रह से भिन्न है :- इसी प्रकार, यदि किसी सैनिक या कर्मचारी को शूरता प्रदर्शित करने पर शासक या स्वामी द्वारा कोई धन दिया जाता है तो उसे शौर्य धन कहते हैं। युद्ध में अथवा शत्रु को भगाकर प्राप्त किए जाने वाले धन को ध्वजाहृत धन कहा जाता है। यह परिग्रह नहीं है। यह परिग्रह से भिन्न है और धर्मसम्मत शौर्य का एक रूप है। राजा शत्रु या आततायी के धन का परिग्रह कर सकता है परन्तु समाज के किसी सामान्य व्यक्ति के धन का परिग्रह करने का अधिकार राज्य को भारतीय परम्परा में प्राप्त नहीं है।

धन पर राज्य का स्वामित्व मान्य नहीं :- इस प्रकार भारतीय संस्कृति में धन पर राज्य का स्वामित्व मान्य नहीं है। व्यक्ति का भी उस पर मूलभूत स्वामित्व नहीं है। सम्पत्ति का बहुलांश पैतृक होता है और उस सम्पत्ति पर कुल का स्वामित्व ही मान्य है। विद्या, ज्ञान, शूरता एवं सेवा आदि गुणों एवं कर्मों से प्राप्त पृथक् सम्पत्ति पर अवश्य व्यक्ति का स्वत्व होता है परन्तु उसे भी उपयोग के विशद नियम हैं, जिससे कि कुल एवं समाज का उस पर बड़ी सीमा तक नियंत्रण रहता है।

शास्त्रों को शासन ने अप्रासंगिक बना दिया :- यही कारण है कि श्रीमद्भगवद्गीता में 'कुलधर्मों' यानी कुलों के धर्मों को शाश्वत कहा है

– 'कुलाधर्माश्च शाश्वता:'। यह कुल-धर्म स्मृति एवं परम्परा से गतिशील रहता है। स्मृति संस्कार एवं शिक्षा से उत्पन्न होती है। सभी प्रकार की स्मृतियाँ आंकाक्षाफलक होती हैं अर्थात् आकांक्षाओं को एवं संकल्पों को जन्म देती हैं। प्रत्येक आकांक्षा अपना संस्कार भी व्यक्ति-चित्त पर छोड़ती है। इस प्रकार स्मृति-संस्कार की समरूपता से कुल-धर्मों का शाश्वत प्रवाह चलता है। स्मृति एवं आकांक्षा के लोप से कुल-धर्म भी विलुप्त हो जाते हैं। परन्तु वर्तमान भारत में कुल एवं शिक्षा दोनों राज्य द्वारा नियंत्रित हैं। राज्य नियंत्रित शिक्षा कुलों की स्मृति एवं परम्परा को कोई महत्व एवं मान्यता नहीं देती। फलत: समकालीन भारत में कुल-धर्म विलुप्त प्राय ही हैं। सामान्यत: सभी भारतीय व्यक्तियों की आकांक्षाएँ एवं संकल्प प्रदत्त परिवेश में यथासम्भव अधिकाधिक भोग-साधन प्राप्त करने पर एकाग्र हैं। इसमें रुचि-भेद के स्तर पर संस्कार-भेद अवश्य हैं। परन्तु कार्यक्षेत्र मुख्यत: राज्य द्वारा नियंत्रित है। आधुनिक भारतीय समाज में भारतीय शास्त्रों को कोई अधिकृत मान्यता नहीं दी गई है। अत: व्यवहारत: सभी भारतीय शास्त्रीय सन्दर्भ समकालीन जीवन के लिए लगभग अप्रासंगिक या गौण हैं। वर्तमान स्थिति में राज्य को ही राष्ट्र के समस्त संसाधनों का अर्थात् सम्पूर्ण राष्ट्रीय सम्पत्ति का स्वामी मान लिया गया है। तथापि व्यक्तियों को राज्य द्वारा पर्याप्त स्वतंत्रता भी प्रदान की गई है। ऐसी स्थिति में, व्यक्ति की समृद्धि राजकीय नियमों का पालन करते हुए सम्पत्ति के संचय पर निर्भर है। उस समृद्धि का उपयोग करने को व्यक्ति बड़ी सीमा तक स्वतंत्र है। अत: व्यक्तियों के स्तर पर प्रभावी विचार भी बड़ी सीमा तक सम्पत्ति के उपयोग का स्वरूप तय करते हैं। इस अर्थ में भारतीयों की समृद्धि आज भी एक सीमा तक अहिंसक ही कही जा सकती है। परन्तु अहिंसा के शास्त्रीय अर्थ में समस्त प्राणियों के प्रति सदा अद्रोह का होना ही अहिंसा है-'सर्वदा सर्वथा सर्वभूतेषु अनभिद्रोह: अहिंसा' (योगसूत्र)। जबकि वर्तमान शासन प्रतिस्पर्धा एवं अन्यों के प्रति संवेदना की कमी की प्रवृत्तियों को प्रेरित करता है। अत: उस अर्थ में वह हिंसक मनोवृत्ति को प्रेरित करता है।

शासन को समस्त राष्ट्रीय सम्पत्ति का स्वामी मानने की आधुनिक यूरो-क्रिश्चियन दृष्टि भारतीय परम्परा में अज्ञात रही है। यहाँ शासन का कार्य 'वर्णाश्रम धर्म-प्रतिपालन' अर्थात् 'सार्वभौम सुव्यवस्था' रहा है, न कि सम्पत्ति का स्वामित्व एवं निवेश। यों, वर्तमान शासन भी 'लॉ एंड ऑर्डर' को अपना कर्तव्य मानता है, परन्तु इसकी मूलभूत दृष्टि समस्त राष्ट्रीय सम्पत्ति के नियंत्रण एवं हस्तांतरण, विनियोजन आदि की है। 'लॉ एंड ऑर्डर' इस मूल दृष्टि का अनुवर्ती है। 'कन्ट्रोल और डॉमिनेशन' ही प्रधान दृष्टि है। परन्तु यह दृष्टि स्वयं में किसी सार्वभौम अर्थ-नीति का आधार बन ही नहीं सकती। क्योंकि जिनका 'कन्ट्रोल किया जाएगा, जिन पर 'डॉमिनेशन' स्थापित किया जाएगा, वे स्वयं भी पलटकर कल वर्तमान राज्यकर्ताओं पर नियंत्रण एवं आधिपत्य करेंगे या करना चाहेंगे। अत: शासन की वर्तमान अर्थ-दृष्टि सार्वभौम नहीं है। वह 'कुछ' का शेष पर नियंत्रण एवं आधिपत्य स्थापित करने की व्यवस्था है। भारत शासन की वर्तमान अर्थ-दृष्टि भारतीय समाज के लोगों को दो स्पष्ट एवं नितांत भिन्न खंडों में बाँटती है-(1) राज्य (2) राज्य के नागरिक। राज्य में राज्य के विभिन्न अंगों के नीति नियामक एवं नीति निर्धारक अधिकारी (मंत्री, अफसर आदि विधायिका, कार्यपालिका के अधिकारीगण और न्यायपालिका के माननीय न्यायाधीशगण) व्यक्ति सम्मिलित हैं। ये शेष नागरिकों की सम्पत्ति सम्बन्धी नियम बनाते, उन पर व्यवहार का स्वरूप तय करते तथा उनमें समय-समय पर परिवर्तन करते हैं। शेष नागरिक इन नियमों से मात्र नियंत्रित होते हैं। यों, विधायिक के अधिकारियों को चुनने का अधिकार शेष नागरिकों को भी प्राप्त है। परंतु कार्यपालिका एवं न्यायपालिका पहले से ही एंग्लो-सेक्शन लॉ से संचालित हैं, जिसका भारतीय नागरिकों की स्मृति-परम्परा से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। स्वयं विधायिका का संचालक भी एंग्लो-सेक्शन लॉ से ही होता है। अत: विधायिका में नागरिकों द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि न्याय, सम्पत्ति और व्यवहार सम्बन्धी हिन्दू नागरिकों की प्राचीन परम्परा से नियंत्रित नहीं होते। अपितु एंग्लो-सेक्शन लॉ के भारतीय प्रतिरूप भारतीय संविधान से ही नियंत्रित होते हैं। ऊपर से, ये प्रतिनिधि तथा कार्यपालिका के अधिकारी मिलकर शिक्षा के सम्पूर्ण स्वरूप को नियंत्रित करते हैं और रेचते हैं। यह शिक्षा धर्म, न्याय, औचित्य, मर्यादा, लोक-व्यवहार, सम्पत्ति, कुल-धर्म, राजधर्म आदि की भारतीय (हिन्दू) परम्परा को अपना स्रोत नहीं मानती। जबकि इंग्लैंड में एंग्लो-सेक्शन लॉ वहाँ की प्रोटेस्टेण्ट क्रिश्चियन परम्परा को अपना स्रोत मानता है। इसी प्रकार, जर्मनी, फ्रांस, इटली, स्पेन आदि तथा सं.रा. अमरीका, एंग्लो-सेक्शन लॉ किसी न किसी क्रिश्चियन परम्परा को अपना स्रोत मानते हैं। इस प्रकार भारत में प्रचलित वर्तमान शासकीय अर्थ दृष्टि से संचालित व्यवस्था किसी भी भारतीय परम्परा से अपनी वैधता नहीं ग्रहण करती अपितु भारतीयों पर एक विशिष्ट यूरोख्रीस्त परम्परा बलपूर्वक लादती है और भारतीय नागरिकों की सम्पत्ति को तदनुसार नियंत्रित करती एवं उस पर राज्य का स्वत्व स्थापित करती है। इस प्रकार यह व्यवस्था मूलत: हिंसक समृद्धि की जनक, पोषक एवं रक्षक है। परन्तु यह व्यवस्था विश्व-इतिहास में अपवाद है। **(क्रमश:)**

ए 141, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल-462030 (म.प्र.)
मो. 8349350267

पाण्डवों की विपदा में देखने के लिए दुर्योधन का द्वैत वन में जाना

- कुसुमलता केडिया

इतिहास, समाज विज्ञान और अर्थशास्त्र की गहरी अध्येता और तर्कपूर्ण विवेचना में सिद्धहस्त विदुषी प्रो. कुसुमलता केडिया के वैचारिक आलेखों का शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशन किया जा रहा है ताकि हमारे पाठकों में बौद्धिक उत्तेजना उत्पन्न हो और वे हमारी ज्ञान परंपरा को तार्किक ढंग से आत्मसात कर मौलिक लेखन की ओर प्रवृत्त हों। प्रस्तुत है इस लेखमाला की अगली किश्त **'पाण्डवों को विपदा में देखने के लिए दुर्योधन का द्वैत वन में जाना'** *पाठकों की प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा रहेगी।*

- सम्पादक

स्वदेशी अर्थचेतना की संवाहक।

जन्म - 2 जुलाई 1954।

जन्म स्थान - पडरौना (उ.प्र.)।

शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी।

रचनाएँ - अनेक पुस्तकें प्रकाशित।

तीर्थयात्राएँ करते हुए पाण्डव जाकर द्वैतवन में कुटी बनाकर रहने लगे। विपदा की उस दशा में उनके होने की जानकारी हस्तिनापुर पहुँची तो शकुनि और कर्ण ने दुर्योधन को उकसाया कि चलो द्वैत वन में चलकर पाण्डवों की दुर्दशा देखें। इसके लिए उन्होंने दुर्योधन की बहुत प्रशंसा की और कहा -

'प्रव्राज्य पाण्डवान् वीरान् स्वेन वीर्येण भारत।
भुङ्क्ष्वेमां पृथिवीमेको दिवि शम्बरहा यथा।।2।।
प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च प्रतीच्योदीच्यवासिनः।
कृताः करप्रदाः सर्वे राजानस्ते नराधिप।।3।।
या हि सा दीप्यमानेव पाण्डवानभजत् पुरा।
साद्य लक्ष्मीस्त्वया राजन्नवाप्ता भ्रातृभिः सह।।4।।
इन्द्रप्रस्थगते यां तां दीप्यमानां युधिष्ठिरे।
अपश्याम श्रियं राजन् दृश्यते सा तवाद्य वै।।5।।

हे भारत, आपने अपने (बुद्धिछलरूपी) पराक्रम से पाण्डव वीरों को देश निकाला दे दिया और उन्हें वन-वन भटकने को विवश कर दिया। अब इस पृथ्वी का उसी तरह भोग करो जैसे इन्द्र स्वर्ग का करते हैं। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा के सभी राजाओं को आपने करद बना लिया है। जो लक्ष्मी पहले पाण्डवों की थी, वह आज आपके अधिकार में आ गई है। हम लोगों ने इन्द्रप्रस्थ में जिस राजलक्ष्मी का प्रकाश देखा था, वही प्रकाश अब आपके यहाँ उद्भासित हो रहा है।

ऐसी चाटुकारिता करके दोनों ने दुर्योधन को उकसाया कि द्वैतवन चलो और अपने वैभव से पाण्डवों को संताप दो। उनकी निर्धनता की दशा है और वे तुम्हें देखकर संतप्त होंगे। आगे उन्होंने दुर्योधन को और उकसाया -

न पुत्रधनलाभेन न राज्येनापि विन्दति।
प्रीतिं नृपतिशार्दूल याममित्राघदर्शनात्।।19।।
किं नु तस्य सुखं न स्यादाश्रमे यो धनंजयम्।
अभिवीक्षेत सिद्धार्थो वल्कलाजिनवाससम्।।20।।
सुवाससो हि ते भार्या वल्कलाजिनसंवृताम्।
पश्यन्तु दुःखितां कृष्णां सा च निर्विद्यतां पुनः।।21।।

(कर्ण और शकुनि दोनों ने आगे कहा-'हे नरश्रेष्ठ, मनुष्य को अपने शत्रुओं की दुर्दशा देखने से जो प्रसन्नता प्राप्त होती है, वैसी प्रसन्नता धनलाभ, पुत्रलाभ और राज्यलाभ से भी नहीं होती। जब हम लोग अर्जुन को वल्कल और मृगछाला पहने देखेंगे तो अनुपम सुख मिलेगा। आपकी रानियाँ सुन्दर-सुन्दर साड़ियाँ और आभूषण पहने होंगी और वे वल्कल तथा मृगचर्म लपेटे हुए दुखी द्रौपदी को देखेंगी, यह स्वयं में बड़ा सुख है। उससे द्रौपदी अपने मन में गहरा संताप करेगी।')

इस पर दुर्योधन ने कहा कि आप दोनों तो हमारे मन की ही बात कह रहे हैं। परंतु इसके लिये पिताजी की आज्ञा पाना बहुत कठिन है। मैं भगवा वस्त्रों में द्रुपद कुमारी को देखूँ, यह मेरे लिये परम प्रसन्नता की

बात है। विपदा में पड़े हुए युधिष्ठिर और सभी पाण्डव राजलक्ष्मी से शोभित मुझे देखें तो मेरा जीवन सफल हो जाए। परंतु पिताजी की आज्ञा कैसे प्राप्त हो?

इस पर कर्ण ने हँसकर दुर्योधन से कहा-'हे नरेश्वर, हे जनेश्वर, हम लोग अपनी गायों को देखने के बहाने द्वैतवन जाने के लिए महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा प्राप्त करें। इस पर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। परन्तु धृतराष्ट्र आज्ञा देने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा कि तुम लोग पाण्डवों को कुपित अवश्य करोगे और तब उनकी क्रोधाग्नि से तुम भस्म हो सकते हो।'

इस पर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि तीनों ने आश्वासन दिया कि वे ऐसा कुछ नहीं करेंगे। शकुनि ने धूर्ततापूर्वक कहा कि युधिष्ठिर धर्मात्मा हैं और वे 12 वर्षों तक वन में रहने के लिए वचनबद्ध हैं। अत: वे शांत ही रहेंगे और हम भी ऐसा कुछ नहीं करेंगे। हम तो वहाँ अपनी गायों की गणना करने जा रहे हैं। इस पर धृतराष्ट्र ने अनुमति दे दी।

तब दुर्योधन सेना सहित द्वैतवन जा पहुँचा। वहाँ वह गायों का निरीक्षण करने लगा और सब पर संख्या तथा निशानी डलवा दी -

ददर्श स तदा गाव: शतशोऽथ सहस्त्रश:।
अङ्कैर्लक्षैश्च ता: सर्वा लक्षयामास पार्थिव:।।4।।

आगे वैशम्पायन बताते हैं कि दुर्योधन ने सभी गायों और बछड़ों की पृथक-पृथक गणना करवाई और समस्त अभिलेख सुरक्षित कर लिए ताकि पिता जी को दिखा सकें। इसके बाद वह वहाँ अपनी पूरी मंडली और सेना के साथ सुखपूर्वक विहार करने लगा। उसने आस-पास के गवैये, गोप और वस्त्र आभूषणों से सज्जित उनकी कन्याओं को भी बुलाया तथा उन्हें खाने-पीने की बहुत सी चीजें दीं। वे सब वहाँ रहने लगे तथा विहार करने लगे।

एक दिन सैनिकों के साथ दुर्योधन घूमते हुए द्वैतवन सरोवर के पास जा पहुँचा। वहाँ गंधर्वराज चित्रसेन के सेवकों ने उसे रोक दिया। इस पर दुर्योधन क्रुद्ध हो गया और उसने अपने राजसेवकों से कहा कि जाकर गंधर्वराज को सूचना दो कि वे यह परिसर खाली करें क्योंकि अब यहाँ महाराज दुर्योधन रहेंगे। दुर्योधन के राजसेवकों की बात सुनकर गंधर्वराज पहले हँसने लगे और फिर वाणी को कठोर करते हुए बोले-

न चेतयति वो राजा मन्दबुद्धि: सुयोधन:।
योऽस्मानाज्ञापयत्येवं वैश्यानिव दिवौकस:।।28।।
यूयं मुमूर्षवश्चापि मन्दप्रज्ञा न संशय:।
ये तस्य वचनादेवमस्मान् ब्रूत विचेतस:।।29।।
गच्छध्वं त्वरिता: सर्वे यत्र राजा स कौरव:।
न चेदद्यैव गच्छध्वं धर्मराजनिवेशनम्।।30।।

(तुम्हारा राजा दुर्योधन मंदबुद्धि है। वह देवलोकवासी गंधर्वों को आज्ञा देने की मूर्खता कर रहा है, मानो हम उसकी प्रजा हों। तुम भी उसका संदेश लेकर चले आए इससे लगता है कि तुम्हारी बुद्धि भी मारी गई है और तुम उस मंदबुद्धि दुर्योधन के कहे अनुसार यहाँ बातें कर रहे हो। तुरंत लौट जाओ नहीं तो धर्मराज के पास तुरंत जाना पड़ेगा।)

गंधर्वराज की यह बात सुनते ही दुर्योधन के सेनानायक सैनिकों के साथ वहाँ से भाग गए और जाकर दुर्योधन को सब बातें बताईं। इस पर दुर्योधन भड़क गया और उसने गंधर्वों को दंडित करने की आज्ञा दी। जब दुर्योधन के सैनिक द्वैतवन में आगे बढ़े तो पहले गंधर्वों ने उन्हें रोका और जब वे नहीं रुके तो गंधर्वराज को सूचना दी। इस पर चित्रसेन को क्रोध आया और उन्होंने कौरवों को दुष्ट कहते हुए उनके दमन की आज्ञा दी। जब कुपित गंधर्वों ने अस्त्र-शस्त्रों के साथ आक्रमण किया तो सभी कौरव तथा उनकी सेनाए वहाँ से भाग खड़ी हुईं। केवल कर्ण ने उनका सामना किया और अद्भुत पराक्रम दिखाया। कर्ण का पराक्रम देखकर कौरव लोग भी लड़ने को आ जुटे। भयंकर युद्ध हुआ। अपने सैनिकों को भयभीत देख गंधर्वराज चित्रसेन अपने सिंहासन से उछल पड़े। वे युद्ध की विचित्र-विचित्र पद्धतियों के ज्ञाता थे। उन्होंने माया का आश्रय लिया और उस माया के प्रभाव से सभी कौरव सैनिक भागने लगे। केवल कर्ण पूर्व की भाँति ही अविचल युद्ध करता रहा। इस पर अनेक गंधर्व एक साथ कर्ण पर टूट पड़े और उसे आहत कर दिया। इससे कर्ण ने भी युद्ध से पलायन उचित समझा। इस प्रकार समस्त कौरव सेना भाग चली। अंत में चित्रसेन ने दुर्योधन, दुशासन और शकुनि सहित सभी कौरवों को बंदी बना लिया और सम्पूर्ण कौरव सेना को मार भगाया। भागे हुए कौरव सैनिक पाण्डवों की शरण में गए। वहाँ उन्होंने सारा हाल सुनाया। इस पर युधिष्ठिर ने कौरवों की सहायता करनी चाही। इससे कुपित होकर भीमसेन ने कहा-'हे राजन, जो काम हम बहुत प्रयत्न से करते, उसे गंधर्वों ने ही पूरा कर दिया। निश्चय ही ये कौरव किसी षड्यंत्र से आए थे। गंधर्वों ने हमारा हित ही किया है। परंतु युधिष्ठिर ने कहा -

भवन्ति भेदा ज्ञातीनां कलहाश्च वृकोदर।
प्रसक्तानि च वैराणि कुलधर्मो न नश्यति।।2।।
यदा तु कश्चिज्ज्ञातीनां बाह्य: पोथयते कुलम्।
न मर्षयन्ति तत् सन्तो बाह्येनाभिप्रधर्षणम्।।3।।

(हे भीमसेन, ज्ञातिजनों अर्थात बंधु-बांधवों में कलह और भेद रहे ही आते हैं। कभी-कभी वैर भी हो जाता है। परंतु तब भी आत्मीयता और अपनापन ही कुलधर्म है। वह समाप्त नहीं हो जाता। कुल पर किसी बाहरी के द्वारा आक्रमण किए जाने पर कोई भी श्रेष्ठ पुरुष उसे सहन नहीं कर सकता।)

इसलिए तुम जाओ और दुर्योधन की रक्षा करो। इसके साथ ही यह भी बात है कि हम लोग क्षत्रिय हैं और क्षत्रिय शरणागत की सदा रक्षा करता है। इसलिए जाओ। इस पर भीमसेन ने पुनः प्रतिकार किया और स्मरण दिलाया कि इसी दुर्योधन ने हम लोगों को लाक्षागृह में भस्म कर देने का पूरा षड्यंत्र किया था केवल दैव ने हमें बचाया। छलपूर्ण जुए में जीत कर द्रौपदी से इसने दुर्व्यवहार किया, जो सर्वथा दंडनीय है। अब दैवकृपा से जो दंड देने का काम हम लोगों को करना था वह गंधर्वों ने कर दिया है। तो ऐसी स्थिति में हमें गंधर्वों को अपना उपकारी मानना चाहिए।

भीमसेन और युधिष्ठिर की यह वार्ता चल ही रही थी कि चित्रसेन बंदी दुर्योधन को लिए हुए पास से गुजरा। युधिष्ठिर को देखकर दुर्योधन कातर स्वर में जोर-जोर से रोने लगा और बोला -

पाण्डुपुत्र महाबाहो पौरवाणां यशस्कर।
सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठ गन्धर्वेण हृतं बलात्।।
रक्षस्व पुरुषव्याघ्र युधिष्ठिर महायशः।।
भ्रातरं ते महाबाहो बद्ध्वा नयति मामयम्।
दुःशासनं दुर्विषहं दुर्मुखं दुर्जयं तथा।।
बद्ध्वा हरन्ति गन्धर्वा अस्मद्दारांश्च सर्वशः।
अनुधावत मां क्षिप्रं रक्षध्वं पुरुषोत्तमाः।।
वृकोदर महाबाहो धनंजय महायशः।
यमौ मामनुधावेतां रक्षार्थं मम सायुधौ।।
कुरूवंशस्य तु महदयशः प्राप्तमीदृशम्।
व्यपोहयध्वं गन्धर्वान् जित्वा वीर्येण पाण्डवाः।।

हे महाबाहु, पुरुष सिंह, पाण्डुपुत्र, महायशस्वी धर्मराज भ्राता युधिष्ठिर यह गंधर्व हमें बलपूर्वक ले जा रहा है हमारी रक्षा करो। हे महाबाहु भीम और महायशस्वी अर्जुन, नकुल और सहदेव हमारी रक्षा करो। अपने पराक्रम से गंधर्वों को जीतकर मार डालो। कुरूवंश के लिए हम लोगों का बंदी बनना अपयशकारक है। **(क्रमशः)**

ए-142, आकृति हाईलैण्ड
डाकघर-फंदा, भोपाल-462036 (म.प्र.)
मो.-8349350267

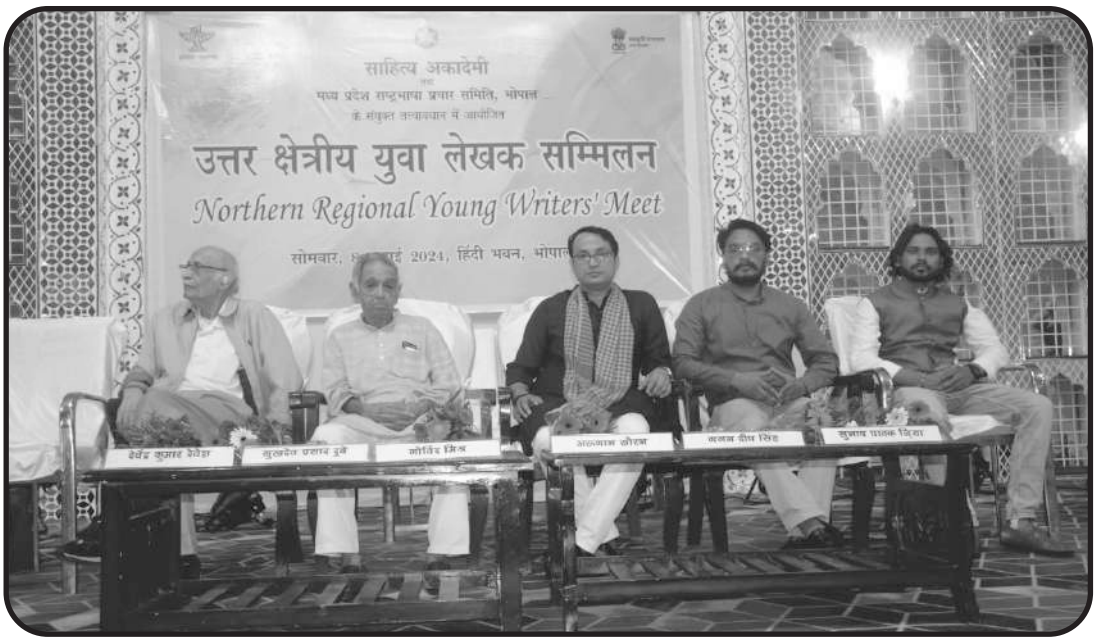

उत्तर क्षेत्रीय युवा लेखक सम्मिलन

असमानता को कम करना सर्वोच्च मानवीय उपलब्धि है

मूल - विलियम हेनरी गेट्स
अनु. - विभा खरे

शिक्षा - एम.एच.एस.सी., एम.ए.।

रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में लेखन।

विशेष - अनुवाद में विशेष कार्य ।

(हार्वर्ड कमेंसमेंट 2007) (विलियम हेनरी गेट्स तृतीय जन्मे 28 अक्टूबर, 1955 एक अमेरिकी व्यवसायी, निवेशक, परोपकारी और लेखक हैं, जिन्हें अपने बचपन के दोस्त पॉल एलन के साथ सॉफ्टवेयर कंपनी माइक्रोसॉफ्ट के सह-संस्थापक के रूप में जाना जाता है। माइक्रोसॉफ्ट में अपने करियर के दौरान, गेट्स ने अध्यक्ष, मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सीईओ), मुख्य सॉफ्टवेयर आर्किटेक्ट के पद सँभाले, मई 2014 तक वे इसके सबसे बड़े व्यक्तिगत शेयरधारक भी रहे। वह माइक्रो कंप्यूटर क्रांति के अग्रणी थे।)

मैं इस समय पर दिए गए सम्मान के लिए हार्वर्ड को धन्यवाद देना चाहता हूँ। मैं अगले साल अपनी नौकरी बदल रहा हूँ और आखिरकार मेरे रिज्यूमे में कॉलेज की डिग्री होना अच्छा होगा।

मैं आज स्नातकों की सराहना करता हूँ कि वे अपनी डिग्री के लिए बहुत ही सीधा रास्ता अपना रहे हैं। जहाँ तक मेरी बात है, मैं सिर्फ़ इस बात से खुश हूँ कि क्रिमसन ने मुझे 'हार्वर्ड का सबसे सफल ड्रॉपआउट' कहा है। इससे मुझे अपनी तरह के लोगों की विदाई का भाषण देने का हक देता है। मैंने उन सभी में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन किया जो असफल हुए।

लेकिन मैं यह भी चाहता हूँ कि मुझे उस व्यक्ति के रूप में पहचाना जाए जिसने स्टीव बाल्मर को बिजनेस स्कूल छोड़ने पर मजबूर किया। मैं एक बुरा प्रभाव डालता हूँ। इसीलिए मुझे आपके स्नातक समारोह में बोलने के लिए आमंत्रित किया गया था। अगर मैंने आपके ओरिएंटेशन में बात की होती, तो शायद आप में से बहुत कम लोग आज यहाँ होते।

हार्वर्ड मेरे लिए एक अभूतपूर्व अनुभव था। शैक्षणिक जीवन आकर्षक था। मैं बहुत सी कक्षाओं में बैठता था, जिनके लिए मैंने साइन अप भी नहीं किया था। और छात्रावास का जीवन शानदार था। मैं रेडक्लिफ़ में, क्यूरियर हाउस में रहता था। देर रात मेरे छात्रावास के कमरे में हमेशा बहुत से लोग चर्चा करते रहते थे, क्योंकि सभी जानते थे कि मैं सुबह उठने की चिंता नहीं करता। इस तरह मैं असामाजिक समूह का नेता बन गया। हम उन सभी सामाजिक लोगों को अस्वीकार करने की अपनी भावना को वैध बनाने के लिए एक-दूसरे से जुड़े रहे।

रैडक्लिफ़ रहने के लिए एक शानदार जगह थी। वहाँ ज़्यादातर महिलाएँ थीं और ज़्यादातर पुरुष विज्ञान-गणित प्रकार के थे। अगर आप समझ रहे हैं कि मेरा क्या मतलब है, तो इस संयोजन ने मुझे सबसे अच्छे अवसर दिए। यहीं से मैंने दुखद सबक सीखा कि अपने अवसरों को बेहतर बनाना सफलता की गारंटी नहीं है। हार्वर्ड की मेरी सबसे बड़ी यादों में से एक जनवरी 1975 में आई, जब मैंने क्यूरियर हाउस से अल्बुकर्क की एक कंपनी को कॉल किया, जिसने दुनिया का पहला पर्सनल कंप्यूटर बनाना शुरू किया था। मैंने उन्हें सॉफ़्टवेयर बेचने की पेशकश की। मुझे चिंता थी कि उन्हें एहसास होगा कि मैं सिर्फ़ एक छात्रावास में पढ़ने वाला छात्र हूँ और वे मुझसे बात करना बंद कर देंगे। इसके बजाय उन्होंने कहा-'हम अभी पूरी तरह से तैयार नहीं हैं, एक महीने में हमसे मिलने आएँ,' जो एक अच्छी बात थी, क्योंकि हमने अभी तक सॉफ़्टवेयर नहीं लिखा था। उस पल से, मैंने इस छोटे से अतिरिक्त क्रेडिट प्रोजेक्ट पर दिन-रात काम किया, जिसने मेरी कॉलेज की शिक्षा के अंत और माइक्रोसॉफ्ट के साथ एक उल्लेखनीय यात्रा की शुरुआत को चिह्नित किया।

हार्वर्ड के बारे में मुझे जो सबसे ज़्यादा याद है, वह है इतनी ऊर्जा और बुद्धिमत्ता के बीच रहना। यह उत्साहजनक, डराने वाला, कभी-कभी हतोत्साहित करने वाला भी हो सकता है, लेकिन हमेशा चुनौतीपूर्ण होता है। यह एक अद्भुत विशेषाधिकार था-और हालाँकि मैं जल्दी ही वहाँ से चला गया, लेकिन हार्वर्ड में बिताए अपने वर्षों में, मैंने जो दोस्ती की, और जिन विचारों पर मैंने काम किया, उससे मैं बदल गया। लेकिन पीछे मुड़कर देखें तो मुझे एक बड़ा अफसोस है।

मैं हार्वर्ड से यह जाने बिना ही चला गया कि दुनिया में भयानक असमानताएँ हैं–स्वास्थ्य, धन, और अवसर की भयावह असमानताएँ जो लाखों लोगों को निराशा के जीवन में धकेलती हैं।

मैंने हार्वर्ड में अर्थशास्त्र और राजनीति के नए विचारों के बारे में बहुत कुछ सीखा। मुझे विज्ञान में हो रही प्रगति के बारे में बहुत कुछ पता चला।

लेकिन मानवता की सबसे बड़ी प्रगति उसकी खोजों में नहीं है–बल्कि इस बात में है कि उन खोजों को असमानता को कम करने के लिए कैसे लागू किया जाता है। चाहे लोकतंत्र के माध्यम से, मजबूत सार्वजनिक शिक्षा, गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवा, या व्यापक आर्थिक अवसर के माध्यम से–असमानता को कम करना सर्वोच्च मानवीय उपलब्धि है।

इस देश में लाखों युवाओं को शिक्षा के अवसरों से वंचित किए जाने के बारे में बहुत कम जानते हुए मैंने कैंपस छोड़ा। और मुझे विकासशील देशों में अकल्पनीय गरीबी और बीमारी में जी रहे लाखों लोगों के बारे में कुछ भी नहीं पता था।

मुझे यह पता लगने में दशकों लग गए।

आप स्नातक हार्वर्ड में एक अलग समय पर आए। आप दुनिया की असमानताओं के बारे में पहले की कक्षाओं से ज़्यादा जानते हैं। यहाँ आपके वर्षों में, मुझे आशा है कि आपको इस बारे में सोचने का मौका मिला होगा कि कैसे–तेजी से बढ़ती तकनीक के इस युग में–हम आखिरकार इन असमानताओं को दूर कर सकते हैं, और हम उन्हें हल कर सकते हैं।

कल्पना कीजिए, केवल चर्चा करने के लिए, कि आपके पास सप्ताह में कुछ घंटे और महीने में कुछ डॉलर हैं, जिन्हें आप किसी विशेष कारण के लिए दान कर सकते हैं–और आप उस समय और पैसे को वहाँ खर्च करना चाहते हैं जहाँ इसका प्रयोग जीवन को बचाने और सुधारने में सबसे अधिक हो। आप इसे कहाँ खर्च करेंगे? मेलिंडा (धर्मपत्नी) और मेरे लिए, चुनौती एक ही है–हम अपने पास मौजूद संसाधनों से सबसे ज़्यादा लोगों के लिए सबसे अच्छा कैसे कर सकते हैं।

इस प्रश्न पर हमारी चर्चा के दौरान, मेलिंडा और मैंने एक लेख पढ़ा जिसमें उन लाखों बच्चों के बारे में बताया गया था जो हर साल गरीब देशों में उन बीमारियों से मर रहे थे जिन्हें हमने बहुत पहले ही इस देश में हानिरहित बना दिया था। खसरा, मलेरिया, निमोनिया, हेपेटाइटिस बी, पीला बुखार। एक बीमारी जिसके बारे में मैंने कभी सुना भी नहीं था, रोटावायरस, हर साल पाँच लाख बच्चों की जान ले रही थी–उनमें से कोई भी संयुक्त राज्य अमेरिका में नहीं थी।

हम चौंक गए। हमने बस यह मान लिया था कि अगर लाखों बच्चे मर रहे हैं और उन्हें बचाया जा सकता है, तो दुनिया उन्हें बचाने के लिए दवाइयों की खोज और वितरण को प्राथमिकता देगी। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। एक डॉलर से कम में, ऐसे उपाय थे जो उन लोगों की जान बचा सकते थे जो अभी तक उन लोगों तक नहीं पहुँच पाए हैं।

अगर आप मानते हैं कि हर जीवन का समान मूल्य है, तो यह जानना आपको चौंका देगा कि कुछ जीवन को बचाने लायक माना जाता है और दूसरों को नहीं। हमने खुद से कहा–'यह सच नहीं हो सकता। लेकिन अगर यह सच है, तो यहाँ हमारे देने की प्राथमिकता होनी चाहिए।'

इसलिए हमने अपना काम उसी तरह शुरू किया जैसे यहाँ कोई भी शुरू करेगा। हमने पूछा–'दुनिया इन बच्चों को कैसे मरने दे सकती है?'

इसका उत्तर सरल और कठोर है। बाजार ने इन बच्चों की जान बचाने के लिए कोई पुरस्कार नहीं दिया और सरकारों ने इस पर कोई सब्सिडी नहीं दी। बच्चे इसलिए मर गए क्योंकि उनके माता–पिता के पास बाजार में कोई शक्ति नहीं थी और व्यवस्था में उनकी कोई आवाज नहीं थी।

लेकिन आपके और मेरे पास दोनों ही हैं।

अगर हम अधिक रचनात्मक पूँजीवाद विकसित करें तो हम बाजार की ताकतों को गरीबों के लिए बेहतर तरीके से काम करने के लिए तैयार कर सकते हैं–अगर हम बाजार की ताकतों की पहुँच को बढ़ाएँ ताकि अधिक लोग लाभ कमा सकें, या कम से कम अपनी आजीविका चला सकें, सबसे बुरी असमानताओं से पीड़ित लोगों की सेवा कर सकें। हम दुनिया भर की सरकारों पर करदाताओं के पैसे को ऐसे तरीकों से खर्च करने के लिए दबाव डाल सकते हैं जो इनका भुगतान करने वाले लोगों के मूल्यों को बेहतर ढंग से दर्शाते हैं।

अगर हम ऐसे तरीके खोज पाए जो गरीबों की जरूरतों को इस तरह से पूरा करें कि व्यापार के लिए मुनाफा और राजनेताओं के लिए वोट पैदा हो, तो हम दुनिया में असमानता को कम करने का एक स्थायी तरीका खोज लेंगे। यह कार्य खुला हुआ है। इसे कभी पूरा नहीं किया जा सकता। लेकिन इस चुनौती का जवाब देने के लिए एक सचेत प्रयास दुनिया को बदल देगा।

मैं आशावादी हूँ कि हम ऐसा कर सकते हैं, लेकिन मैं उन संशयवादियों से बात करता हूँ जो दावा करते हैं कि कोई उम्मीद नहीं है। वे कहते हैं-'असमानता शुरू से ही हमारे साथ रही है, और अंत तक हमारे साथ रहेगी-क्योंकि लोग बस परवाह नहीं करते।' मैं पूरी तरह से असहमत हूँ।

मेरा मानना है कि हमारे पास इतनी परवाह है कि हम नहीं जानते कि उसका क्या करना है। हम सभी ने इस यार्ड में, एक समय या किसी अन्य समय पर, मानवीय त्रासदियों को देखा है जिसने हमारे दिलों को तोड़ दिया, और फिर भी हमने कुछ नहीं किया-इसलिए नहीं कि हमें परवाह नहीं थी, बल्कि इसलिए कि हमें नहीं पता था कि क्या करना है। अगर हमें पता होता कि कैसे मदद करनी है, तो हम काम करते।

बदलाव की बाधा बहुत कम देखभाल नहीं है; यह बहुत अधिक जटिल है। देखभाल को कार्रवाई में बदलने के लिए, हमें समस्या को देखना होगा, समाधान को देखना होगा और प्रभाव को देखना होगा। लेकिन जटिलता इन तीनों चरणों को रोकती है। इंटरनेट और 24 घंटे की खबरों के आगमन के बाद भी, लोगों को वास्तव में समस्याओं को समझाना अभी भी एक जटिल उद्यम है। जब कोई हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त होता है, तो अधिकारी तुरंत एक प्रेस कॉन्फ्रेंस बुलाते हैं। वे जाँच करने, कारण निर्धारित करने और भविष्य में इसी तरह की दुर्घटनाओं को रोकने का वादा करते हैं। लेकिन अगर अधिकारी पूरी तरह से ईमानदार होते, तो वे कहते-'दुनिया में आज जितने भी लोग उन कारणों से मरे हैं जो रोके जा सकते थे, उनमें से आधे प्रतिशत इसी विमान में सवार थे। हम उस समस्या को हल करने के लिए हर संभव प्रयास करने के लिए दृढ़ हैं जिसने आधे प्रतिशत लोगों की जान ले ली।' बड़ी समस्या विमान दुर्घटना नहीं है, बल्कि लाखों रोके जा सकने वाली मौतें हैं। हम इन मौतों के बारे में बहुत कुछ नहीं पढ़ते। मीडिया जो नया है उसे कवर करता है-और लाखों लोगों का मरना कोई नई बात नहीं है। इसलिए यह पृष्ठभूमि में रहता है, जहाँ इसे अनदेखा करना आसान होता है। लेकिन जब हम इसे देखते हैं या इसके बारे में पढ़ते हैं, तब भी समस्या पर नज़र रखना मुश्किल होता है। अगर स्थिति इतनी जटिल हो कि हम नहीं जानते कि कैसे मदद करें, तो दुख को देखना मुश्किल होता है। और इसलिए हम नज़रें फेर लेते हैं।

अगर हम वाकई किसी समस्या को देख पाते हैं, जो कि पहला कदम है, तो हम दूसरे कदम पर आते हैं-समाधान खोजने के लिए मुश्किलों को पार करना।

अगर हम किसी का ध्यान रखना चाहते हैं परवाह करते हैं तो समाधान खोजना ज़रूरी है। अगर हमारे पास किसी संगठन या व्यक्ति द्वारा पूछे जाने पर स्पष्ट और सिद्ध उत्तर हैं कि 'मैं कैसे मदद कर सकता हूँ?' तो हम कार्रवाई कर सकते हैं-और हम यह सुनिश्चित कर सकते हैं कि दुनिया की कोई भी देखभाल व्यर्थ न जाए। लेकिन अनेक जटिलताएँ उन सभी के लिए कार्रवाई का मार्ग चिह्नित करना कठिन बना देती है जो परवाह करते हैं-और इससे उनकी देखभाल का महत्व कम हो जाता है।

समाधान खोजने के लिए जटिलता को पार करना चार पूर्वानुमानित चरणों से होकर गुजरता है-एक लक्ष्य निर्धारित करें, सबसे अधिक लाभकारी दृष्टिकोण खोजें, उस दृष्टिकोण के लिए आदर्श तकनीक की खोज करें, और इस बीच, आपके पास पहले से मौजूद तकनीक का सबसे स्मार्ट अनुप्रयोग करें-चाहे वह कोई परिष्कृत चीज़ हो, जैसे कि दवा, या कोई सरल चीज़, जैसे कि मच्छरदानी।

एड्स महामारी एक उदाहरण प्रस्तुत करती है। बेशक, व्यापक लक्ष्य बीमारी को समाप्त करना है। सबसे अधिक लाभकारी दृष्टिकोण रोकथाम है। आदर्श तकनीक एक ऐसी वैक्सीन होगी जो एक खुराक से आजीवन प्रतिरक्षा प्रदान करती है। इसलिए सरकारें, दवा कंपनियाँ और संस्थाएँ वैक्सीन अनुसंधान को निधि देती हैं। लेकिन उनके काम में एक दशक से अधिक समय लगने की संभावना है, इसलिए इस बीच, हमें अपने पास जो है, उसके साथ काम करना होगा-और हमारे पास अब सबसे अच्छा रोकथाम, दृष्टिकोण लोगों को जोखिम भरे व्यवहार से दूर रखना है।

उस लक्ष्य का पीछा करने से चार-चरणीय चक्र फिर से शुरू होता है। यह पैटर्न है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कभी भी सोचना और काम करना बंद न करें-और कभी भी वह न करें जो हमने 20वीं सदी में मलेरिया और तपेदिक के साथ किया था-जो कि जटिलता के आगे समर्पण करना और हार मान लेना है।

अंतिम चरण–समस्या को देखने और एक दृष्टिकोण खोजने के बाद –अपने काम के प्रभाव को मापना और अपनी सफलताओं और असफलताओं को साझा करना है ताकि दूसरे आपके प्रयासों से सीख सकें। बेशक, आपके पास आँकड़े होने चाहिए। आपको यह दिखाने में सक्षम होना चाहिए कि एक कार्यक्रम लाखों बच्चों का टीकाकरण कर रहा है। आपको इन बीमारियों से मरने वाले बच्चों की संख्या में कमी दिखाने में सक्षम होना चाहिए। यह न केवल कार्यक्रम को बेहतर बनाने के लिए आवश्यक है, बल्कि व्यवसाय और सरकार से अधिक निवेश आकर्षित करने में भी मदद करता है।

लेकिन अगर आप लोगों को भाग लेने के लिए प्रेरित करना चाहते हैं, तो आपको संख्याओं से अधिक दिखाना होगा; आपको काम के मानवीय प्रभाव को व्यक्त करना होगा–ताकि लोग महसूस कर सकें कि प्रभावित परिवारों के लिए जीवन बचाना क्या मायने रखता है।

मुझे याद है कि कुछ साल पहले मैं दावोस गया था और एक वैश्विक स्वास्थ्य पैनल में बैठा था जो लाखों लोगों की जान बचाने के तरीकों पर चर्चा कर रहा था। लाखों! सिर्फ़ एक व्यक्ति की जान बचाने के रोमांच के बारे में सोचें–फिर उसे लाखों से गुणा करें। फिर भी यह अब तक का सबसे उबाऊ पैनल था। इतना उबाऊ कि मैं भी इसे बर्दाश्त नहीं कर सका।

उस अनुभव को खास तौर पर इसलिए उत्साहजनक बनाया क्योंकि मैं अभी–अभी एक ऐसे कार्यक्रम से आया था, जहाँ हम किसी सॉफ़्टवेयर के 13वें संस्करण को पेश कर रहे थे, और लोग उत्साह से उछल रहे थे और चिल्ला रहे थे। मुझे सॉफ़्टवेयर के बारे में लोगों को उत्साहित करना अच्छा लगता है–लेकिन हम जीवन बचाने के लिए और भी ज़्यादा उत्साह क्यों नहीं पैदा कर सकते?

आप लोगों को तब तक उत्साहित नहीं कर सकते जब तक आप उन्हें प्रभाव को देखने और महसूस करने में मदद न करें। और आप ऐसा कैसे करते हैं–यह एक मुश्किल सवाल है। फिर भी, मैं आशावादी हूँ। हाँ, असमानता हमेशा से हमारे साथ रही है, लेकिन जटिलता को दूर करने के लिए हमारे पास जो नए उपकरण हैं, वे हमेशा से हमारे साथ नहीं रहे हैं। वे नए हैं–वे हमारी देखभाल का अधिकतम लाभ उठाने में हमारी मदद कर सकते हैं–और यही कारण है कि भविष्य अतीत से अलग हो सकता है।

इस युग के परिभाषित और चल रहे नवाचार–जैव प्रौद्योगिकी, कंप्यूटर, इंटरनेट–हमें अत्यधिक गरीबी को समाप्त करने और रोकथाम योग्य बीमारी से मृत्यु को समाप्त करने का एक ऐसा मौका देते हैं जो हमें पहले कभी नहीं मिला।

साठ साल पहले, जॉर्ज मार्शल इस दीक्षांत समारोह में आए और युद्ध के बाद के यूरोप के देशों की सहायता करने की योजना की घोषणा की। उन्होंने कहा–'मुझे लगता है कि एक कठिनाई यह है कि समस्या इतनी जटिल है कि प्रेस और रेडियो द्वारा जनता के सामने प्रस्तुत किए गए तथ्यों की अधिकता आम आदमी के लिए स्थिति का स्पष्ट मूल्यांकन करना बहुत मुश्किल बना देती है। इस दूरी पर स्थिति के वास्तविक महत्व को समझना लगभग असंभव है।' मार्शल के संबोधन के तीस साल बाद, जब मेरी कक्षा ने मेरे बिना स्नातक किया, तो ऐसी तकनीक उभर रही थी जो दुनिया को छोटा, अधिक खुला, अधिक दृश्यमान और कम दूर बना देगी। कम लागत वाले व्यक्तिगत कंप्यूटरों के उद्भव ने एक शक्तिशाली नेटवर्क को जन्म दिया जिसने सीखने और संचार के अवसरों को बदल दिया है।

इस नेटवर्क की जादुई बात सिर्फ़ यह नहीं है कि यह दूरी को कम करता है और हर किसी को आपका पड़ोसी बनाता है। यह एक ही समस्या पर एक साथ काम करने वाले प्रतिभाशाली दिमागों की संख्या में भी नाटकीय रूप से वृद्धि करता है–और यह नवाचार की दर को एक चौंका देने वाली हद तक बढ़ाता है।

साथ ही, दुनिया में हर उस व्यक्ति के लिए जिसके पास इस तकनीक तक पहुँच है, पाँच लोगों के पास नहीं है। इसका मतलब है कि कई रचनात्मक दिमाग इस चर्चा से बाहर रह जाते हैं–व्यावहारिक बुद्धि और प्रासंगिक अनुभव वाले स्मार्ट लोग जिनके पास अपनी प्रतिभा को निखारने या दुनिया को अपने विचार देने के लिए तकनीक नहीं है।

हमें इस तकनीक तक अधिक से अधिक लोगों की पहुँच की आवश्यकता है, क्योंकि ये प्रगति मनुष्य द्वारा एक दूसरे के लिए किए जा सकने वाले कार्यों में क्रांति ला रही है। वे न केवल राष्ट्रीय सरकारों के लिए, बल्कि विश्वविद्यालयों, निगमों, छोटे संगठनों और यहाँ तक कि व्यक्तियों के लिए भी समस्याओं को देखना, दृष्टिकोण देखना और भूख, गरीबी और हताशा को दूर करने के उनके प्रयासों के प्रभाव को मापना संभव बना रहे हैं, जिसके बारे में जॉर्ज मार्शल ने 60 साल पहले बात की थी।

हार्वर्ड परिवार के सदस्य यहाँ यार्ड में दुनिया की बौद्धिक प्रतिभाओं

का एक बेहतरीन संग्रह है।

किस लिए?

इसमें कोई संदेह नहीं है कि हार्वर्ड के संकाय, पूर्व छात्र, छात्र और लाभार्थियों ने अपनी शक्ति का उपयोग यहाँ और दुनिया भर के लोगों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए किया है। लेकिन क्या हम और कुछ कर सकते हैं? क्या हार्वर्ड अपनी बुद्धि को उन लोगों के जीवन को बेहतर बनाने के लिए समर्पित कर सकता है जो कभी इसका नाम भी नहीं सुनेंगे?

मैं डीन और प्रोफेसरों से–हार्वर्ड में बौद्धिक नेताओं से–एक अनुरोध करना चाहता हूँ–जब आप नए संकाय को नियुक्त करते हैं, कार्यकाल प्रदान करते हैं, पाठ्यक्रम की समीक्षा करते हैं, और डिग्री की आवश्यकताओं को निर्धारित करते हैं, तो कृपया खुद से पूछें–क्या हमारे सबसे अच्छे दिमाग को हमारी सबसे बड़ी समस्याओं को हल करने के लिए समर्पित होना चाहिए?

क्या हार्वर्ड को अपने संकाय को दुनिया की सबसे बुरी असमानताओं को दूर करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए? क्या हार्वर्ड के छात्रों को वैश्विक गरीबी की गहराई के बारे में सीखना चाहिए दुनिया भर में भूख की व्यापकता स्वच्छ पानी की कमी लड़कियों को स्कूल से बाहर रखा जाना वे बच्चे जो उन बीमारियों से मर जाते हैं जिनका इलाज हम कर सकते हैं।

क्या दुनिया के सबसे विशेषाधिकार प्राप्त लोगों को दुनिया के सबसे कम विशेषाधिकार प्राप्त लोगों के जीवन के बारे में सीखना चाहिए? ये बयानबाजी के सवाल नहीं हैं–आप अपनी नीतियों से जवाब देंगे। मेरी माँ, जो उस दिन गर्व से भर गई थीं जब मैं यहाँ भर्ती हुआ था– उन्होंने कभी भी मुझे दूसरों के लिए और अधिक करने के लिए दबाव डालना बंद नहीं किया। मेरी शादी से कुछ दिन पहले, उन्होंने एक ब्राइडल इवेंट आयोजित किया, जिसमें उन्होंने मेलिंडा को लिखे गए विवाह के बारे में एक पत्र को जोर से पढ़ा। उस समय मेरी माँ कैंसर से बहुत बीमार थीं, लेकिन उन्होंने अपना संदेश देने का एक और अवसर देखा, और पत्र के अंत में उन्होंने कहा– 'जिन लोगों को बहुत कुछ दिया जाता है, उनसे बहुत कुछ अपेक्षित होता है।' जब आप इस बात पर विचार करते हैं कि इस यार्ड में हम में से कितने लोगों को प्रतिभा, विशेषाधिकार और अवसर दिए गए हैं, तो दुनिया को हमसे जो उम्मीद करने का अधिकार है, उसकी कोई सीमा नहीं है।

इस युग के वादे के अनुरूप, मैं यहाँ के प्रत्येक स्नातक को एक मुद्दे पर काम करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहता हूँ–एक जटिल समस्या, एक गहरी असमानता, और उस पर एक विशेषज्ञ बनना। यदि आप इसे अपने करियर का केंद्र बनाते हैं, तो यह अभूतपूर्व होगा। लेकिन प्रभाव डालने के लिए आपको ऐसा करने की ज़रूरत नहीं है। हर हफ़्ते कुछ घंटों के लिए, आप इंटरनेट की बढ़ती शक्ति का उपयोग जानकारी प्राप्त करने, समान रुचियों वाले अन्य लोगों को खोजने, बाधाओं को देखने और उन्हें दूर करने के तरीके खोजने के लिए कर सकते हैं।

जटिलता को अपने रास्ते में न आने दें। कार्यकर्ता बनें। बड़ी असमानताओं का सामना करें। यह आपके जीवन के सबसे बेहतरीन अनुभवों में से एक होगा।

आप स्नातक एक अद्भुत समय में वयस्क हो रहे हैं। हार्वर्ड छोड़ते समय, आपके पास ऐसी तकनीक है जो मेरी कक्षा के सदस्यों के पास कभी नहीं थी। आपको वैश्विक असमानता के बारे में जानकारी है, जो हमारे पास नहीं थी। और उस जानकारी के साथ, आपके पास संभवत: एक सूचित विवेक भी है जो आपको पीड़ा देगा यदि आप इन लोगों को छोड़ देते हैं जिनके जीवन को आप बहुत कम प्रयास से बदल सकते हैं। आपके पास हमारे पास जितना था उससे कहीं अधिक है; आपको जल्दी शुरू करना चाहिए, और लंबे समय तक जारी रखना चाहिए। आप जो जानते हैं, उसे जानते हुए, आप कैसे नहीं कर सकते? और मुझे उम्मीद है कि आप अब से 30 साल बाद हार्वर्ड में वापस आएँगे और इस बात पर विचार करेंगे कि आपने अपनी प्रतिभा और अपनी ऊर्जा के साथ क्या किया है। मुझे उम्मीद है कि आप खुद को केवल अपनी पेशेवर उपलब्धियों के आधार पर नहीं आँकेंगे, बल्कि इस बात पर भी आँकेंगे कि आपने दुनिया की सबसे गहरी असमानताओं को कितनी अच्छी तरह संबोधित किया है आपने दुनिया से दूर उन लोगों के साथ कितना अच्छा व्यवहार किया है जिनका आपसे कोई लेना-देना नहीं है, सिवाय उनकी मानवता के। शुभकामनाएँ।

(प्रस्तुत भाषण हार्वर्ड के स्नातकों को 2007 में दिया गया है)

एच. आई. जी., 72,
हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी, बागमुगलिया,
एक्सटेंशन, भोपाल-462043 (म.प्र.)
मो.- 9425079134

दिग्विजयी शंकराचार्य : मण्डन मिश्र

- प्रमोद पुष्कर

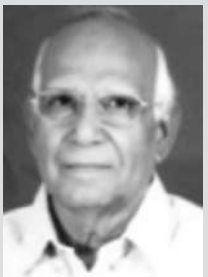

जन्म - 14 अक्टूबर 1937।
शिक्षा - एम.ए., बी. कॉम., एलएल.बी.,।
रचनाएँ - पंद्रह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - सौ से अधिक सम्मान।

(गंताक से आगे) मण्डन मिश्र पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् भी आचार्य शंकर को अभी बहुत कुछ करना शेष था, और इसीलिए गुरुदेव की आज्ञा के पालन में उन्होंने तमाम वेद तथा अद्वैत विरोधियों को शास्त्रार्थ में परास्त करके उत्तरी भारत में अद्वैत का वर्चस्व स्थापित करते हुए अपने शिष्यों सहित दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। दक्षिण में महाराष्ट्र के श्री शैल स्थित शिवलिंग मल्लिकार्जुन के दर्शन करने पर यद्यपि उनका मन वहीं रम गया तथापि वहाँ पर पाशुपात, वैष्णव, वीर, शैव, माहेश्वर आदि सम्प्रदायों के कुछ आचार्यों ने उनके भाष्य पर जब आरोप लगाए तब वहाँ साथ आए मण्डन मिश्र ने ही अपने उत्तरों से उन्हें पराजित कर दिया और यूँ वहाँ के विद्वानों को कणाद शैव, शाक्त, वैष्णव आदि सम्प्रदायों के सिद्धांत अमान्य से प्रतीत होने लगे। उधर आचार्य ने बौद्ध धर्म के सिद्धांतों का बड़ी सतर्कता से खण्डन कर उसे भी प्राणहीन सा कर दिया।

आचार्य शंकर के सामने अपने गुरु के आदेश का पालन एक प्रमुख विषय था और उसकी पूर्ती के लिए उन्होंने अपने शिष्यों सहित तीर्थों की ओर प्रस्थान का मन बनाया। वे रामेश्वरम पहुँचे और वहाँ उन्होंने शैव ब्राह्मणों को उनके धर्म के विरुद्ध मदिरा पान करते हुए देखा तो उन्हें ललकारते हुए शास्त्रार्थ में पराजित किया और आगे प्रस्थान किया। मार्ग में मध्यार्जुन की पूजा कर उन्होंने स्वयं भगवान से इस बात का निराकरण चाहा कि द्वैत अथवा अद्वैत क्या होना चाहिए? कहते हैं कि भगवान शंकर ने प्रकट होकर तीन बार सत्यद्वैत कहा और भगवान का प्राकट्य ही उनका पर्याप्त संकेत बन गया।

रामेश्वरम से चलकर वे पाण्ड्य और चाल प्रदेशों में पहुँचे और वहाँ अपनी विद्वता से सभी विरोधियों को परास्त करके प्रभावित किया। वहाँ सौर्य, गाणपत्य, शाक्त आदि मतों की आड़ में चल रहे पाखण्डों को समाप्त कर उनके अनुयायियों को वैदिक अनुगामी बनाया। इसके पश्चात् वहाँ से चलकर वे हस्तगिरि की मेखला पर स्थित काँचीनगर पहुँचे और वहाँ के तांत्रिकों के प्रभुत्व को नष्ट कर आंध्रवासियों पर वैदिक संस्कृति की छाप छोड़ते हुए विदर्भ की राजधानी बरार में भैरव मतानुयायियों को परास्त किया।

कर्नाटक में जब उन्होंने वीभत्स मत का खण्डन किया तब वहाँ उस मत के मदिरा सेवी सरदार क्रकच ने भयंकर वेशभूषा में महाभैरव की उपासना के लिए आचार्य से अनुरोध किया। क्रकच के प्रस्ताव पर वहाँ के राजा सुधन्वा ने इसका विरोध किया तब कपालिकों के सरदार ने इस बात को अपना अपमान मानते हुए आचार्य शंकर और उनके शिष्यों को मारने के लिए अपनी सेना भेजी किंतु सेना को नष्ट होते देख क्रकच ने भैरव सिद्ध करके जब उन्हें प्रकट किया तब भगवान भैरव ने उसे डाँट लगाते हुए शंकर को अपना अवतार बताया और सरदार क्रकच को मार डाला जिससे अन्य लोग शंकर के शिष्य बन गए।

गोकर्ण तीर्थ में :- अनेकानेक स्थानों के परिभ्रमण के पश्चात् आचार्य शंकर पश्चिमी सागर के गोकर्ण तीर्थ पहुँचे। इस तीर्थ के एक प्रसिद्ध विद्वान नीलकष्ठ एक प्रसिद्ध शैवाचार्य थे। उन्होंने अनेकानेक ग्रंथों की रचना करके शैव सिद्धांतों के आधार पर ब्रह्मसूत्र पर भी स्वयं एक भाष्य लिखा था। उन्हें अपनी विद्वता पर बहुत घमण्ड था और शंकराचार्य ने जब उनके मत का खण्डन किया तब वे आक्रामक होकर अद्वैत का विरोधी करने लगे। उन्होंने एकत्व का खण्डन करते हुए प्रकाश और अँधेरे का उदाहरण दिया और समझाया कि जिस प्रकार सूर्य और उसके प्रतिबिंबों में भिन्नता है, वैसे ही जीव और ब्रह्म में अभिन्नता मानना गलत है। अल्पज्ञ और सर्वज्ञ परस्पर विरोधी होते हैं और दोनों का चैतन्य एक ही मानना उचित नहीं। इसी प्रकार गौ और अश्व तथा अन्य अनेक उदाहरणों से अद्वैत का खण्डन किया।

उनके तर्क सुनकर शंकराचार्य ने तत्वमसि का विश्लेषण करते हुए, उसके लक्षण का उल्लेख करते हुए एकत्व की विशेषता प्रतिपादित

की। उन्होंने बताया कि अल्पज्ञ और सर्वज्ञ कल्पित भाव होते हैं जो सदैव कल्पित रूप में विद्यमान रहते हैं। इस स्वरूप को छोड़कर दोनों का कोई अन्य स्वरूप नहीं और इसीलिए अहंकार के रहते हुए इस दृश्य शरीर को जड़ माना जाता है। देह, अन्न, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त अहंकार आदि जीव के वास्तविक स्वरूप न होकर उसके परिवेष्टन मात्र हैं। अब यदि इस जड़ अंश को त्याग दें तो शुद्ध चैतन्य अवशिष्ट रहता है और वही स्वरूप ब्रह्म और ईश्वर का होता है और यूँ रस्सी सर्प का अज्ञान मिट जाने पर भेद नहीं रहता। बात आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि यह सारा दृश्य जगत सीप में चाँदी जैसा कल्पित है किंतु जो अधिष्ठित है, वह ईश्वर का सत्य स्वरूप है और वहाँ अल्पज्ञ और सर्वज्ञ का भेद नहीं होता इसीलिए जो भी मनुष्य उस परब्रह्म को पृथक देखता है, वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त होता है। यही बात कठोपनिषद के निम्न मंत्र में स्पष्ट रूप से कही गई है –

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह
मृत्योः स मृत्यु माप्नोति य इह पशंति। (2/9/90)

अर्थात् जो सबके परम कारण परब्रह्म यहाँ इस पृथ्वी लोक में हैं, वही परलोक तथा अनंत लोकों में भी हैं अर्थात् जो वहाँ है वही यहाँ भी और जो उन एक ही परमात्मा में उनकी लीलाओं के कारण नाना नामों तथा रूपों में उन्हें प्रकाशित (प्रमाणित) देख मोहवश उनके नानात्व (अलग होने) की कल्पना करता है, उसे पुनः-पुनः मृत्यु का शिकार होना पड़ता है तथा जन्ममरण का चक्र सहज ही नहीं छूटता। उधर तैतरीयोपनिषद की ब्रह्मानंद वल्ली के सप्तम अनुवाक् में भी कहा गया है कि सूक्ष्म और स्थूल रूप में प्रकट होने से पहले यह जगत अंयक्त था और परमात्मा ने स्वयं अपने को इसी जगत के रूप में बनाया और यूँ किसी भी प्रकार की भिन्नता मानना गलत है।

स्पष्ट है कि मनुष्य का स्वयं को ईश्वर से पृथक मानना अथवा यह कहना कि 'मैं ईश्वर नहीं हूँ' एक भ्रम है यथार्थ नहीं और इसी यथार्थ को तत्वमसि समझाता है क्योंकि इससे अधिक प्रमाण और नहीं है। कपिल, कणाद आदि ऋषियों ने स्मृतियों द्वारा श्रुति विरोधी बलहीन वाक्य कहकर द्वैत को ग्रहण किया जिसे श्रुति स्वीकार नहीं करती। उन ऋषियों के अनुसार आत्मा को अकर्ता और अभोक्ता मानना एक त्रुटि है क्योंकि आत्मा ज्ञान से युक्त होता है और यूँ कर्त्ता की कोटि में आ जाता है। यह सत्य है कि अचेतन में कर्त्तव्य भावना नहीं होती किंतु आत्मा चैतन्य होता है अतः भोग का कर्त्ता भी वही माना जाएगा। यदि कर्त्ता से भिन्न भोक्ता माने तो यज्ञदत्त का कर्मफल देवदत्त को भोगना पड़ेगा। स्पष्ट है ऐसा नहीं है अतः कर्त्ता ही भोक्ता होता है।

इसी क्रम में नीलकष्ठ ने पुनः प्रतिवाद करते हुए कपिल आदि ऋषियों के वाक्यों को श्रुतियों के समान सम्मानीय बताते हुए उनका विश्लेषण करते हुए कहा कि प्रत्येक शरीर की आत्मा भिन्न-भिन्न होने से प्रत्येक व्यक्ति के दुख-सुख भी भिन्न-भिन्न होते हैं और यूँ आत्मा की एकता की बात गलत सिद्ध हो जाती है। इसके आगे उन्होंने यह भी कहा कि यदि आत्मा का एक्य होता तो भिखारी को राजसुख और राजा को भिखारी दुख भोगना पड़ता। स्पष्ट है कि यह एक्य अनुभव में भी नहीं दिखाई देता। इसी के साथ उन्होंने यह भी कहा कि आत्मा को अकर्त्ता, अभोक्ता मानते हुए अचेतन अंतः करण पर कर्त्तव्य आरोपित करना भी न्याय संगत नहीं। वास्तव में ज्ञानयुक्त होने से आत्मा कर्त्ता बन जाता है, अकर्त्ता नहीं रहता और इसलिए भोग का कर्त्ता आत्मा ही होती है। अब यदि कर्त्ता से भोक्ता को भिन्न मानें तो यज्ञदत्त कर्त्ता का फल देवदत्त को भोगना पड़ेगा और यह उचित प्रतीत नहीं होता। अतः सिद्धांत उपयुक्त नहीं है। आगे बोलते हुए उन्होंने पुनः कहा कि आपके अनुसार आनंद की अनुभूति ही मोक्ष है, जबकि कदम-कदम पर दुख लगे हुए हैं, इसलिए दुख मिश्रित सुख भी उपादेय नहीं। वास्तव में दुख की निवृत्ति ही मोक्ष है।

आचार्य शंकर ने उनकी बातों का खण्डन करके बताया कि दुख-सुख मन का धर्म है, आत्मा से उनका कोई संबंध नहीं और इससे आत्मा की अभिन्नता खण्डित भी नहीं होती। वास्तव में यह सब शरीर भेद और मन-भेद के कारण प्रतीत होता है। देह के जड़ होने पर भी चैतन्य के संयोग से उसमें क्रियाशीलता आ जाती है। चैतन्य के संयोग बिना अचेतन तृण आदि में कर्त्तव्य भावना नहीं आती। जहाँ अंतकरण चैतन्य होता है, वहीं कर्त्तव्य और भोगत्व भाव होता है, आत्मा में नहीं होता क्योंकि वह कूटस्थ है। 'असंगो ह्ययं पुरुष' से आत्मा की असंगता श्रुति बताती है। तृण में चेतन का अभाव है अतः कर्त्तव्य भाव नहीं होता। विषयजनित सुख में दुख मिला रहता है अतः वह सुख क्षणभंगुर होता है जब ब्रह्मानंद में दुखों का अभाव रहता है। 'आनंद ब्रह्मणो विद्वान। न विभेति कदाचनेति।' अर्थात् उस ब्रह्म के आनंद को जानने वाला पुरुष कभी भयभीत नहीं रहता। स्पष्ट है कि मोक्ष दुख रूप नहीं बल्कि आनंद स्वरूप है। स्पष्टीकरण सुनकर नीलकष्ठ मौन हो गए और पराजय स्वीकार करके शंकराचार्य का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया।

द्वारिका और उज्जयिनी में :- नीलकंठ को परास्त कर आचार्य द्वारिका पहुँचे। यह स्थान वैष्णवों का गढ़ था। उनका मानना था कि पाँच प्रकार के भेदों को जानने वालों को मुक्ति मिलती है। वे प्रकार

हैं-जीव और ईश्वर भेद, जीव और जीव भेद, जीव और जड़ भेद, ईश्वर और जड़ भेद, तथा जड़ और जड़ भेद। ये लोग समुदाय बनाकर शास्त्रार्थ करने आए किंतु शंकर से पराजित होकर रह गए। इस प्रकार वैष्णव, शैव, शाक्त तथा सूर्योपासकों को परास्त करते हुए शंकराचार्य उज्जैन पहुँचे।

उज्जयिनी में भट्ट भास्कर नामक एक विद्वान थे। वे विद्वान तो अवश्य थे किंतु अहंकारी भी बहुत अधिक थे। महाकाल प्रांगण में उनकी शंकराचार्य से जब बहस हुई तो वे अपने मत के प्रतिपादन में सफल नहीं हो सके। और इस असफलता के कारण अद्वैत पर ही प्रहार करने लगे। उन्होंने शंकर से पूछा कि माया, ईश्वर और जीव के बीच भेद तो उत्पन्न करती है किंतु वह न तो जीव का सहारा लेती है और न ही ईश्वर का आश्रय। इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि ईश्वर भाव और जीव-भाव माया के बाद उत्पन्न होते हैं, तो कृपया स्पष्ट करें कि माया कैसे भेद उत्पन्न करती है?

शंकर ने उन्हें समझाया कि वो प्रकृति अथवा माया उस शुद्ध चैतन्य ब्रह्म का आश्रय लेकर ही भेद उत्पन्न करती है क्योंकि शुद्ध चैतन्य में कोई भेद नहीं होता। एक दर्पण ही बिंब और प्रतिबिंब के बीच भेद उत्पन्न कर पाता है। अब यदि बिंब के हाथ दर्पण होगा ही नहीं तो प्रतिबिंब कहाँ से होगा? इसी प्रकार माया भी चैतन्य ब्रह्म का आश्रय लेकर भेद उत्पन्न करती है। अपनी बात कटती देख कर भट्ट ने पुन: दूसरा आक्षेप किया कि प्रकृति तो जड़ होती है और ब्रह्म चैतन्य होता है तो फिर दोनों में साम्य कैसे होता है और फिर माया ब्रह्म में सुख दुख क्यों उत्पन्न नहीं कर पाती है? शंकर ने उन्हें पुन: समझाया कि जैसे बिंब सामने होने पर भी दर्पण बिंब (मुख) आदि में कोई विकार आदि उत्पन्न नहीं कर पाता, किंतु समीपस्थ प्रवाह उस प्रतिबिंब में मलीनता उत्पन्न कर सकता है, उसी प्रकार ब्रह्म पर माया का प्रभाव तो नहीं पड़ता किंतु जीवादि प्रतिबिंबों पर सुख-दुख प्रकट होते हैं।

भट्ट ने पुन: अपनी विद्वता प्रकट करते हुए प्रश्न किया कि जब माया अज्ञानमय और विकारी होती है तब वह ब्रह्म जैसे अविकारी ज्ञानी पर कैसे आश्रित होगी? और इसीलिए माया को विशिष्ट चैतन्य जीव के आश्रित की माना जाना चाहिए। प्रश्न के उत्तर में शंकर ने कहा कि अनुभव जन्य ज्ञान चैतन्य होता है, जड़ नहीं होता इसके विपरीत अंत:करण जड़ होता है और यही कारण है कि अजड़ पदार्थ की स्थिति जड़ अंत:करण में नहीं हो पाती और इसी प्रकार प्रकृति भी विशेष चैतन्य ज्ञान का आश्रय लेकर अविकारी ब्रह्म और विकारी जीव में भेद उत्पन्न करने में सफल नहीं हो पाती।

अपनी ज्ञान गरिमा का प्रदर्शन करते हुए श्री भट्ट महोदय पुन: बोलने लगे। उन्होंने कहा कि जैसे अग्नि के संपर्क में आने पर एक लौह पिण्ड में भी दाह शक्ति आ जाती है, इसी प्रकार अनुभूति युक्त आत्मा के संपर्क (संयोग) से अंत:करण में भी वैसी ही अनुभूति का समावेश हो जाता है। उनकी बात सुनकर शंकर बोले कि आपका तर्क युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि स्वयं को मूर्ख मानने के अनुभव में आपके अनुसार तो माया के आश्रित इस अंत:करण में भी मूर्ख मानने का वही अनुभव होना चाहिए, फिर किंतु वास्तविकता में वैसा नहीं होता क्योंकि वहाँ ब्रह्म की उपस्थिति के कारण, माया के द्वारा विस्तारित अज्ञान का अनुभव अंत:करण में नहीं हो सकता। वास्तविकता में वहाँ अजड़ अनुभव का आश्रय जड़ अंत:करण नहीं हो सकता। क्योंकि वैसा मानने पर तो दोनों की स्थिति एक जैसी ही हो जाएगी। स्पष्ट है कि अजड़ चैतन्य अनुभव का आश्रय जड़ अंत:करण नहीं हो सकता।

श्री भट्ट ने शंका बताते हुए पुन: प्रश्न पूछा कि आपके विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि जीव ब्रह्म की एकता की प्रतिबंधिका अविद्या (माया) होती है किंतु यह कथन भी गलत साबित हो जाता है क्योंकि अविद्या (माया) तो चैतन्य ब्रह्म की ही आश्रित मानी जाती है। प्रतिउत्तर में शंकर ने कहा कि इसका उत्तर पूर्व में ही दिया जा चुका है कि अनुभव जन्य ज्ञान चैतन्य होता है, जड़ नहीं होता और माया विशिष्ट चैतन्य ज्ञान को लेकर भेद उत्पन्न करने में सफल हो जाती है। शंकर ने अपनी बात को बढ़ाते हुए कहा कि छान्दोग्योपनिषद (6/8/1) में सुषुप्ति के स्वरूप को समझाते हुए ऋषि उद्दालक द्वारा स्वप्नांत अथवा स्वप्न के स्वरूप को समझाते हुए बताया है कि जिस अवस्था में यह पुरुष सोता है, उस समय यह सत से सम्पन्न हो जाता है और यह अपने स्वरूप को प्राप्त हो जाता है और इसी कारण इसे 'स्वपिति' कहते हैं क्योंकि उस समय यह 'स्व' अर्थात् अपने आपको प्राप्त हो जाता है और डोरी में बँधे हुए पक्षी की भाँति (यह मन-पक्षी) दिशा-विदिशा में उड़कर भी अन्यत्र स्थान प्राप्त नहीं का पाता और पुन: प्राण का ही आश्रय लेता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मन, प्राणरूप बंधन वाला होता है। इस प्रकार उस सुषुप्ति की अवस्था में जीव ब्रह्म की एकता का प्रमाण तो है किंतु उसमें यह स्पष्ट नहीं किया कि जीव ब्रह्म एक होकर भी जीव अविद्या से आच्छन्न रहता है। उक्त उपनिषद में आगे स्पष्ट बताया गया है कि सारी की सारी प्रजा सद् ब्रह्म के साथ एकता प्राप्त करके भी यह नहीं जान पाती कि हम सत को प्राप्त हुए हैं या नहीं और इससे यह बिलकुल स्पष्ट हो जाता है कि सुषुप्ति की अवस्था में भी अज्ञान बना रहता है।

शंकर की बात सुनकर भट्ट ने पुन: प्रश्न किया–'कृपया यह बताएँ कि सुषुप्ति की स्थिति में जो ज्ञान का अभाव रहता है वह नित्य है या अनित्य . . . ? मेरे मतानुसार वह नित्य नहीं हो सकता है और उसका कारण है कि वहाँ युक्ति नहीं है और यदि युक्ति हो तो वहाँ अज्ञान नहीं होगा। इस प्रकार स्पष्ट है कि युक्ति होने पर अज्ञान नहीं रहता। इसी प्रकार अब अनित्य की स्थिति भी देखें।' अनित्य में भी यदि वहाँ अन्य पदार्थ निवर्तक हो तो उनके निवृत्त होने पर स्थिति बदल जाती है और वहाँ अनित्य हो जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अज्ञान प्रतिबंधक नहीं और इससे यह सिद्ध नहीं होता कि अज्ञान तीनों अवस्थाओं में रहता है।

प्रतिउत्तर में शंकर ने कहा कि आपके उक्त मतानुसार सब प्रत्यय यथार्थ हैं अत: भेदाभेद सिद्ध नहीं हो सकता, किंतु स्थिति यह होती है कि आत्मा नित्य ज्ञान का आश्रय होता है और जाग्रत स्वप्न तथा सुषुप्तावस्था में भी वह ज्ञान बना रहता है और सुषुप्ति से उठकर भी तो स्मृति बनी रहती है और इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा में भ्रम ज्ञान नहीं होता। ज्ञान तथा भ्रम अवांतर होने से समान जाति के माने जाते हैं किंतु इनके गुणों का उदय समकाल में नहीं हो सकता। देखिए जिस स्वर्ण का 'वलय' नामक आभूषण बनता है, उसमें 'वलय' की अवस्था में 'रूचक' आभूषण का आश्रय धारण करने की क्षमता नहीं होती और इसीलिए उसका धारण भी नहीं होता। जिस प्रकार यह बात स्वर्ण आभूषण पर लागू होती है, उसी प्रकार आत्मा में नित्य ज्ञान का आश्रय होता है और इसी कारण उसमें पुन: इतर ज्ञान के आश्रय की संभावना नहीं रहती। इसी परिप्रेक्ष्य में यह जानना भी आवश्यक है कि नित्य ज्ञान से आश्रित आत्मा भ्रम ज्ञान से भटकती नहीं है।

कुछ क्षण मौन रहकर श्री भट्ट ने पुन: कहा कि अज्ञान की सत्ता यदि आत्मा ही स्वीकार करे तो इसका भंजक, कोई दिखता भी नहीं है और आत्मा का मुक्तहोना संभव भी नहीं होगा। श्रीशंकर ने इसे अमान्य बताते हुए तत्वमसि की अखण्डवृति में आरूढ़ ब्रह्म चैतन्य (ज्ञान) को, अज्ञान का निवर्तक बताया। अज्ञान वृति से आत्मा मुक्त हो जाता है। आत्मा तो मुक्त स्वरूपा ही है और अज्ञान की निवृत्ति मोक्ष होती है इसलिए ऐसे में भेद तथा अभेद दोनों को स्वीकार करना उचित नहीं क्योंकि ऐसा होने से सारे व्यवहार ऐहिक और परमार्थिक गडबड़ हो जाएँगे। शंकर की बात सुनकर भट्ट भास्कर पराजित होकर शांत हो गए। **(क्रमश:)**

91 चित्रगुप्त नगर, कोटरा सुलतानाबाद,
भोपाल-462003 (म.प्र.)
मो.-7581052771

हिंदी भवन में वृक्षारोपण समारोह

हिंदी आलोचना के शिखर पुरुष आचार्य रामचंद्र शुक्ल

- करुणाशंकर उपाध्याय

जन्म - 5 अप्रैल1968।
जन्मस्थान - शिवगढ़, प्रतापगढ़ (उ.प्र.)।
शिक्षा - पोस्ट डॉक्टरल रिसर्च।
रचनाएँ - 21 पुस्तकें प्रकाशित एवं 12 पुस्तकों का संपादन।
सम्मान - महाराष्ट्र राज्य हिंदी साहित्य अकादमी का बाबूराव विष्णु पराड़कर पुरस्कार सहित अनेक सम्मान।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी के पहले असाधारण अंत: अनुशासनिक आलोचक हैं जिनकी ज्ञान की सभी शाखाओं में अबाध गति थी। उनकी आलोचनात्मक स्थापनाएँ अपनी मौलिकता, नवीनता, गहनता एवं संतुलित साहित्य-विवेक से अनुप्राणित होने के कारण क्लासिकी गरिमा से युक्त हैं। शुक्ल जी एक महान आलोचक होने के साथ-साथ सभी विषयों के ज्ञाता, श्रेष्ठ प्राध्यापक और शिक्षाविद भी थे। एक बड़े आलोचक के लिए यह जरूरी है कि साहित्य और शास्त्र के अलावा ज्ञान-विज्ञान के तमाम क्षेत्रों में उसकी गति हो, वह बहुश्रुत एवं बहुपठित हो; तभी वह जीवन और जगत के समस्त आयामों पर लिखे गए साहित्य का सही निर्वचन कर सकता है। महावीर प्रसाद द्विवेदी और रामचंद्र शुक्ल ऐसे ही आलोचक थे।

उन्होंने काव्यसृजन द्वारा लेखकीय जीवन का शुभारंभ किया था किन्तु उनका परम बौद्धिक व्यक्तित्व स्वत: निबंध और आलोचना जैसी गंभीर विधाओं की ओर मुड़ गया। वे हिंदी और भारतीय भाषाओं के ही सर्वश्रेष्ठ आलोचक नहीं हैं। अपितु विश्व के तीन सार्वकालिक श्रेष्ठतम आलोचकों में से एक हैं। मेरा मानना है कि अरस्तू, मैथ्यू आर्नल्ड और आचार्य रामचंद्र शुक्ल विश्व के तीन सबसे बड़े आलोचक हैं जिन्होंने काव्यालोचन के क्षेत्र में युगांतरकारी प्रस्थान उपस्थित किया है। एक ऐसा प्रस्थान प्रवर्तक व्यक्तित्व जो अतीत से लेकर वर्तमान तक को नूतन बना दे और भविष्य के लिए विवेकपूर्ण संकेत कर जाए वही आचार्य कहलाने का अधिकारी है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ऐसे ही आचार्य हैं। वे विश्वस्तरीय निबंधकार, अन्तर्दृष्टि एवं विश्वसंदृष्टि सम्पन्न आलोचक, उत्कृष्ट सिद्धांतशास्त्री, विश्वस्तरीय इतिहासकार, संस्कृति चेता, दार्शनिक और वैज्ञानिक चिंतक रहे हैं। उनके आलोचनात्मक व्यक्तित्व में भारतीय इतिहास, परंपरा, मूल्य-मान, धर्म, दर्शन, साहित्य, संस्कृति, भारतीय ज्ञान परंपरा के साथ-साथ पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान और साहित्यिक दृष्टिकोण का संश्लेषण है। ये भारतवर्ष की गतिशील लोकोन्मुख परंपरा की गहन पहचान, काव्यशास्त्रीय, अंत: अनुशासनिक, दार्शनिक एवं वैज्ञानिक चिंतन के अनुप्रयोग तथा पाश्चात्य काव्यचिंतन से सार्थक मुठभेड़ करते हुए हिंदी आलोचना में आत्मविश्वास का दर्शन विकसित करते हैं। शुक्ल जी अपने आलोचनात्मक चिंतन में लोकमंगल और विरुद्धों के सामंजस्य की प्रतिष्ठा द्वारा काव्यालोचन के सार्वभौम-शाश्वत प्रतिमान निर्मित करते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल स्वाधीन संग्राम के कठिन संघर्ष के दिनों में हिंदी आलोचना के क्षेत्र में आते हैं और जो कार्य उस समय महाकवि जयशंकर प्रसाद, निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, गणेश शंकर विद्यार्थी अपने सर्जनात्मक लेखन द्वारा कर रहे थे वही कार्य आचार्य शुक्ल अपने आलोचनात्मक लेखन में भी कर रहे थे। उनके आलोचक व्यक्तित्व के निर्माण में महाकवि गोस्वामी तुलसीदास, जायसी एवं तत्कालीन आंदोलनों की विशेष भूमिका रही है। वे अपने समय और समाज के प्रति अत्यंत सजग और दायित्वबोध से परिपूर्ण आलोचक रहे हैं। फलस्वरूप इनके अध्ययन की भाँति इनका आलोचनात्मक लेखन भी साहित्य के अलावा जीवन और जगत के अनेक संदर्भों का विश्लेषण करता है। ऐसा अंत: अनुशासनिक आलोचक हिंदी में दूसरा नहीं है। आचार्य शुक्ल भारतीय साहित्य की उस उदार मानवतावादी दृष्टिकोण को हिंदी आलोचना में प्रतिष्ठित करते हैं जो अपने प्रशस्त रूप में लोकमंगल और लोकहित की सिद्धि का कारण बनती है। इस दृष्टिकोण के निर्माण में भक्तिकाल के कवियों और विशेष रूप से गोस्वामी तुलसीदास की भूमिका रही है जो चराचर जगत के मंगल हेतु रचनारत थे। वे अपनी असाधारण मेधा, वैज्ञानिक दृष्टि, लोकमंगल की विराट चेष्टा, भारत बोध के कारण अपने समय के सभी भारतीय भाषाओं के आलोचकों से बहुत आगे थे।

वे अपनी प्रखर मेधा, निरपेक्ष तथा जनतांत्रिक सोच एवं प्रखर विश्वदृष्टि द्वारा हिंदी आलोचना को ठोस आधार और आकर्षक व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। आप ऐसे वृहद स्तरीय (Macro) तथा गहन स्तरीय (Micro) आलोचक हैं जो अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं जानते हैं। उनके जैसा सुसंस्कृत, दूरदर्शी, वांग्मी एवं अलौकिक बौद्धिकता सम्पन्न आलोचक संपूर्ण भारतीय साहित्य में एकांत दुर्लभ है। आपने 'ग्रहण' और 'त्याग' के विवेक का परिचय देते हुए पश्चिम से वांछनीय तत्वों का

वरण किया। उन्होंने अपने स्वाधीन व्यक्तित्व तथा लोकतांत्रिक अधिकारों की रक्षा करते हुए पाश्चात्य सिद्धांतों तथा विचारकों से आक्रांत न होने का साहस दिखलाया। उन्हें उनके एकांगी चिंतन से अवगत कराया। वे भारतवर्ष की जीवंत व गतिशील लोकोन्मुख परंपरा को लोक से सम्बद्ध करके उसे पुरस्कृत करते हैं। राजनीतिशास्त्र में जो महत्व लोकतंत्र का है, लगभग उसी वजन तथा महत्व का शब्द लोकधर्म को आपने हिंदी आलोचना के चरम प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठित किया। आचार्य शुक्ल की लोकचिंता, अंतर्दृष्टि और विश्वसंदृष्टि उन्हें विराट और व्यापक दृष्टिकोण से समन्वित आलोचक के तौर पर हमारे सामने लाती है। वे भारतीय अस्मिता-बोध और भारत बोध के नायक के रूप में हिंदी आलोचना का व्यक्तित्व निर्मित करते हुए यह स्थापित करते हैं कि, 'हमें अपनी दृष्टि से दूसरे देशों के साहित्य को देखना होगा, दूसरे देशों की दृष्टि से अपने साहित्य को नहीं।' यह भी प्रत्येय है कि शुक्ल जी ने अपनी स्वतंत्र एवं भारतीय आलोचना दृष्टि के आधार पर ही रिचर्ड्स और क्रोचे जैसे पाश्चात्य विद्वानों का भी मूल्यांकन किया है। यह हिंदी आलोचना का दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि परवर्ती आलोचकों ने मार्क्सवाद से आक्रांत होकर इस निजत्व बोध को तिलांजलि दे दी जिससे उसका देशीपन क्षरित हो गया।

रामचंद्र शुक्ल हिन्दी के पहले आलोचक हैं जिन्होंने जीवन एवं जगत के पुन: सृजन के रूप में गुंफित काव्य के गहरे और व्यापक लक्ष्यों के मर्म के उद्घाटन का गंभीर और वैज्ञानिक प्रयत्न किया। उन्होंने 'भाव अथवा रस' को काव्य की आत्मा के रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने काव्य के चरम लक्ष्य के रूप में आनन्द के बजाय विभिन्न भावों के परिष्करण, प्रसार एवं सामंजस्य द्वारा लोकमंगल की प्रतिष्ठा की है। वे मैथ्यू आर्नल्ड की भाँति महान काव्य की प्रशंसा करते हैं और द्वितीय श्रेणी के काव्य के प्रति अपेक्षित उदासीनता दिखाते हैं। उन्होंने जीवन और जगत की गतिशीलता और क्रियाशीलता को अभिव्यक्त करने वाले काव्य को ही महान काव्य का दर्जा दिया। उनके अनुसार जीवन और जगत का सर्वांगपूर्ण चित्रण एवं युगजीवन को प्रेरित-प्रभावित करने वाला काव्य ही श्रेष्ठता का अधिकारी है। एक महान आलोचक के रूप में शुक्ल जी ने अपनी मान्यताओं को सैद्धांतिक बनाते हुए उसे लोकमंगल की साधनावस्था कहा। वे अपनी मौलिक अवधारणाओं, गहन चिंतनों और तलस्पर्शी विश्लेषण के लिए ख्यात रहे हैं। उनके काव्यादर्श लोकजीवन के मूर्त आदर्शों से परिचालित हैं। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि 'हमारे हृदय का सीधा लगाव प्रकृति के गोचर रूपों से है' इसलिए कवि का सबसे पहला और आवश्यक काम 'बिंबग्रहण' या 'चित्रानुभव' कराना है। पूर्ण बिंबग्रहण के लिए वर्ण्य वस्तु की 'परिस्थिति' का चित्रण भी अपेक्षित होता है।' इस प्रकार शुक्ल जी काव्य द्वारा जीवन के समग्र बोध पर बल देते हैं। जीवन में और काव्य में किसी तरह की एकांगिता उन्हें अभीष्ट नहीं। यह समग्र बोध तत्कालीन संदर्भ में भारत बोध और अस्मिता-बोध का प्रतीक है।

शुक्ल की स्थापनाएँ अपनी शास्त्रबद्धता और मौलिकता के कारण आज भी उतनी ही प्रासंगिक बनी हुई हैं। उन्होंने अपने विराट अध्ययन लोकभावना और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हिंदी कविता एवं काव्यशास्त्र का अपेक्षित संस्कार किया। वे प्रस्थान प्रवर्तक होने के कारण आचार्य कोटि में आते हैं। आचार्य शुक्ल ऐसे आलोचक हैं जो भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र के गहन अध्ययन द्वारा विश्वसंदृष्टि सम्पन्न मौलिक आलोचना दृष्टि का विकास करते हैं। वे किसी विदेशी चिंतन अथवा विचारधारा से नियंत्रित नहीं होते। फलस्वरूप ऐसा व्यापक दृष्टिकोण अन्यत्र दुर्लभ है। काव्य में लोकमंगल की भावना शुक्ल जी की समीक्षा की शक्ति है। वे जिस तरह लोकधर्म के निर्वहन एवं काव्यनिबद्ध जीवन के व्यावहारिक और व्यापक अर्थों के मार्मिक अनुसंधान पर जोर देते हैं, वह उनकी स्थापना की मौलिकता है। उनकी आलोचना का पूर्वनिश्चित नैतिक केंद्र इनकी साहित्यिक मूल्यचेतना का उन्नयन करके मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विविध कवियों की मनोगति की पहचान में अद्वितीय है। ये ऐसे काव्यमर्मज्ञ आलोचक हैं जो काव्य की समस्त पर्तों का सम्यक निर्वचन करता है। आचार्य शुक्ल कृत 'रस-मीमांसा' हिंदी आलोचना का श्रेष्ठतम सैद्धांतिक ग्रंथ है जिसमें शुक्ल जी रस की नितांत मौलिक, वैज्ञानिक एवं लोकसापेक्ष व्याख्या करते हैं।

शुक्ल जी काव्य के उद्देश्य पर विचार करते समय अपने विश्वप्रसिद्ध कालजयी निबंध 'कविता क्या है?' में लिखते हैं कि, 'कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बंधों के संकुचित मण्डल से ऊपर उठकर लोक-सामान्य भाव भूमि पर ले जाती है, जहाँ जगत की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक-सत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकार का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक संबंध की रक्षा और निर्वाह होता है। जिस प्रकार जगत अनेक रूपात्मक है, उसी प्रकार हमारा हृदय भी अनेक भावात्मक है। इस अनेक भावों का व्यायाम और परिष्कार तभी समझा जा सकता है जबकि इन सबका प्रकृत सामंजस्य जगत के भिन्न-भिन्न रूपों, व्यापारों या तथ्यों के साथ हो जाए। इन्हीं भावों के सूत्र से मनुष्य जाति जगत के साथ तादत्म्य का अनुभव चिरकाल से करती चली आई है। जिन रूपों और व्यापारों से मनुष्य आदिम युगों से परिचित है, जिन रूपों और व्यापारों को सामने पाकर वह नर जीवन के आरंभ से ही लुब्ध और क्षुब्ध होता आ रहा है, उनका हमारे भावों के साथ मूल या सीधा संबंध है। अत: काव्य के प्रयोजन के लिए हम उन्हें मूल रूप और मूल व्यापार कह सकते हैं। इस विशाल विश्व के प्रत्यक्ष से अप्रत्यक्ष और गूढ़ से गूढ़, तथ्यों को भावों के

विषय या आलंबन बनाने के लिए इन्हीं मूल रूपों में नहीं लाए जाते तब तक उनपर काव्य दृष्टि नहीं पड़ती।' **(आचार्य रामचंद्र शुक्ल के श्रेष्ठ निबंध-संपा. डॉ.सत्यप्रकाश मिश्र, पृ. 91-92)** शुक्ल जी इस निबंध में इतिहास, समाज, प्रकृति-पर्यावरण और सभ्यतापरक प्रश्नों के माध्यम से जीवन और जगत की जटिलताओं का निर्वचन करते हुए कवि-कर्म की चुनौतियों पर प्रकाश डालते हैं। फलस्वरूप यह निबंध उनके सैद्धांतिक चिंतन का मुखपृष्ठ बन जाता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का स्पष्ट अभिमत है कि मनुष्य नैसर्गिक परिवेश में ही अपने मूल स्वभाव के निकट होता है और सभ्यता के आवरण के साथ ही उसका मूल रूप आच्छन्न होता गया है। मनुष्य को उसके मूल रूप तक लाने में कवि और कविता की ही विशेष भूमिका होती है। इस संदर्भ में शुक्ल जी लिखते हैं कि, 'कवि-वाणी के प्रसार से हम संसार के सुख-दुख, आनंद-क्लेश आदि का शुद्ध स्वार्थमुक्त रूप में अनुभव करते हैं। इस प्रकार के अनुभव के अभ्यास से हृदय का बंधन खुलता है और मनुष्यता की उच्च भूमि प्राप्त होती है।' **(वही, पृ.-106)** यह बात छायावादी कवियों के व्यापक सौंदर्य बोध के निर्माण में सहायक रही है। यदि छायावादी कवि प्रकृति प्रेम और उसके साथ संतुलन की अवस्था में रहने पर जोर देते हैं तो कहीं न कहीं उस पर शुक्ल जी की इस स्थापना का भी प्रभाव है। शुक्ल जी के काव्यचिंतन का सार इस निबंध में आ गया है। यहाँ सूत्र रूप में कतिपय चिंतनीय बातें प्रस्तुत कर रहा हूँ -

1- कविता इसलिए लिखी जाती है कि एक ही भावना सैकड़ों-हजारों क्या, लाखों दूसरे आदमी ग्रहण करें।

2- लोक हृदय में लीन होने की दशा का नाम रस दशा है।

3- कविता पढ़ते समय मनोरंजन अवश्य होता है पर इसके सिवा कुछ और भी होता है। जो लोग स्वार्थवश किसी की प्रशंसा और खुशामद करके वाणी का दुरुपयोग करते हैं, वे सरस्वती का गला घोंटते हैं।

4- कविता सृष्टि-सौंदर्य का अनुभव कराती है और मनुष्य को सुंदर वस्तुओं में अनुरक्त करती है।

5- कविता में मनुष्य भाव की रक्षा होती है। कविता मनुष्य के हृदय को उन्नत बनाती है और उसका उत्कृष्ट और अलौकिक पदार्थों से परिचय कराती है।

6- कविता इतनी प्रयोजनीय वस्तु है कि संसार की सभ्य और असभ्य सभी जातियों में पाई जाती है। चाहे इतिहास न हो, विज्ञान न हो, दर्शन न हो पर कविता अवश्य होगी।

7- कविता कुछ वस्तुओं और व्यापारों को मन के भीतर मूर्त रूप में लाने और प्रभाव उत्पन्न करने के लिए कुछ देर रखना चाहती है। अत: उक्त प्रकार के अर्थ-संकेतों से ही उसका काम नहीं चल सकता। इससे जहाँ उसे किसी स्थिति का वर्णन करना रहता है, वहाँ वह उसके अंतर्गत सबसे अधिक मर्म-स्पर्शिनी कुछ विशेष वस्तुओं या व्यापारों को लेकर उनका चित्र खड़ा करने का आयोजन करती है।' **(वही, पृ.-226)** इस तरह शुक्ल जी काव्य स्वरूप और उसके सभी पक्षों का अत्यंत वैज्ञानिक एवं गंभीर विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। शुक्ल जी अपने साहित्य विवेक द्वारा लोकमंगल अथवा लोकधर्म को अपनी आलोचना का केंद्रीय प्रतिमान बनाते हैं। वे विरुद्धों के सामंजस्य द्वारा परस्पर विरोधी वृत्तियों के संघटन एवं सामंजस्य से परिपूर्ण काव्य को ही श्रेष्ठ काव्य का दर्जा देते हैं। इस संदर्भ में वे लिखते हैं कि, 'लोक में फैली दुख की छाया को हटाने में ब्रह्म की आनंदकला जो शक्तिमय रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अद्भुत मनोहरता, कटुता में भी अपूर्व मधुरता, प्रचंडता में भी गहरी आर्द्रता साथ लगी रहती है। विरुद्धों का यही सामंजस्य कर्मक्षेत्र का सौंदर्य है जिसकी ओर आकर्षित हुए बिना मनुष्य का हृदय नहीं रह सकता। इस सामंजस्य का कई और रूपों में भी दर्शन होता है। किसी कोट-पतलून-हैट वाले को धारा-प्रवाह संस्कृत बोलते अथवा किसी पंडित वेशधारी सज्जन को अंग्रेजी की प्रगल्भ वक्तृता का यही सौंदर्य समझना चाहिए। भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचंडता और मृदुता का सामंजस्य ही लोकधर्म का सौंदर्य है।' **(वही, पृ.-216)** ऊपर से देखने पर भले ही लगता हो कि शुक्ल जी के इस चिंतन के निर्माण में महाकवि गोस्वामी तुलसीदास का प्रभाव परिलक्षित होता है परन्तु शुक्ल जी ने उसे अपने वैज्ञानिक एवं गहन चिंतन से मौलिक बना लिया है।

आचार्य शुक्ल काव्यसंदृष्टि सम्पन्न ऐसे भावक आलोचक हैं जो अपने द्वारा निर्मित प्रतिमानों के आलोक में किसी भी कृति की तलान्वेषी और तलस्पर्शिनी व्याख्या करते हैं। शुक्ल जी भाव और कलापक्ष के मध्य संतुलन स्थापित करते हुए जायसी, सूर और तुलसी के काव्य सौष्ठव की जिस तरह समीक्षा करते हैं वह आज भी उतनी ही प्रभावी और प्रासंगिक है। शुक्ल जी अपनी व्यावहारिक आलोचना का श्रेष्ठतम जायसी को देते हुए पद्मावत के लोकोन्मुख सांस्कृतिक संदर्भों को पूरी मर्मस्पर्शिता के साथ विश्लेषित करते हैं। उनके द्वारा लिखित जायसी, सूर, तुलसीदास हिंदी साहित्य के इतिहास में आदिकाल से लेकर उनके समय तक के सभी कवियों पर लिखित समीक्षा और कवियों का सर्वांगपूर्ण विवेचन व्यावहारिक आलोचना का ऐसा प्रतिमान है जिसमें हिंदी आलोचना का प्राण आ गया है। इनके द्वारा प्रतिष्ठित व्यावहारिक आलोचना का उच्च प्रतिमान आज भी सहृदय पाठक के लिए यथावत उपयोगी बने हुए हैं। इनमें शुक्ल की काव्यमर्मज्ञता, जीवनविवेक, विद्वता और विश्लेषण क्षमता का जो असाधारण प्रमाण मिलता है वह अपना प्रतिद्वंदी नहीं जानता। उनके द्वारा काव्यगत संवेदनाओं की गहरी पहचान, स्पष्ट एवं पारदर्शी विश्लेषण और विषयानुरूप भाषिक अनुप्रयोग आज भी पाठक को भली-भाँति संप्रेषित कर देने की अपूर्व सामर्थ्य से युक्त हैं। उनके हिंदी साहित्य के इतिहास की समीक्षाओं में भी ये विशेषताएँ स्पष्ट हैं। आचार्य

शुक्ल मर्यादा पुरुषोत्तम राम के व्यक्तित्व की व्याप्ति के माध्यम से गोस्वामी तुलसीदास के महत्व का निर्वचन करते हुए लिखते हैं कि, 'राम के बिना हिंदू जीवन नीरस है, फीका है। यही रामरस उसका स्वाद बनाए रहा। राम ही का मुँह देखकर हिंदू जनता का इतना बड़ा भाग अपने धर्म और जाति के घेरे में पड़ा रहा। न उसे तलवार हटा सकी, न धनमान का लोभ, न उपदेशों की तड़क-भड़क। जिन राम को जनता प्रत्येक स्थिति से देखती आई, उन्हें छोड़ना अपने प्रिय-से-प्रिय परिजन को छोड़ने से कम कष्टकर न था। इसी एक नाम के अवलंब से हिंदू जाति के लिए अपने प्राचीन स्वरूप, अपने प्राचीन गौरव के स्मरण की संभावना बनी रही। रामनामामृत पान करके हिंदू जाति अमर हो गई। इस अमृत को घर-घर पहुँचाने वाला भी अमर है। आज जो हम बहुत से 'भारतीय हृदयों' को चीरकर देखते हैं, तो वे अभारतीय निकलते हैं, पर इसी एक कवि केसरी को भारतीय सभ्यता, भारतीय रीति-नीति की रक्षा के लिए सबके हृदय द्वार पर अड़ा देख हम निराश होने से बच जाते हैं।' **(आचार्य रामचंद्र शुक्ल संचयन- रामजी यादव, पृ.-230)** कहने का आशय यह है कि शुक्ल जी अपनी इन्हीं तलस्पर्शी व्याख्याओं के कारण अतुल्य हैं, उनका कोई सानी नहीं है।

फलत: शुक्ल जी के प्रिय कवि भले ही महाकवि गोस्वामी तुलसीदास रहे हों परंतु उन्होंने अपनी व्यावहारिक आलोचना का सर्वोत्तम जायसी को दिया है। इसी तरह उन्होंने हिंदी साहित्य के सभी कालखंडों, रचनाकारों तथा साहित्य की प्राय: सभी विधाओं पर साधिकार लिखा है, वह उनकी व्यावहारिक आलोचना को बहुआयामी एवं आश्चर्यजनक अर्थव्याप्ति प्रदान करता है। उनके द्वारा रचित 'रस-मीमांसा' हिंदी की सैद्धांतिक आलोचना का सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है। शुक्ल जी ने जिस सूझ-बूझ, मेधा, तार्किकता और विवेचन-क्षमता द्वारा क्रोचे के अभिव्यंजनावाद की मर्यादाएँ बतायीं, उसके दुर्बल और अनुपयोगी पक्षों को उद्घाटित किया और पाश्चात्य सिद्धांतों तथा विचारधाराओं की गहन जानकारी होने के बावजूद हिंदी आलोचना को उसके दुष्प्रभावों से बचाया वह उनकी आलोचना को विश्वस्तरीय विमर्श प्रदान करता है। साथ ही, उन्होंने जिस तैयारी, साहस तथा विश्लेषण क्षमता द्वारा सामंतवाद का विरोध किया, जिन शब्दों में दरबारी संस्कृति का मुखौटा उतारा, जिस नैतिक एवं सामाजिक सरोकार से रहस्यवाद एवं गुह्य-साधना का विरोध किया तथा जिस विनोदवृत्ति द्वारा पूँजीवाद का मुखौटा उतारा, वह उनके आलोचक को बहुत बड़ा बनाता है। उनका आलोचक तुलना और विश्लेषण के प्रतिमान द्वारा रचना की चतुर्दिक व्याख्या करते हैं। उनके सारे निष्कर्ष तर्कपूर्ण समास-शैली में अभिव्यक्त होते हैं जिससे उनके सूत्र आज भी विमर्श की गुंजाइश रखते हैं। यही कारण है कि ये अपनी परवर्ती आलोचकों के लिए न केवल एक बड़े प्रेरक स्तंभ बने रहे अपितु हिंदी आलोचना में परस्पर विरोधी विचारधारात्मक स्थितियों के लिए अनुकूल परिवेश तैयार करने वाले भी रहे।

सारांश यह है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ऐसे महान प्रतिभासंपन्न आलोचक हैं जिन्होंने हिंदी आलोचना को सर्वाधिक पारिभाषिक शब्द दिए। उनके द्वारा प्रयुक्त लोकमंगल, लोकधर्म, लोकसंग्रह, लोकसंस्कृति, साधनावस्था, सिद्धावस्था जैसे शब्दबंध न केवल आलोचना के पारिभाषिक दायरे का विस्तार करते हैं अपितु उसे अर्थगर्भित एवं विचारपूर्ण भी बनाते हैं। उनकी लेखनी ने हिंदी आलोचना को विश्वस्तरीय बनाने का आधार निर्मित किया। यदि रस-मीमांसा उनके सैद्धांतिक चिंतन का प्रकर्ष है तो तुलसीदास, जायसी ग्रंथावली और भ्रमर गीत सार की भूमिका उनकी व्यावहारिक आलोचना का चरम निदर्शन है। यही कारण है कि उनके बाद कई हिंदी आलोचना उनसे संवाद करते हुए अथवा टकराते हुए ही आगे बढ़ी है। उन्होंने जिस बौद्धिक तैयारी, सर्वांगपूर्ण और भेदक दृष्टि द्वारा हिंदी साहित्य के सभी कालखंडों, सभी रचनाकारों एवं सभी विधाओं पर लिखा है वह हर आलोचक के समक्ष चुनौती है। इसी तरह साहित्य, संस्कृति, मनोविज्ञान, धर्म, कला, राजनीति, अर्थतंत्र, भारत बोध और लोकचिंता जैसे विषयों पर लिखित इनके विषय प्रधान, विचारपूर्ण निबंधों का भी कोई सानी नहीं है।

यदि हिमालय पृथ्वी का मानदंड है तो आचार्य रामचंद्र शुक्ल कृत हिंदी साहित्य का इतिहास साहित्येतिहासों का मानदंड है। साथ ही, रस-मीमांसा सैद्धांतिक आलोचना का गौरव ग्रंथ है। जब-जब हिंदी आलोचना अपर्याप्तता, संकीर्णता और एकांगिकता की शिकार होगी तब-तब आचार्य रामचंद्र शुक्ल एक अभिभावक और मार्गदर्शक की भाँति उसका मार्ग प्रशस्त करेंगे। ये हिंदी आलोचना के शिखर पुरुष और मेरुदंड हैं। उनके बिना उसकी परिकल्पना ही संभव नहीं है। एक आलोचक कितना तटस्थ और नीर-क्षीर विवेकी हो सकता है, यह हम आचार्य रामचंद्र शुक्ल से ही सीख सकते हैं। संक्षेप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी आलोचना की अस्मिता के प्रतीक हैं। उनके द्वारा लिखित आलोचना में कृति के सत्य को जिस निष्पक्षता, व्यापक दृष्टिकोण, वस्तुनिष्ठता और बौद्धिक विवक्षा के साथ उद्घाटित किया गया है, उससे हिंदी आलोचना का स्वतंत्र, शक्तिमान, वैज्ञानिक और आधुनिक व्यक्तित्व निर्मित हुआ है। अत: जब तक यह धरती है तब तक आचार्य शुक्ल का नाम एवं अवदान सुरक्षित है।

1102-सी-विंग, लक्षचंडी हाइट्स,
कृष्णावाटिका मार्ग,
गोकुलधाम गोरेगाँव,
पूर्व मुंबई-400063 (महा.)
मो.- 9167921043

क्या नीरद चौधरी गलत साबित हो रहे हैं

– शंकर शरण

जन्म – 4 जनवरी 1961।
जन्म स्थान – जमालपुर, बिहार।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ – भारतीय इतिहास लेखन जैसी गंभीर पुस्तक सहित दर्जन भर से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।

नीरद चन्द्र चौधरी संभवत:, कम से कम विगत कई सदियों में, विश्व के अकेले ऐसे लेखक हैं जिन्होंने 75 वर्ष लेखन किया–उन्होंने 1922 ई. में लिखना आरंभ किया, जब वे 25 वर्ष के युवक थे। और उन्होंने अपनी अंतिम पुस्तक 1997 ई. में लिखी जब वे शतायु हो चुके थे। यह केवल कुछ भी लिखते जाने की भी बात नहीं है। उनके आरंभिक से अंतिम लेखन तक, सब कुछ अत्यंत मौलिक, साहसिक और गंभीर लेखन है। वह सब छपा हुआ है, जिसे कहीं से भी पढ़कर उसके पीछे के विशद अध्ययन, सजग अवलोकन, और लंबे मनन की पीठिका साफ झलकती है।

अपने संपूर्ण जीवन के अध्ययन अवलोकन से उन्होंने पाया कि अदद प्राणियों की तरह सभ्यताओं का भी यौवन, बुढ़ापा, और मरण होता है। अपने युग को उन्होंने मानव सभ्यता के क्षरण (decay) के रूप में देखा। यह केवल भारत ही नहीं, इंग्लैंड और संयुक्त राज्य अमेरिका के लिए भी उन्होंने सत्य पाया। उनकी अंतिम, लघु पुस्तक 'श्री हॉर्समेन ऑफ द एपोकैलिप्स' इसी विषय पर केंद्रित है। विश्व में हर कहीं प्रतिभाओं की घटत हो रही है, महत्त्वपूर्ण मूल्यों का ह्रास हो रहा है, और समाज यह सब बेबस देख रहा है। बल्कि धीरे–धीरे यह समझने से भी दूर हो रहा है। वह केवल पशुजीवन, सर्वाइवल, को ही अपने सोच–विचार का आदि–अंत समझता लगता है। अब समाज में शेक्सपियर, बर्क, वाशिंगटन, पेन, पास्कल, नेपोलियन, शिवाजी, टैगोर, जैसी हस्तियाँ दुर्लभतर होती जा रही हैं। यह सब सभ्यता के क्रमश: अवसान की ओर जाने के संकेत हैं।

क्या नीरद बाबू गलत साबित हो चुके हैं? सच पूछिए तो उनकी अंतिम पुस्तक में क्षय, डिके, के जो उदाहरण अमेरिका, इंग्लैंड, या भारत से दिए गए थे, उससे कई गुणी बड़ी–बड़ी कुरूप और भयावह परिघटनाएँ अब इन सभी देशों में देखी जा सकती हैं। फिलहाल, इंग्लैंड और अमेरिका रहने दें और केवल भारत की स्थिति का आकलन करके देखें कि नीरद बाबू की निराशा उनके बुढ़ापे की निराश झक थी, अथवा उसमें सार था?

इसके लिए अपने देश की विगत दो दशकों की गति पर विचार करें। क्या भारत कोई 'विश्व–गुरु' बन रहा है, या विश्व–मजदूर जो अपना पेट पालने और चमड़ी बचाने के सिवा कोई विशेष काम नहीं जानता? यह परखने का कोई पैमाना तो होगा। लेकिन इससे बच कर हर बात शोर–शराबे, लोभ–धमकी, मान–अपमान, तैश–तुर्शी और 'संख्या' बल से सही ठहराने की जिद आज व्यापक है। पर सत्य किसी प्रोपेगंडा या वोट से भी तय नहीं होता। यह कुरू–सभा में विदुर से लेकर गाँधी–मजमे के सामने अकेले रवीन्द्रनाथ टैगोर तक से प्रमाणित है। तब, आज कैसा देश है हमारा? उत्तर के लिए कुछ सर्वविदित तथ्यों पर विचार करें।

आज भारत ऐसा देश है, जहाँ– 1. कानून–निर्माता प्राय: ऐसे लोग होते हैं जो तकनीकी भाषा तो दूर, स्तरीय सामान्य साहित्य भी समझने में अक्षम हैं। अर्थात् सर्वोच्च राष्ट्रीय सभा–समिति के लिए भी चरित्र तो क्या, पर्याप्त जानकारी या ज्ञान होना आवश्यक नहीं समझा जाता।

2. फलत: आम शिक्षा भी उपेक्षित है। शिक्षा व शिक्षकों का कोई स्तर रखना जरूरी नहीं समझा जाता। कागजी संतुष्टि काफी है।

3. विश्वविद्यालयों में ऐसे प्राध्यापक हैं जिन्होंने वे मूल पुस्तकें देखी तक नहीं होती, जिनपर छात्रों को लेक्चर देते साल–दर–साल निष्कपट भाव से बिताते हैं।

4. केंद्रीय विश्वविद्यालयों की प्रवेश परीक्षा में शून्य अंक पाने वाले

को भी उच्चतम डिग्री कक्षा में प्रवेश दिया जाता है। जिसका अगला कदम उन्हें विश्वविद्यालय प्रोफेसर बनाना है, और भी जोरदार दावे से!

5. देश भर में नौवीं-दसवीं के असंख्य बच्चे दूसरी-तीसरी कक्षा की किताब, मातृभाषा में भी पढ़ने में असमर्थ हैं।

6. सामान्य विश्वविद्यालयों की एम.ए. फाइनल की कॉपियों में अपनी भाषा में भी कोई सुसंगत शुद्ध पैराग्राफ लिखा मुश्किल से मिलता है।

7. शिक्षितों की भारी बेरोजगारी के बावजूद भाषा, गणित, और साइंस के शिक्षक राजकीय स्कूलों के लिए भी नहीं मिल रहे। वह भी ऐसे प्रांत, बिहार, में जहाँ शिक्षा-चेतना अधिक है।

8. राजकीय विद्यालयों में हजारों अस्थाई शिक्षकों की हैसियत व वेतन, उन्हीं विद्यालयों में स्थाई निम्न कर्मचारियों से नीचा होता है।

9. अनगिनत राजकीय स्कूलों में अनगिनत स्थाई शिक्षक पढ़ाने नहीं जाते। किसी को भेज देते हैं, और स्वयं कोई अतिरिक्त धनोपार्जन या आराम से बैठे समय बिताते हैं। शासक-प्रशासक यह यथावत चलने देते हैं। बच्चों की शिक्षा, पाठ का क्या हो रहा? यह देखने की स्थिति में कोई नहीं रह गया है।

10. देश और विश्व की महान पुस्तकें शिक्षा से प्राय: बाहर हैं, जबकि रोज बदली जा सकने वाली जैसी-तैसी कानूनी संहिता 'धर्मग्रंथ' कह कर आसमान चढ़ायी जाती है। वह भी दिखावटी। यानी, सामूहिक आत्मप्रवंचना।

11. स्वतंत्रता के बाद भाषा, साहित्य, कला निरंतर क्षीण हो रहे हैं। देश की किसी भाषा, अंग्रेजी समेत, में एक भी साहित्य-पत्रिका नहीं जिसे देश भर के शिक्षित भी जानते हों। जबकि तब से उच्च शिक्षितों की संख्या में लगभग दस हजार प्रतिशत वृद्धि हुई है।

12. इस विचित्रता पर देश के कर्णधारों ने कभी औपचारिक सभा-समिति में विचार तक नहीं किया। पर वे भक्तों को निरंतर आई.के.एस. भजते रहने की मुस्तैद व्यवस्था करते हैं।

13. ऊपर से नीचे तक अपने मुँह मियाँ मिट्ठुओं की संख्या विश्व में सब से बड़ी है। लगभग सारी बौद्धिकता परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, और दलबंदी ग्रस्त है। विश्वविद्यालय से मीडिया तक यही दृश्य है।

14. जिन्होंने कभी एक मौलिक लेख तक नहीं लिखा जिसे कोई नोट भी करने लायक समझे, वे 'चिंतक', 'राष्ट्रऋषि', आदि कह कर जबरन थोपे जाते हैं। जो झूठे प्रचार में देश का धन बेतहाशा बर्बाद करने वाले अगले 'ऋषि' बनते हैं।

15. इक्के-दुक्के सच्चे कवि, लेखक, विद्वान होते भी हैं, तो वे उपेक्षित, भूखे रहते, धोखे खाते, अपमानित होते किसी तरह अपना कर्तव्य व जीवन-यापन करते हैं।

16. आजीविका के अनेक क्षेत्रों में मामूली योग्य युवा भी विदेश जाना चाहते हैं, और जाकर नहीं लौटते।

17. शरीर दिमाग सुन्न हो जाने पर भी नेता पद से नहीं हटते, न उन्हें हटाया जाता है। क्योंकि सभी अपने लिए वही चाहते हैं।

18. बिना उपार्जन किए, दूसरों के श्रम पर जीते, कुर्सी साधते, देश-विदेश घूमते, लफ्फाजी करने वाले प्रोफेशनल परजीवी 'समाज-सेवक' कहे जाते हैं।

19. बड़े-बड़े नेताओं को अपने वादों, घोषणाओं के लिए उत्तरदायी नहीं बनना पड़ता। वे पिछले दावे भुला नित नए दावे करते आजन्म किसी न किसी पद पर मजे से रह सकते हैं। उन्हें कोई लज्जा नहीं महसूस होती जब उनकी हाल की भी पिछली बातें उनकी वर्तमान करनी के ठीक उल्टी दिखती हैं।

20. ऐसे-ऐसे बड़े न्यायाधीश होते हैं जिन्होंने अपने पूरे कार्यकाल में अदालत में कभी मुँह नहीं खोला, न कभी वहाँ कोई जजमेंट लिखा। लेकिन उन्हें ही आगे और संवैधानिक पद दिए जाते हैं। ऊपर से विशिष्ट राष्ट्रीय सम्मान भी!

21. असंख्य महत्त्वपूर्ण पदों के लिए उस कार्य की योग्यता सबसे उपेक्षित तत्व है। किसी व्यक्ति का दल, गुट, जाति, मजहब, मतवाद, आदि ही चयन का पहला और कभी एकमात्र तत्व होता है।

22. हवा का रुख देख रोज रंग बदलने वाले लोग देश के नीतिकार और संचालक बनते हैं।

23. अपने ही संगठन 'परिवार' को भी नित झूठी बातों से भरमाने वाले देश के मार्गदर्शक कहलाते हैं।

24. राज्य में शराब प्रतिबंधित हो जाने के बाद भी घर-घर उपलब्ध हो सकने का जगजाहिर चलन 'सुशासन' कहलाता है।

25. एक भ्रष्टाचारी राष्ट्रीय सम्मान से विभूषित होता है, यदि अपना पार्टी-संगी हो। पर वही भ्रष्टाचार करने वाला अन्य जेल में झूलता है, यदि पार्टी-संगी न बने।

26. राजनीतिक दलों द्वारा अरबों-खरबों रुपयों के देशी-विदेशी चंदों के लेन-देन का कोई विवरण न देने, कोई ऑडिट, हिसाब कहीं भी न होने को 'पारदर्शिता' कहा जाता है।

27. दल-बदल विरोधी नियम बना कर सर्वोच्च सभा में भी अभिव्यक्ति व कार्य-स्वतंत्रता छीन ली गई है। जबकि वह छीनने वाले सुप्रीमो ही जम कर दल-बदल करा सकते हैं। यानी, अपने ही कानूनों का खुला मखौल उड़ाकर नेता खुद को 'अवतारी' पुरुष भी कहते हैं।

28. धर्म व देश के स्वघोषित शत्रुओं को भी दंड से बचाने के लिए

बड़े-बड़े बौद्धिक लग पड़ते हैं। आधी रात में न्यायाधीशों को जगाकर निहोरते हैं। जबकि मामूली अपराधों में झूठे-सच्चे आरोपियों के मामले सालों-साल लंबित रहते हैं। जिसकी परवाह देश के किसी बौद्धिक, राजनीतिक समूहों, संगठनों को नहीं होती।

29. ऐसे राष्ट्रीय नेता होते हैं जो पिछले कर्णधारों के जिन विचारों, कार्यों, और तरीकों की निन्दा करते हैं, अपनी बारी में ठीक वही सब बढ़-चढ़ कर करते हैं। ऊपर से अपनी पीठ ठोकते हैं। जिन्हें उनके अनुयायी 'कर्मयोगी' कहते हैं।

30. सबसे बड़े सामाजिक-राजनीतिक संगठन अपने धर्म-समाज के जानी दुश्मनों की लल्लो-चप्पो करते, उनके अड्डे, ट्रेनिंग सेंटर, आदि बनवाते हैं। इस कारनामे पर कहीं मगन होते हैं, तो कहीं छिपाते हैं। उनके अनुयायी यह देख कभी चकित, कभी संभ्रमित होते हैं।

31. किसी के सत्तासीन रहते उसकी तमाम गलतियों, मूर्खता, फूहड़ता पर सब चुप रहते हैं। जबकि दशकों, सदियों पहले मर चुके शासकों की लानत-मलामत करने वाले ऊपर से नीचे तक भरे पड़े हैं। मृतकों को गालियाँ देकर वे विजेता जैसे झूमते हैं।

32. सभी अंग के सत्तावान केवल स्वधर्मियों को पीटते-बाँधते, फींचते-फटकारते हैं। लेकिन खतरनाक विधर्मियों पर चुप्पी रखते हैं, चाहे वे कितने भी क्रूर घृणित कर्म क्यों न करें।

उपर्युक्त कुछ मोटी बातें साधारण अवलोकनकर्ता को भी दिखती हैं। यह सब ऐतिहासिक विधि से विश्लेषण करने पर एक आडंबर से दूसरे, और दूसरे तमाशे से तीसरे तक बहलावे में जीते हुए, आत्मप्रवंचना, दम-दिलासे के नशे में क्षरते-छीजते समाज का जीवन लगता है।

ऐसे अवलोकन को कुछ लोग नकारात्मक दृष्टि कहते हैं। लेकिन तब यथार्थ दृष्टि क्या है?

नीरद बाबू ने अपने समय के जगत का यथार्थ देखा-परखा था। इसके लिए उन्हें तब भी पसंद नहीं किया गया था। आज तो भारत में बेतहाशा आडंबर, प्रोपेगंडा और जुमलेबाजी के दौर में उनके लेखन का नामलेवा भी मिलना कठिन है। पर सत्य की शक्ति परम होती है। यदि कालगति नीरद बाबू को गलत साबित करे, तो उनकी आत्मा हर्षित होगी-क्योंकि उन्होंने अपने देश की क्षयशील गति को दु:ख के साथ देखा था। कोई सहृदय और सक्षम पाठक इसे स्वयं देख परख सकते हैं।

2/18, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली - 110002
मो. - 9910035650

हिंदी भवन में वृक्षारोपण समारोह

खजुराहो के मंदिर : पुरुषार्थ और आनंद के बीज मंत्र

- प्रमोद भार्गव

जन्म - 15 अगस्त 1956।
जन्म स्थान - शिवपुरी (म.प्र.)
शिक्षा - स्नातकोत्तर।
रचनाएँ - विभिन्न विधाओं में सात पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - डॉ. धर्मवीर भारती सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

भारतीय संस्कृति का बीज मंत्र है, आनंद! अर्थात् जीवन का आनंद! इस बीज मंत्र का विकसित होता रूप हम वैदिक ग्रंथों में चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अवधारणाओं में देखते हैं। तीसरे पुरुषार्थ 'काम' में जीवन की अनंत इच्छाएँ अंतर्निहित हैं, परंतु मुख्य रूप से काम, यौन इच्छा के देवता, कामदेव और उनकी सहधर्मिणी रति के परिप्रेक्ष्य में देखा जाता है। अतएव जिस युग में इन मंदिरों के निर्माण की शृंखला लंबे समय तक चलती रही थी, उस युग में अर्थ, धर्म, काम एवं मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि करना ही मानव जीवन का उद्देश्य निर्धारित कर दिया गया था। इसी जीवन-दर्शन के संदर्भ में अंतत: मोक्ष को आनंद या मुक्ति का प्रमुख कारक मान लिया गया। धर्म की लक्ष्य प्राप्ति में भी मोक्ष को प्रमुख पर्याय माना गया है। इस हेतु सांसारिक सुख-वैभव त्याग कर ईश्वर भक्ति और वैराग्य की साधना से मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करने के मनीषियों ने संदेश भी दिए। तथपि जो लोग बाल्यावस्था से ही साधना में रत नहीं होना चाहते थे, उन्हें सांसारिक मार्ग से ही गुजरते हुए मोक्ष का मार्ग सुनिश्चित कर दिया।

वैराग्य पर अंकुश के लिए बनाए गए मंदिर :- मोक्ष तक पहुँचने के ये मार्ग ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों से होकर गुजरते हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि वैदिक युग के अधिकांश ऋषि इसी परंपरा के निष्ठावान अनुयायी रहे हैं। फलत: वे विवाहित भी हैं, उनके बाल-बच्चे भी हैं और उनका दांपत्य सुखद यौन-सुख का आधार रहा है। भारतीय जीवन दर्शन की यही मूल और लंबी परंपरा रही है। लेकिन एक समय ऐसा भी आया जब जैन एवं बौद्ध जीवन-दर्शन से प्रभावित होकर बड़ी संख्या में लोग संन्यास लेकर वैराग्य अथवा मोक्ष के लिए वन-प्रांतरों के अनुगामी होने लगे। इसका न केवल सामाजिक व्यवस्था और पारिवारिक इकाई पर विपरीत असर पड़ा, बल्कि जनसंख्या तेजी से घटने लगी। यहाँ तक की सैन्य-संचालन के लिए योद्धाओं की कमी पड़ने लगी। अतएव वैराग्य से युवाओं का मुख मोड़ने के दृष्टिगत इन विशाल मंदिरों की शृंखला का निर्माण मध्यभारत के बुंदेलखंड की भूमि पर सृष्टि सृजन की पाठशाला के रूप में किया गया। वैराग्य की ओर उन्मुख युवाओं की काम-भावना को जागृत करने के हेतु को लक्ष्य बनाकर मंदिरों की बाहरी दीवारों पर काम-कला से अलंकृत उत्तेजक मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गईं। इन मिथुन-मूर्तियों के शृंगार-दर्शन से वैराग्य पर कितना अंकुश लगा, यह कहना तो कठिन है, लेकिन इन मंदिरों का निर्माण परंपरा और वात्स्यायन लिखित कामसूत्र ग्रंथ से यह तो ज्ञात होता ही है कि सनातन संस्कृति और जीवन-शैली में काम लज्जा का विषय एक लंबे कालखंड तक नहीं रहा, अपितु शृंगार और काम मूर्ति शिल्प एवं अक्षर संस्कृति के अनिवार्य भाव बने रहे। तत्पश्चात् कामुकता के इस अनूठे और अद्वितीय संसार को रचने की निर्माताओं के मन में क्या भावना और दृष्टि रही होगी, इसे जानने की कोशिश करते हैं।

खजुराहो के मंदिर जिन कालखंडों में अस्तित्व में लाए गए तब निश्चित है कि इसके इर्द-गिर्द का क्षेत्र अत्यंत रमणीय वन-प्रांगण रहा होगा? इसीलिए इस क्षेत्र के व्यापक फलक को निहारने से ज्ञात होता है कि कालिंजर और चित्रकूट इसी भू-भाग के हिस्सा थे। भारतवर्ष का जो भूखंड चंदेल शासकों के अधीन रहा, वह धसान (दशार्ण) नदी के पूर्व में और विंध्याचल पर्वत के उत्तर और पश्चिम में था। उत्तर में वह यमुना के किनारे तक और दक्षिण में करणावती नदी के उद्गम स्थल तक विस्तृत था। केन नदी इस भू-भाग के बीच से बहती है। महोबा तथा खजुराहो इसके पश्चिम में और कालिंजर एवं अजयगढ़ पूर्व में हैं। यह प्रदेश वर्तमान में बाँदा, हमीरपुर, छतरपुर और पन्ना जिलों की सीमा में फैला हुआ है, जिसे बुंदेलखंड कहा जाता है। चंदेल राजाओं की जब शक्ति चरम पर थी, तब वे अपनी सीमाओं का विस्तार करते हुए बेतवा नदी तक चले गए थे।

लोक में प्रचलित किंवदंती :- खजुराहो के लोक में व्याप्त किंवदंती है कि चंदेल राजवंश का उदय काशी के इंद्रजीत गहरवार राजा के पुरोहित की कुँवारी कन्या हेमावती की कोख से जन्मे पुत्र से हुआ। चंद्रमा से उत्पन्न इस पुत्र का नाम चंद्रवर्मा या चंद्रवर्मन पड़ा। खजुराहो

मंदिरों के विशाल परिसर में जब दर्शनार्थी पथ-प्रदर्शक के अनुयायी बन कर मंदिरों की विराट महिमा के कौतुक को अवलोकित कर रहे होते हैं, तब चंदेल राजाओं के वंश के सृजन का सूत्रवाहक भी यही बताता है। मार्गदर्शक बताता है ग्रीष्म की एक रात को विधवा नवयुवती हेमावती सरोवर में ऋतु स्नान के समय कामावेग से व्याकुल थी, तब एकाएक चंद्रदेव आकाश गमन करते हुए धरती पर उतरे और हेमावती के सूर्य किरणों से दमकते सौंदर्य को आलिंगन में ले लिया। अनुराग-लीला समाप्त होने के बाद ब्रह्म मुहूर्त में वे वापसी को उद्यत हुए, तब हेमावती ने उन्हें कौमार्य भंग करने की भूल को अभिशाप का भय दिखाया। तब चंद्रमा बोले, तुम्हें तो प्रसन्न होना चाहिए कि तुम्हारे गर्भ से यह जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह अजेय क्षत्रिय वीर कहलाएगा और एक ऐसे राजवंश का बीज डालेगा, जिससे हजार राजवंश प्रस्फुटित होंगे।

लोक में प्रचलित इस जनश्रुति को इतिहासज्ञ तथ्यात्मक नहीं मानते। परंतु यह अवश्य मानते हैं कि चंदेलों का उदय चंद्रवंशी राजा से हुआ। इस सिलसिले में राजा धंगदेव का एक शिलालेख मिला है। इसमें चंदेल वंश के अग्रज नानुकदेव नाम के व्यक्ति बताए गए हैं। पर कथानक विस्तार में चंदेल वंश के आदि पुरुष चंद्रात्रेय का उल्लेख है। चंदेल राजसत्ता के आरंभिक काल में इस क्षेत्र को जेजा के नाम से जयशक्ति प्रांत के नाम से भी जाना जाता है। बाद में इसे जेजाशक्ति कहा जाने लगा। इस क्षेत्र का उल्लेख यजुर्वेद में भी मिलता है। उस समय यह क्षेत्र यजुर्हेति कहलाता था। जो अपभ्रंश होकर जोजभुक्ति बना और फिर जुझौत, जुझौती या फिर जिझौतिया कहा जाने लगा। जेजा (जयशक्ति) वाक्पति का ज्येष्ठ पुत्र था। वर्तमान में इस पूरे क्षेत्र में जिझौतिया ब्राह्मण का एक बड़ा समुदाय रहता है। विक्रम संवत् 857 में नानकदेव ने जिस चंदेल राजवंश की नींव रखी, उसके बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र वाक्पति विसं 992 में फिर विजय, राहिल, हर्षदेव और विसं 982 में यशोवर्मन देव ने राजगद्दी सँभाली। खजुराहो में मंदिर निर्माण की आधारशिला इन्हीं यशोवर्मन ने रखी।

चंदेलाओं की शक्ति के संस्थापक :- चंदेलाओं के भौगोलिक, राजनैतिक और सैन्य-शक्ति के वास्तविक संस्थापक हर्षदेव या हर्षवर्धन के पुत्र यही यशोवर्मन थे। कहीं-कहीं इन्हें लक्ष्मण वर्मन के नाम से भी इतिहास के पन्नों पर दर्शाया गया है। इनके दो विवाह हुए थे। इनकी एक रानी का नाम नर्मदा देवी और दूसरी का पुष्पा देवी था। ये सुलक्षणा, धर्मनिष्ठ और जनहितैषी स्त्री थीं। यशोवर्मन ने अपने चंदेल साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार महाकौशल से कश्मीर और बंगाल से मालवा तक किया। जिस राज्य पर भी यशोवर्मन ने आक्रमण किया, वह पराजित होता चला गया। इसका एक बड़ा कारण यशोवर्मन के पास विशाल सैन्य-बल था। सेना में 1, 60, 000 पैदल सैनिक, 38,000 अश्वारोही सैनिक और 56 हाथियों का दल था। परिणामस्वरूप, यशोवर्मन ने अपने शोर्य, रण-कौशल और सैन्य-बल से गौड़, खस, कौशल, कश्मीर, कन्नौज, मालवा, चेदि, कुरु, गुर्जर आदि सम्राटों को पराजित कर कालिंजर के कलचुरियों को भी परास्त कर अपनी अधीनता में ले लिया। कन्नौज के राजा को अपदस्थ कर भगवान विश्णु की बैकुंठ रूपी प्रतिमा को भी अपने साथ ले आए। कालांतर में अपने साम्राज्य का चतुर्दिक विस्तार करने वाले इन्हीं ऐश्वर्यशाली यशोवर्मन ने एक स्वप्न को साकार रूप देते हुए खजुराहो में विष्णु मंदिर की आधारशीला रखी, जो वर्तमान में लक्ष्मण मंदिर के भी नाम से जाना जाता है।

यशोवर्मन के बाद उसके पुत्र धंगदेव ने राजगद्दी सँभाली। चंदेल वंश का यह भी अत्यंत प्रतापी राजा रहा है। आसपास के अनेक प्रदेशों में इसने अपने प्रभुत्व को कायम रखा। खजुराहो के एक शिलालेख में इनकी मृत्यु का वृत्तांत है। विसं. 1056 में एक सौ वर्ष की उम्र में इनका प्राणांत प्रयागराज के त्रिवेणी संगम पर होना बताया गया है। इन्होंने भगवान शिव के विशाल मंदिर का निर्माण कराया था। विसं. 1055 में जब गजनी के मुसलमान बादशाह सुबुक्तगीन ने भटिंडा के राजा जयपाल पर चढ़ाई की थी, तब उसने भारतवर्ष के अनेक राजाओं से सहायता का निवेदन किया था। इस आमंत्रण को धंगदेव ने स्वीकारा और विशाल सेना के साथ भटिंडा पहुँच गए थे। धंगदेव की मृत्यु के बाद उसका पुत्र गंडदेव उत्तराधिकारी बना। प्रतापी गंडदेव ने कन्नौज पर इसलिए आक्रमण किया था, क्योंकि कन्नौन के राठौरवंश के राजा महेंद्रपाल ने विंस 1077 में महमूद गजनवी की अधीनता स्वीकार ली थी। गंडदेव के पराक्रम से महेंद्रपाल को अपना राज्य गजनवी से वापस मिल गया, किंतु कन्नौज को गंडदेव ने अपनी अधीनता में रखा। यह समाचार जब गजनवी को मिला तो विसं. 1078 में सीधे कालिंजर पर चढ़ाई कर दी। लेकिन गंडदेव के युद्ध कौशल के चलते गजनवी कालिंजर तक नहीं पहुँच पाया और उसे उल्टे पैर प्राण बचाकर लौटना पड़ा।

इस युद्ध में विजय से चंदेल राजवंश की शक्ति का परचम चारों दिशाओं में फैल गया। खजुराहो परिसर में भगवान विश्वनाथ मंदिर में उत्खचित शिलालेख से पता चलता है कि गंडदेव ने इस मंदिर का निर्माण 1056 में अपने पिता धंगदेव के नाम से कराया था। गंडदेव के पश्चात् उसका पुत्र विद्याधर देव, उसके बाद विजयपाल और विजयपाल के बाद उसका पुत्र देववर्मन गद्दी पर बैठा। देववर्मन के बाद उसका भाई कीर्तिवर्मन सिंहासनारूढ़ हुआ। इसने लंबे समय तक राज किया। इसके समय का एक शिलालेख देवगढ़ में विसं. 1154 का मिला है। महोबा के पास कीरत-सागर नाम का तालाब भी इन्हीं ने बनवाया। इनके नाम के सोने के सिक्के भी मिले हैं।

कीर्तिवर्मन के बाद उसका पुत्र हलक्षण गद्दी पर बैठा। इनके नाम की अंकित स्वर्ण और ताम्र की अनेक मुद्राएँ मिली हैं। इनके बाद जयवर्मन ने सत्ता सँभाली। इनके नाम के अनेक सिक्के लंदन के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। विसं. 1173 का एक शिलालेख खजुराहो के धंगदेव द्वारा बनवाए शिव मंदिर में उत्कीर्ण है। इसमें मंदिर की मरम्मत किए जाने का विवरण है।

चंदेलों का पतन :- जयवर्मन के बाद उसका छोटा भाई हलक्षण द्वितीय राजा हुआ। ये मात्र दो वर्ष ही राजा रहे। इनके बाद पृथ्वीबर्मन देव राजा हुए। इनके नाम से विसं. 1186 और 1220 के शिलालेख मिले है। महोबा के निकट मदनसागर नाम का सरोवर इन्हीं ने बनवाया था। इन्होंने सागर के निकट मदनपुर नाम का एक नगर भी बसाया था। इस समय तक चंदेल राजाओं की उन्नति और प्रसिद्धी चरम पर थी। मदनवर्मन के नाम का शिलालेख कालिंजर के प्रसिद्ध नीलकंठ मंदिर में भी है। खजुराहो के जैन मंदिर में भी विसं. 1215 का एक शिलालेख है। मदनवर्मन के बाद कीर्तिवर्मन रजा हुए। लेकिन एक साल भी राजगद्दी नहीं सँभाल पाए और परमर्दिदेव परमाल राजा बन गए। इनके समय के शिलालेख मदनपुर, अजयगढ़, महोबा और खजुराहो में तो मिलते ही हैं, कालिंजर के नीलकंठ मंदिर में भी मिलते हैं। कालिंजर को महोबा का राजा बताया गया है। इससे ज्ञात होता है कि इस समय तक चंदेलों का पराभव शुरू हो गया था, जिसके परिणामस्वरूप राजधानी खजुराहो से परिवर्तित होकर महोबा हो गई थी। इन्हीं परमर्दिदेव के समय आल्हा-ऊदल नाम के योद्धा थे। इनका राज्यकाल विसं. 1166 से 1202 रहा। चंदेल राजाओं का यही अंतिम पराक्रमी व महत्त्वपूर्ण राजा हुआ। पृथ्वीराज चौहान से शत्रुता के चलते चंदेलों का पतन आरंभ हो गया। पृथ्वीराज ने महोबा और कालिंजर पर एक साथ हमला बोल कर चंदेलों के राज-वैभव को तहस-नहस कर दिया। चंदेल इस संकट से उबर पाते, इसके पहले ही कुतुबुद्दीन ऐबक ने चंदेलों पर हमला बोल दिया। चंदेल यहाँ पराजित हुए और उनकी शक्ति का हमेशा के लिए पतन हो गया।

चंदेल राजवंश की अधिष्ठात्री का स्वप्न :-भारतीय पुरातन दर्शन में स्वप्नों का महत्व रहा है। वे भविष्य की घटनाओं का स्वप्न में आकर प्रतिबिंबों के माध्यम से संकेत देती हैं। अतएव वाल्मीकि रामायण हो या महाभारत स्वप्नों की महिमा और यथार्थ का जीवन-दर्शन परिलक्षित होता रहता है। चंदेल राजवंश के संस्थापक, खजुराहो के सम्राट और खजुराहो के मंदिरों के निर्माता चंद्रात्रय यशोवर्मन एक रात सपने में अपने वंश की जन्मदात्री हेमावती के दर्षन करते हैं। करुणा और वात्सलय की सजीव प्रतिमूर्ति एक अभिलाषा की माँग लेकर उनके समक्ष खड़ी हैं। हेमावती अपने चरित्र की व्यथा-कथा यशोवर्मन को सुनाती हैं। वे बताती हैं, 'मैं गहिरवार राजा इंद्रजीत के पुरोहित की कन्या थी। अत्यंत सुंदर। नादान उम्र में विवाह हुआ और सोलह वर्ष की आयु में विधवा हो गई। इसे संयोग कहूँ या दुर्योग, एक दिन एक चंद्रमा जैसा आकर्षक युवक मुझ पर मोहित हो गया। अपने ब्राह्मणत्व के संस्कार और वैधव्य की मर्यादाएँ भूलकर मैं उसके बाहुपाश में समा गई। काम के मोह के इस क्षण पर मैं नियंत्रण नहीं रख पाई और एक विधवा स्त्री गर्भवती हो गई। तत्पश्चात् लोक-लाज के चलते कालिंजर होती हुई कर्णावती नदी के किनारे पहुँची और तुम्हारे पूर्वज अर्थात आदि पुरुष चंद्रात्रेय चंद्रवर्मन को जन्म दिया। अब मैं चाहती हूँ, तुम एक ऐसा मंदिर बनवाओ जो जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्त करते हुए, काम एवं माया-मोह के चरम क्षणों पर नियंत्रण, विजय और मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने वाला हो। स्वप्न यहीं टूट गया और चंदेल राजवंश की अधिष्ठात्री देवी हेमावती अंतर्ध्यान हो गईं।

स्वप्न को साकार करने का संकल्प :- राजा यशोवर्मन इस स्वप्न से कुछ समय के लिए विचलित तो हुए, लेकिन इस लोकोपवाद के यथार्थ को वे जानते थे कि इस वंश की जननी एक विधवा स्त्री की संतान थी। जिनके साथ यह मिथक जुड़ा था कि सोलह वर्षीय विधवा ब्राह्मणी हेमावती पूर्णिमा की दूधिया रात की अलस्य सुबह की चाँदनी में कमलताल में ऋतुस्नान कर रही थीं। तभी चंद्रमा की दृष्टि उन पर पड़ गई और सद्यस्नाता की काया पर मंत्रमुग्ध हो गए। कामोत्तेजना ने उनके मर्यादा के बंध खोल दिए। तत्क्षण वे एक सुगाठित देह के युवराज में परिवर्तित हो गए। मिलन का प्रस्ताव मिला तो आवेग में हेमावती ने परंपराओं से संस्कारित सारी वर्जनाएँ तोड़ दीं। दोनों के संयोग से चंद्रात्रेय चंद्रवर्मन जन्मे और चंदेल राजवंश की नींव यकायक तात्कालिक प्रकट हुई परिस्थितियों ने डाल दी। इसीलिए कहा भी जाता है, मनुष्य परिस्थितियों का दास है। राजा यशोवर्मन ने यह स्वप्न पत्नी पुष्पा को भी सुनाया। दोनों ने निर्णय लिया, हमारी पूर्वजा की भटकती हुई आत्मा यदि मंदिर के रूप में एक विलक्षण स्मारक के निर्माण का संकेत दे रही है, तो उसे अवश्य आकर दिया जाए। परंतु मूल प्रश्न था कि ऐसा मंदिर कैसे बने जो जीवन के यथार्थ को व्यक्त करते हुए काम और मायामोह के चरम क्षणों को नियंत्रित रखते हुए मोक्ष का मार्ग खोल दे? इसके हल उन शास्त्रज्ञ और शिल्पियों के पास ही मिलेंगे, जो वात्स्यायन के कामसूत्र, कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतलम और जयदेव के गीत-गोविंद के वास्तविक अर्थों को जानते हों?

उपयुक्त शिल्पी की खोज :- इस स्वप्न के रहस्य को अगले दिन यशोवर्मन ने राज कवि माधव को बताया। मंदिर निर्माण के चंदेल राजवंश की अधिष्ठात्री हेमावती की कल्पना के अनुरूप मंदिर की रचनात्मकता को आकार देने के लिए शिल्पी की खोज का आग्रह किया। माधव एक निराकार कल्पना को आकार देने हेतु सक्षम

शिल्पी की खोज में जुट जाते हैं। जहाँ से भी नवीन सूत्र मिलता है, वे उस ओर खिंचे जाकर अनेक शिल्पियों से साक्षात्कार करते हैं, परंतु संतुष्ट नहीं होते। अनेक सुदूर प्रांतों की यात्रा के बाद वे निराश लौट पड़ते हैं। किंतु उपलब्धि हाथ नहीं थी, इसलिए वे अपने ही राज्य की सीमा में स्थित बियावान वन-प्रांत खर्जुरवाह के प्राकृतिक सौंदर्य का अश्वारोहण करते रहते हैं। इस वन विहार में वृक्ष, सरोवर, झील-झरने तो थे ही खजूर के वृक्ष करणावती (केन) नदी के किनारे तक फैले हुए थे। यह पूरा क्षेत्र लाल-बलुआ और लावा पत्थरों के बेडोल उतुंग शिखरों से भरा हुआ था। तभी उनकी निगाह बड़े शिलाखंड पर चिंतामग्न बैठे एक व्यक्ति पर पड़ती है। उन्हें वह अजनबी लगता है। वे उसके निकट पहुँचते हैं, लेकिन वह विचलित नहीं होता। तब माधव ही पूछते हैं, 'कौन हो तुम अजनबी! इस देश के तो नहीं लगते?' उसने आँखें उठाकर अश्वारोही को निहारा और बोला, 'ठीक पहचाना। मैं हूँ तो मूर्तिकार, परंतु विचित्र वेदना की पीड़ा से कई महीनों से साधारण पथिक के रूप में भटक रहा हूँ।' वह फिर चिर शांति में डूब गया।

'तुम्हारी क्या पीड़ा है, मुझे बताओ? संभव है, मैं सहायता कर सकूँ?'

'मेरी मदद कोई साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता। मैं एक कल्पनाशील असाधारण शिल्पी हूँ। मेरे जो पतन की पीड़ा है, उसके पश्चाताप मैं यहाँ मंदिर के रूप में एक ऐसा स्मारक खड़ा करना चाहता हूँ जो हमारे दर्शन के चारों पुरुषार्थों का भोगा हुआ यथार्थ प्रस्तुत करने वाला हो।'

अनायास राज कवि माधव की आँखों में चमक आ गई। उन्हें लगा, जैसे उनकी तलाश पूरी होने जा रही है। वे उत्साहित हुए और बोले, 'शिल्पी मैं चंदेल राजवंश का राज कवि माधव हूँ। तुम मुझे अपनी पीड़ा बताओ, मैं महाराज यशोवर्मन के समक्ष उसे रखूँगा। यदि उन्हें लगा कि तुम कुछ अनूठा करने की प्रतिभा रखते हो, तो वे अवश्य मदद करेंगे।'

'मैं एक ऐसा अभागा शिष्य हूँ, जिसने अपनी गुरु पत्नी के साथ भोग किया है। मैं काम के इस चरम क्षण पर नियंत्रण नहीं रख पाया। अपने चारित्रिक पतन की इस वेदना को मूर्तिकला के माध्यम से स्मारक की प्राचीरों पर ढालना चाहता हूँ।'

शिल्पी की यशोवर्मन से मुलाकात :- राज कवि की खोज पूरी हुई। आनंद नाम के इस शिल्पी को माधव ने सम्राट से मिलवाया। यशोवर्मन के पूछने पर आनंद बताता है कि खजुराहो ऐसा विशिष्ट स्थल है, जहाँ ऐसे पत्थर हैं, जिनमें मूर्तियों के रूप तराशना आसान है। केन नदी के किनारे पर कभी लावा फूटा था, इसीलिए वहाँ ऐसे कणाष्य पत्थर बहुत बड़ी मात्रा में हैं। मंदिर की नींव में यही पत्थर लगाए जाएँगे। इन पत्थरों में भूकंप को झेलने की क्षमता होती है। क्योंकि इनका भार कम होता है। इनमें वायु भी भरी होती है, इस कारण ये भूकंप के भूगर्भीय दबाव से आसानी से टूटते नहीं हैं। ये छिद्रयुक्त बलुआ यानी लावा पत्थर अत्यंत उपयोगी हैं। दुर्ग और मंदिरों की आधारशीला इन्हीं से बनानी चाहिए। इन्हें स्मारक स्थल तक ढोने के लिए बैलगाड़ियाँ निरंतर लगी रहें। मंदिर के गर्भगृह में भगवान विष्णु की मूर्ति स्थापित की जाएगी और मंदिर की दीवारों के भीतरी भाग में जैविक विकास से संबद्ध विष्णु के अवतारों के प्रतीकात्मक साकार रूप होंगे। मंदिर में, मैं उन सभी रूपों को मूर्तिशिल्प में उकेरना चाहता हूँ, जो मनुष्य प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष जीता है। मन और तन की सांसारिकता तभी शिल्प रूपों में समग्रता के साथ परिलक्षित होगी। ये प्रतिमाएँ इतनी चित्ताकर्षक और जीवंत होंगी कि मनुष्य को तीव्र लालसा के चरम बिंदु पर पहुँचा देगी। यदि मनुष्य इस लालसा के भँवर में डूब गया तो पुनः संसार में लौट जाएगा और उसने कहीं इस क्षण पर विजय पा ली तो वह निर्विकार क्षण अध्यात्म और मोक्ष का प्रस्थान बिंदु होगा। जेकिन क्षमा करें महाराज, काल्पनिक शिल्पों को यथार्थ मूर्ति शिल्प में ढालने के लिए आपकी पुत्री राजकुमारी अलका प्रतिदर्श के रूप में चाहिए। महारानी पुष्पा से विचार-विमर्श के बाद यशोवर्मन ने अलका को प्रतिदर्श के लिए साथ देने की अनुमति दे दी।

वैराग्य पर अंकुश के लिए मंदिरों का निर्माण :-जो पराक्रमी और धर्मावलंबी राजा व राष्ट्रहितैशी विचारक चिंतक होते हैं, उनके अंतर्मन में संक्रमण काल की समकालीन चिंताएँ भी अँगड़ाई ले रही होती हैं। अतएव यह कहना एक सरल अवधारणा होगी कि इन मंदिरों का निर्माण केवल एक स्वप्न का प्रतिफल है। अपितु यह वह कालखंड था, जब महाभारत युद्ध के बाद बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार तेजी से हो रहा था। इसका प्रभाव युवाओं पर सर्वाधिक था। गृहस्थ धर्म से विमुख होकर बड़ी संख्या में युवक हाथ में भीख का कटोरा लेकर ब्रह्मचर्य और संन्यास की ओर बड़ी संख्या में उन्मुख हो रहे थे। इसी कालखंड में जैन धर्म के चलते लोग, जिनमें युवक और युवतियाँ शामिल थीं, अहिंसात्मक आंदोलनों के प्रभाव में आकर किसी भी प्रकार की हिंसा को पाप मानते हुए युद्ध से विमुख होकर वैराग्य अपनाने लगे थे। यही वह समय है, जब युवतियों में साध्वी बनने की प्रतिस्पर्धा शुरू हो गई थी। परिणामतः राजा सेना में सैनिकों की कमी अनुभव कर रहे थे और जनसंख्या घटने के संकेत मिलने लगे थे। इधर इन मंदिरों के निर्माण के ठीक पहले से इस्लाम धर्म के मुस्लिम आक्रांताओं के हमले तेज और निरंतर होने लगे थे। यशोवर्मन और उनके उत्तराधिकारी पुत्र धंगदेव को भी मुस्लिम आक्रांताओं से लोहा

लेकर उन्हें अपने साम्राज्य की सीमाओं से खदेड़ना पड़ा था। धंगदेव ने गजनी के सुल्तान सुबुक्तगीन से उस समय मुकाबला किया था, जब वह भटिंडा (पंजाब) के राजा जयपाल का राज्य हस्तगत करने के लिए पंजाब में घुसा चला आया था। इस समय धंगदेव के अलावा अनेक क्षत्रिय राजाओं ने जयपाल का साथ देकर सुबुक्तगीन को भारतवर्ष की सीमा से खदेड़ दिया था।

अतएव इस संक्रमण काल में इस स्थिति को कतई उचित या निरापद नहीं कहा जा सकता है कि राष्ट्र के युवा दांपत्य जीवन से विमुख होकर कमंडल हाथ में लेकर वैराग्य को धारण करते चले जाएँ? अर्थात् दूरदृष्टा यशोवर्मन और उनके आगामी वंशजों के लिए आवश्यक हो गया था कि वे युवाओं को ऐसा संदेश दें, जिससे युवा काम सुख के लिए ही सही विवाह के लिए प्रेरित हो जाएँ और जीवन में काम के पुरुषार्थ को अपना पुनीत कर्त्तव्य मानते हुए अंगीकार करें। यशोवर्मन ने उस कालखंड में अपनी इकलौती पुत्री अलका को प्रतिदर्श बनने की स्वीकृति दी थी, जब स्त्री विशयक अनेक वर्जनाओं के चलते समाज धर्मांधता, अंधविश्वास और जड़ता की गिरफ्त में आता जा रहा था। अतएव काम को ऐंद्रिक उत्तेजना का तात्कालिक क्षण की पलायनवादी युवाओं में घर कर रही वृत्ति से मुक्त कर उसे आनंद या चेतना के ऊर्जावान विषय में ढालना राष्ट्रहित में आवश्यक था। यानी काम को 'पाप' के बोध से मुक्त कराना भी निर्माताओं के लक्ष्यों में से एक था। इसीलिए यशोवर्मन के स्वप्न में आई हेमावती का स्वप्न में भी यही संकेत है कि काम को हर स्थिति में पुरुषार्थ का एक आवश्यक भाग माना जाए।

सनातन संस्कृति में काम :- वैसे भी सनातन संस्कृति की दीर्घ परंपरा में समाज में अनैतिक कामुकता को वर्जित नहीं माना गया। मिथक को आवरण में ढककर उन्हें समाज में प्रतिष्ठित किया गया है। हम जानते हैं कि गौतम ऋषि की ब्याहता अहल्या ने इंद्र के साथ समागम किया। जिसका परिणाम उन्होंने क्रोधित पति के अभिशाप के चलते प्रस्तर-शिला के रूप में भोगा। अंततः भगवान श्री राम इन्हीं अहल्या के चरण स्पर्श करके माँ समान सम्मान देकर उनका उद्धार करते हैं। महाभारत की सत्यवती, कुंती और माद्री की प्रतिष्ठा ऐसी ही स्थापनाओं की द्योतक है। दरअसल अंग्रेजी दासता के बाद हम उस पश्चिमी-ईसाई आवधारणा के शिकार होते चले गए, जिसके जीवन-दर्शन में जीवन को पाप का प्रतिफल माना गया है। अतएव चंदेल युग में बौद्ध मत के उन प्रभावों से मुक्ति आवश्यक हो गई थी, जो काम के आनंद को अपराध-बोध का पर्याय मानती थी। अर्थात् इस युग में इन मंदिरों का निर्माण उस कालखंड की गृहस्थ जीवन और वानप्रस्थ के नए अर्थों में पलायन के विरुद्ध पुनर्स्थापना थी। अतः इन मंदिरों को आश्रम व्यवस्था के पुरुषार्थों की समग्रता में देखा जाना चाहिए।

तांत्रिकों की वाममार्गी धारणा पर अंकुश :-चंदेल राजाओं के कालखंड में समूचे बुंदेलखंड क्षेत्र में तांत्रिक समुदाय की वाममार्गी शाखा का युवाओं पर जबरदस्त प्रभाव पड़ रहा था, जो योग और भोग दोनों को मोक्ष का साधन मानते थे। अतएव मंदिरों की प्राचीरों पर जो मिथुन मूर्तियाँ उत्कीर्ण की गई हैं, वे इस प्रभाव की देन हैं। वात्स्यायन के कामसूत्र का आधार भी प्राचीन कामशास्त्र और तांत्रिक सूत्रों को माना जाता है। शास्त्रों के अनुसार संभोग भी मोक्ष प्राप्त करने का एक साधन हो सकता है, लेकिन इसकी सिद्धि में उन लोगों को दक्ष माना गया है, जो वास्तव में मुमुक्षु हैं। ऐसे में बड़ी संख्या में युवा तांत्रिकों के प्रभाव में आकर जीवन को सीधा आनंदमय बनाने की दृष्टि से भोग और जीवन की स्वर्गिक भ्रामक कल्पनाओं के वशीभूत होकर मोक्ष की शुष्क धारणा को अपनाने लग गए थे। जबकि सनातन हिंदू जीवन-शैली में गृहस्थ जीवन को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। वात्स्यायन कामसूत्र में गृहस्थ जीवन की सार्थकता निर्वाह करते हुए मोक्ष की ओर जाने की बात कही है। वास्तव में यह ग्रंथ दांपत्य जीवन का शृंगार है। अतएव कामसूत्र जीवन जीने की कला की एक किताब है। लेकिन इसके कामकला से जुड़े पक्षों को ही प्रमुखता से प्रस्तुत किया जाता है। खजुराहों के मंदिरों में कामसूत्र के सभी पक्षों को मनुष्य की मनोवैज्ञानिक सहायता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसीलिए यह ग्रंथ काम को हीन दृष्टि से न देखते हुए, काम को व्यक्ति और संसार की गतिशीलता का केंद्रीय भाव मानता है। कामसूत्र की तरह प्रश्नोपनिषद कहता है कि काम के बिना जीवन नहीं है। कामोत्तेजना और कामतृप्ति मनुष्य की भूख-प्यास की तरह प्राकृतिक अवस्थाएँ व आवश्यकताएँ हैं। ब्राहस्पत्य सूत्र में काम को पुरुषार्थ का द्योतक माना गया है। मनुस्मृति में स्पष्ट उल्लेख है, 'न माँस भक्षणे दोषो, न मद्ये, न च मैथुने।' यानी माँस, मदिरा और मैथुन में कोई दोष नहीं है। अतएव मनुष्य की नहीं प्रत्येक प्राणी की काया में कामवृत्ति और उसे तृप्त करने के उपाय एक प्रकृति प्रदत्त प्रवृत्ति है। इसीलिए जब खजुराहो की धर्मनगरी में इस शैली के पहले मंदिर के निर्माण की शुरुआत हुई थी, तब तंत्र साधकों ने मंदिर की दीवारों पर उत्कीर्ण की जा रही, निर्वस्त्र देह के वर्णन का समर्थन किया था।

मंदिरों में प्रतीक और मिथक :- शृंगार, प्रतीक और मिथक भारतीय साहित्य, कला और संस्कृति का प्रमुख अलंकारिक व अनिवार्य भाव रहा है। अतएव प्राचीन साहित्य हो या संस्कृति इनके प्रदर्शन में लज्जा का भाव दिखाई नहीं देता है। दुनिया के पहले ग्रंथ ऋग्वेद के स्त्री पात्र निःसंकोच काम की इच्छा प्रकट करते हैं। तत्पश्चात् भी काम के प्रति ऐसी उत्कट उतावलापन नहीं है, जिसमें लिप्त होकर जीवन से जुड़े अन्य पुरुषार्थ नकार दिए गए हों? इसीलिए जीवन से जुड़ी जो अवस्थाएँ हैं, उनका निर्वाह एक पुनीत कर्तव्य की तरह

परिलक्षित है। अत: खजुराहो की मूर्तियों में चारों पुरुषार्थ और अवस्थाएँ जीवंत-सनातन दर्शन के रूप में लक्षित हैं। वैसे भी जिन मिथुन मूर्तियों के लिए ये मंदिर विश्व प्रसिद्ध हैं, उनकी उपस्थिति तो मात्र दस प्रतिशत है, शेष मूर्तियाँ जीवन-दर्शन और कर्तव्य की अभिप्रेरणा हैं। परिवार, समाज और देश के लिए निष्ठावान जीवन इसी दर्शन से ग्रहण किए संस्कारों से बनता है। भारतीय दर्शन के मूल में दृष्टव्य है कि मनुष्य मन की चिरकाल तक दो ही मन:स्थितियाँ रहेंगी, एक सकाम और दूसरी निष्काम। इसी द्वंद्व में मनुष्य निरंतर संसार से मुक्त होने के प्रयत्न में जीवन व्यतीत करता रहेगा। इसी द्वंद्व की कश्मकश में 'मोह' के विभिन्न रूप भी उसे आकर्षित करते रहेंगे।

आक्रांताओं से बचे रहे मंदिर :- भारत के मंदिरों में दक्षिण और बुंदेलखंड के खजुराहो समूह के ही ऐसे मंदिर हैं, जो मुस्लिम आक्रांताओं की कुदृष्टि से बचे रहे हैं। ऐसा इसलिए संभव हुआ, क्योंकि चंदेल राजवंश के पतन के बाद राजधानी महोबा से इन मंदिरों का संबंध न्यूनतम होता चला गया। परिणामत: मंदिरों की ख्याति जनचर्चा में विलोपित होने लग गई। बुंदेलखंड की विभिन्न जनपदों के राजा इसलिए भी इन मंदिरों पर ध्यान नहीं दे पाए, क्योंकि उनका अधिकांश समय मुस्लिम आक्रांताओं से संघर्ष और सुरक्षा में बीतने लगा। इसका एक कारण यह भी रहा कि 1945 में सिकंदर लोधी द्वारा अनेक मंदिरों की मूर्तियों को खंडित कर दिए जाने के बाद इनमें पूजा-पाठ लगभग बंद हो गया था। अतएव यह स्थल वीरान होकर घने जंगल से आच्छादित हो गया। इसकी पहचान लगभग खत्म हो गई और यह साधारण गाँव खर्जुर, खर्जुरवाह या खर्जूरवाहक के रूप में ही सिमटकर रह गया। संस्कृत में खर्जूर को 'बिच्छू' कहते हैं। कंदारिया महादेव मंदिर की एक मूर्ति में निर्वस्त्र हो रही अप्सरा की जाँघ पर बिच्छू उत्कीर्ण है। भारतीय दर्शन में बिच्छू उत्कट कामेच्छा का प्रतीक है। प्रतीकवाद ही इन मंदिरों की मूर्तियों का मुख्य विषय है।

सैकड़ों वर्षों की उपेक्षा झेलते रहे इन मंदिरों तक किसी तरह 1818 में फ्रेंकलिन नामक अंग्रेज पहुँचा और उसने अपने यात्रा वृत्तांत में इन प्रस्तर खंडहरों का उल्लेख किया। इसी वर्णन की प्रेरणा से फिरंगी हुकूमत ने 1838 में ईस्ट इंडिया कंपनी के एक सैन्य अधिकारी टी.एस. बर्ट को भेजा। बर्ट अभियंता थे। वे यहाँ की स्थापत्य और मूर्तिकला से अत्यंत प्रभावित एवं चकित हुए। तत्पश्चात् 1852 से 1885 के मध्य इन मंदिरों के कला संबंधी पुरातत्वीय महत्व का सर्वेक्षण एलेक्लेडर कनिंधम ने किया। इस सर्वे के आधार पर खजुराहो को 1904 में भारतीय पुरातत्व विभाग ने अपनी अधीनता में लेकर इसके संरक्षण और पुनरुद्धार का सिलसिला शुरू किया। वर्तमान में मध्यप्रदेश के छतरपुर जिले का 'खजुराहो' प्रमुख पर्यटन स्थल है। इसकी वैश्विक प्रसिद्धि तो है, लेकिन इन मंदिरों के शिल्प और मूर्तियों में अंतर्निहित प्रतीकों व मिथकों की समकालीन व आधुनिक संदर्भों में व्याख्या की आवश्यकता शेष है।

शब्दार्थ 49, श्रीराम कॉलोनी
शिवपुरी-473551 (म.प्र.)
मो. 09981061100

उत्तर क्षेत्रीय युवा लेखक सम्मिलन

श्री कृष्ण : अवतरण, सच्चिदानंद का

- सुनील देवधर

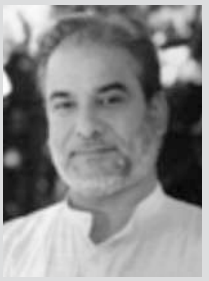

शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी., बी.सी.जे.।
रचनाएँ - नौ पुस्तकें प्रकाशित।

भाद्रपद कृष्ण अष्टमी, योगेश्वर कृष्ण का अवतरण, बालक कृष्ण का जन्म-जन्म जो अजन्मा है, अनादि और अनन्त है, उसका जन्म हाँ, उसी निराकार का साकार रूप किन्तु ये जन्म प्रकृति के मनुष्यों के सदृश होते हुए भी नहीं है। तो क्या ये प्रकृति को अधीन करके योग माया से प्रकट होने का प्रमाण है? प्रमाण ही है, क्योंकि इसके पीछे कारण है, हमारा आपका भी जन्म हुआ है, परन्तु हम इसका कारण नहीं जानते। वो कारण क्या है? क्या कोई विशेष प्रयोजन था? जो निर्गुण को सगुण रूप में प्रकट होना पड़ा। निश्चित प्रयोजन या जिसे स्वयं योगेश्वर कृष्ण ने स्पष्ट किया।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदान्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(हे भारत, जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ। साधु पुरुषों के उद्धार और दूषित कर्म करनेवालों के नाश के लिए धर्म स्थापना के प्रयोजन से मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ।)

और इस तरह अपनी ही रची लीला से बालक कृष्ण ने कारागार में अपनी आँखें खोलीं, पहरेदार सो गए। वसुदेव रातों-रात बालक कृष्ण को लेकर यमुना पार कर गोकुल आ गए। जहाँ प्रतीक्षारत थी माँ यशोदा, उसकी चिरपोषित अभिलाषा पूरी हुई, इसकी गोद हरी हो गई। नन्द को पुत्र मिला, उनके हर्ष का पारावार नहीं। पुत्र जन्म के अवसर पर आमोद-प्रमोद, हर्ष उल्लास का, वातावरण छा गया। ढोल-मँजीरे बज उठे हैं, ललनाएँ सोहर गाती हैं, बधाई का स्वर गूँज उठा है। गरीबों और याचकों के लिए नन्दराज ने रत्न लुटाए। पुत्र जन्म की कोई भी रीति-नीति छूटी नहीं है। चन्दन की लकड़ी का रत्नजड़ित पालना यशोदा के पास पहुँचाया गया है। पालने में शिशु को पौड़ाकर, अपलक निहारती हैं यशोदा, हल्के-हल्के झोंके देती हैं। कौन झूल रहा है, झुला कौन रहा है, इतनी सुध कहाँ है?

जसोदा हरि पालने झुलावै, जसोदा हरि पालने झुलावै।
मन झूलत लख लाल मधुर छवि, निरख-निरख बल जावे।
को झूलत अरू कौन झुलावत, महामोद सरसावें।
जसोदा हरि पालने सुलावे।....

इक टक चकित चेत चित झूलत, मन मोहित सुख पावें।
श्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचन हि कसावें।
जसोदा हरि पालने झुलावै.....

मधुर हास लालन को लखकर, भूल अपुन को जावे।
ढगिसि रहि कृष्ण कबी जसोदा, परा प्रेम दरसावें।
जसोदा हरि पालने झुलावै . . .

माँ के जीवन का सच्चा सुख तब झलकता है जब उसका कुँवर कन्हैया, उसकी गोद में किलकारी भरता है।

माँ यशोदा की तीव्र अभिलाषा है, कितने शीघ्र उसका कन्हैया बोलने लगे, दौड़ने लगे। अभी तक वो अपने कृष्ण कन्हैया के वास्तविक रूप को जानती कहाँ है। पहली बार उसे कृष्ण के वास्तविक रूप का दर्शन तब हुआ जब उनके मुख से मिट्टी उगलवाई। नाराज है यशोदा, कहती है, 'मोहन काहे न उगली माटी'। मोहन और जोर से मुख बन्द कर लेते हैं। माँ यशोदा हाथ में साँटी उठाती हैं और मोहन का मुख खुल जाता है। अखिल ब्रह्माण्ड, नदी, वन, पर्वत, स्वर्ग, पाताल, धरती। साँटी छूट जाती है हाथ से, माँ यशोदा का मुख खुला का खुला रह जाता है, बालक की भुजा छोड़ देती हैं, जान जाती हैं मेरा कन्हैया कौन है। माँ यशोदा बौरा जाती हैं, क्या ये बालक भगवान है? नित्य स्वरूप, सच्चिदानन्द यही है? परम भक्ति को प्रदान

करनेवाले पुरुषोत्तम यही हैं? उत्तर सकारात्मक ही है, कारण, व्याख्याकारों ने स्पष्ट किया है।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः।
ज्ञान वैराग्य योर्युक्तः षऽणामभक्तिम् जनः।

सम्पूर्ण ऐश्वर्य, अपूर्व बलवीर्य, अक्षय यश, अद्भुत सौन्दर्य, अनन्त ज्ञान और पूर्ण वैराग्य ये 6 गुण जिसमें विद्यमान हैं और सतत् विद्यमान है और जो इनका अधिष्ठाता है, वो भगवान् है। और ये सभी गुण श्री कृष्ण में सतत् रूप से प्रवहमान हैं। वे गोपियों के कृष्ण हैं और योगियों के भी कृष्ण हैं। वे रसरूप मुरली मनोहर भी हैं और विश्वरूप परमेश्वर भी। योग इतना कि गोवर्धन को धारण करते हैं, मात्र एक अँगुली पर। और श्रेय देते हैं ग्वालों को कि सबने लकुटी लगाकर सहारा दिया। विराट दावानल को मुट्ठी में भर लेते हैं और पी जाते हैं। श्रीकृष्ण अपनी इस क्षमता को अनदेखा रखना चाहते हैं। वे अपने ऐश्वर्य को बार-बार झुठलाते हैं, इसीलिए कि वे सहज मानवीय प्रेम का आस्वाद कम नहीं करना चाहते। श्रीकृष्ण की शक्ति तो ब्रजवासियों का अपार प्यार है। लोक में रमने से अधिक गहरा होता है, लोक से रमना। लोक मंगल से अधिक गहरा है लोकरंजन, यह रंजन ही लोक को लोकातीत बना देता है। यह सनातन वृन्दावन रचता है, और उसमें सनातन विहार रच देता है। फिर तो पनघट पर, यमुना तट पर, वंशीवट में प्रेम का रस निरन्तर बरसता ही रहता है। झूले पड़ जाते हैं, डाल-डाल पर श्रीकृष्ण छुपाए नहीं छुपते। और न छुपता है, श्रीकृष्ण के लिए उमड़ता प्यार। झूलने आ जाती है राधा, देह मन हो जाता है, और मन हो जाता है मन मोहन। श्रीकृष्ण बंसी फूँक देते हैं गोपांगनाओं का प्यार प्रकाशित हो उठता है। जब देह में श्रीकृष्ण भरते हैं। सिन्धु के लिए सरिता तट तोड़ देती है।

अपने जीवन में श्रीकृष्ण सतत् दो विरोधी धारणाओं के साथ चलते हैं। वे आदर्श प्रेमी भी हैं और निष्काम कर्मयोगी भी। उनका जीवन सतत् संघर्षमय है परन्तु इस संघर्ष में कहीं राग या द्वेष उत्पन्न नहीं होता। उनकी मुरली के स्वर का अर्थ है, निष्काम में कामना का उदय हो जाना।

कर्म की आवश्यकता न होते हुए भी लोक कल्याण के लिए कर्म में प्रवृत्त हो जाना। कुरुक्षेत्र में यद्ध से अर्जुन का पलायन, कर्महीनता की स्थिति थी। श्रीकृष्ण के लिए सबसे सरल था कि वे अर्जुन की बात से सहमत हो जाते। किन्तु श्रीकृष्ण अर्जुन के सभी सन्देहों का समाधान करते हैं और उसे विश्वास दिलाते हैं कि युद्ध से विमुख हो जाना जीवन से विमुख हो जाने के समान है। योगीराज कृष्ण के सामने नाना शंकाएँ, विविध जिज्ञासाएँ अर्जुन ने व्यक्त की थीं। उसने पूछा था -हे जनार्दन, जिसे आप सर्वश्रेष्ठ योगी मानते हैं वैसा मैं भी बन सकता हूँ क्या?

हे पार्थ, तुम मुझमें ही आसक्त मनवाले होकर और मेरा ही आश्रय लेकर निःसन्देह मेरे समग्र रूप को जान जाओगे। उस समग्र रूप को जानने के लिए मैं तुम्हें विज्ञान सहित ज्ञान सम्पूर्णता से बताऊँगा, जिसे जानकर फिर तुम्हारे लिए इस मनुष्य लोक में कुछ भी जानना शेष नहीं रहेगा।

जब ऐसी बात है, तब फिर सब मनुष्य आपके समग्र रूप को क्यों नहीं जान लेते? हजारों में से कोई एक मनुष्य अपने कल्याण के लिए यत्न करता है, उन यत्न करनेवाले साधकों में कोई एक ही मेरे समग्र रूप को तत्व से जानता है। आपको न जानने में मुख्य कारण क्या है?

हे भरतवंशी मुझे न जानने में मुख्य कारण है राग और द्वेष से उत्पन्न होनेवाला द्वन्द्वमोह। इसी द्वन्द्वमोह से मोहित सम्पूर्ण प्राणी संसार में जन्म-मरण को प्राप्त होते रहते हैं। अनन्त है श्रीकृष्ण का चरित्र, अगाध है उनका गीतोपदेश। एक धर्मग्रन्थ के रूप में भगवद्गीता व्यक्ति की इच्छा-शक्ति को पूरी स्वतन्त्रता प्रदान करती है। साथ ही हर स्वेच्छाचारी कर्म को वर्जित करती है। गीता जीवन का सत्य उद्घाटित करती है, वो जीवन का अध्याय है। जो पाठकों या साधकों के मानसिक क्षितिज को और अधिक व्यापक कर सकता है। इसके अध्ययन के बाद कोई भी रूढ़िवादी और विज्ञान विरोधी धर्म के सीमित सांकेतिक चौखटों में बन्द होकर नहीं रहना चाहेगा।

गीता में स्वयं श्रीकृष्ण ने जीवन और जगत् का सारतत्व सारे विश्व के नागरिकों के लिए प्रस्तुत किया है। मात्र भावना का आवेग या कल्पना की उड़ान किसी चरित्र या ग्रन्थ को कालजयी नहीं कर सकती। श्रीकृष्ण काल से परे हैं, काल उनसे ही उपजता है। भारतीय मानस में लौकिक-अलौकिक के बीच कृष्ण ही हैं। वे सबके हैं, इसीलिए विलक्षण हैं, और इसीलिए मोहक हैं। बिसारे नहीं बिसरते। वसुदेव देवकीनन्दन घर-घर के नन्दन हैं, हर माँ का लाल उसकी गोद में खेलता बालकृष्ण है। यदि ऐसा न हो तो संसार असहनीय हो जाए, संसार को जीवित जगत बनाने में यही बालरूप सहायक है।

ए-101 कुणाल बेलेजा,
एल. एम. डी. चौक,
बावधन, पुणे - 411021 (महा.)
मो.- 9823546592

कहाँ खो गए वे आजादी के गीत

– सुधा गुप्ता अमृता

जन्म – 4 जुलाई 1954।
जन्म स्थान – कटनी (म.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ – नौ पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – राष्ट्रपति पुरस्कार सहित अनेक सम्मान।

'इसमें संदेह नहीं कि यदि 1857 की क्रांति न हुई होती तो इसका अर्थ यही होता कि भारतवासियों में साहस, स्वाभिमान, कर्तव्य परायणता तथा जीवन का अंत हो चुका है।'

दरअसल, 1857 की गदर के साथ ही हर वर्ग में पनपी स्वतंत्रता की चाह जन क्रांति कहलाई। जन क्रांति के दौरान उन दिनों के बुद्धिजीवियों साहित्यकारों ने नाटक /नौटंकी के माध्यम से एवं गीतों के माध्यम से अंग्रेजों के विरुद्ध अपना जनसमूह तैयार किया था। उन दिनों के गीत सार्थक भावबोध प्रदान करने की दिशा में अपना ऐतिहासिक महत्व रखते थे।
अंग्रेजी सत्ता को हटाना स्वतंत्रता का मतलब समझाना और स्वदेशी होने का भाव उन दिनों के गीतों में हुआ करता था–

'जरा भारत की दौलत बचाओ पिया,
मुझे खादी की चादर ओढ़ाओ पिया।'

यह गीत आजादी की लड़ाई के दौरान आजादी के दीवानों के द्वारा लिखे गए थे जिन्हें आज कोई नहीं जानता। कुछ गीत तो ब्रिटिश हुकूमत के समय सरकार द्वारा जप्त भी कर लिए गए और गीत लिखने वालों को प्रताड़ित भी किया गया। आज भी इन गीतों में व्याप्त जज्बा हमें राष्ट्र प्रेम से भर देता है और उन आजादी के परवानों की याद दिलाता है–

'हमारा हक है हमारी दौलत किसी के बाबा का जर नहीं है
है मुल्क भारत वतन हमारा किसी की खाला का घर नहीं है
हमारी नस-नस का खून तूने बड़ी सफाई के साथ चूसा है
कौन सी तेरी पॉलिसी वह कि जिसमें घोला जहर नहीं है।'

आजादी के परवाने ऐसे गीतों को जोश के साथ गाते टोलियों में निकलते थे, यह जानते हुए भी कि हम पकड़े जाएँगे। किंतु जज्बाए जुनून स्वतंत्रता का सिर चढ़कर बोलता था–

'घड़ी वह दूर नहीं ए वतन के शैदाओ
कि मुल्क ए हिंद को फिर पुरबहार देखेंगे
बढ़े चलो ए जवानों फ़तह हमारी है
वतन को जल्द ही बाइख्तियार देखेंगे।'

जलियाँवाला बाग में जब बेकसूरों को गोलियों से जनरल डायर ने भून दिया तो स्वतंत्रता के दीवानों की कलम खौल उठी–

'बेगुनाहों पर गमों की बेखतर बौछार की
दे रहे हैं धमकियाँ बंदूक और तलवार की
हम गरीबों पर जिसने सितम किये बेइंतहा
याद भूलेगी नहीं उस डायरे बदकार की।
जिस जगह पर बंद होगा शेर नर पंजाब का
आबरू बढ़ जाएगी उस जेल की दीवार की।'

भारत की आन बान शान के लिए मर मिटने की इस कदर जिद थी –

'देश के वास्ते गर जेल भी जाना पड़े
शौक से हथकड़ी कह दो कि लगाओ हमको
जो करो दिल से करो मुल्क की खातिर करो
बात सच कहता है रोशन की न टालो अब तो।'

और जब श्याम लाल पार्षद का लिखा कौमी झंडा गीत गाँव-गाँव, गली-गली, चौराहे नुक्कड़ पर गाया जाता तो स्वतंत्रता का जुनून देखते बनता। स्वातंत्र्य समरसेनानी डॉक्टर गुलाब दास जी गुप्ता मेरे पिता और माता सुभद्रा देवी बतलाया करते थे कि इस गीत को बच्चे, जवान, बूढ़े दीवानगी की हद तक मर मिटने को तैयार गाते हुए निकल पड़ते थे जोश ए जज्बे के साथ–

'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा झंडा ऊँचा रहे हमारा
सदा शक्ति बरसाने वाला वीरों को हरषाने वाला
मातृभूमि का तन मन सारा-इसकी शान न जाने पाए
चाहे जान भले ही जाएविश्व विजय करके दिखलाए
तब हो गए प्रण पूर्ण हमारा झंडा ऊँचा रहे हमारा।'

सन् 1931 में श्री कृष्ण पहलवान ने कई क्रांतिकारी गीत लिखे जिसे वे कागज पर लिख-लिख कर गाँव-गाँव अपने मित्रों को पहुँचा करते थे और उत्साही युवकों की टोलियाँ अपनी धुनों में गाया करती थी –

'हम देश के कुनबा हैं हम देश के शैदाई
आजाद हो रहेंगे आजादी पसंद आई
परतंत्रता मिटे तब हिलमिल के जब रहे सब
हर सब्ज देगा उस दिन हिंदे चमन दिखाई।'

और इस गीत के मुखड़े की लाजवाब रवानी तो देखिए जो अलीगढ़ के मिरासी बुद्धि मास्टर का लिखा है जिसे वह घूम-घूम कर झूम-झूम कर गाया करते थे –

'रंग लाएगी हिना पत्थर पर पिस जाने के बाद'

जेल जाने के लिए हर वक्त अपना बिस्तर बोरिया तैयार रखते थे। गाँधी जी की सभा में गीत गाया करते थे –

'देश का एक सच्चा सिपाही हूँ मैं
यार फर्ज वतन की निभा दूँगा मैं
खिदमते मुल्क में मुस्कुराते हुए
कह के जय हिंद सर को कटा दूँगा मैं।'

उस समय के अत्यंत लोकप्रिय गीत जिन्हें एक प्रमुख व्यक्ति पहले गाता था और बाकी लोग उसे दोहराते चलते थे-

'रणभेरी बज चुकी वीरवर पहनो केसरिया बाना -
हे भारत वीरों ऋषियों की प्यारी संतान
स्वतंत्रता के महासमर में हो जाओ सहर्ष बलिदान
धर्म युद्ध में मरना भी है अमर स्वर्ग पद को पाना
रणभेरी बज चुकी वीरवर पहनो केसरिया बाना।'

देश की स्वतंत्रता की बलिवेदी पर शहीद होते शहीद संदेश छोड़ जाते थे।

जो इन गीतों में गूँजते और जोश बढ़ाते थे-

'दिन खून का हमारे प्यारो न भूल जाना
खुशियों में अपनी हम पर आँसू बहते जाना
गोली को खाकर सोये जलियाने बाग में हम
सूनी पड़ी कवर पर
दीपक जलाते जाना।'

ब्रिटिश सरकार के खिलाफ बहिष्कार और तिरस्कार करते ओजपूर्ण गीत गाए जाते थे-

'नहीं रखनी सरकार जालिम नहीं रखनी'

इन गीतों में जहाँ जोश, उत्साह, समर्पण है वहीं प्रतिज्ञा भी है-

'भारत न रह सकेगा हरगिज गुलाम खाना
आजाद होगा होगा आया है यह जमाना
चलाओ गन मशीनें ऐलान जल्द कर दो
एक खेल हो गया है फाँसी पर झूल जाना।'

भारत का बच्चा-बच्चा स्वतंत्रता की खातिर जेल जाने और सर कटाने को तैयार था। वर्तमान पीढ़ी को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि आजादी ऐसे नहीं आई –

'भारत के हम हैं बच्चे भारत वतन हमारा
भारत के वास्ते है मंजूर सर कटाना
घर बार छोड़ के जाएँगे जेल खाना
आजाद होंगे होंगे आया है अब जमाना।'

सर पर कफ़न बाँधे टोलियाँ गीत गाते उत्साही स्वतंत्रता के मस्ताने निकल पड़ते थे जुलूस में /प्रभात फेरियों में-

'सर पर बाँधे कफनिया हो शहीदों की टोली निकली
हम गरीबों के गले का हर वंदे मातरम्।'

हाथों में तिरंगा लिए प्रात: काल प्रभात फेरी में नगर भ्रमण करते अपना आक्रोश और जुनून इन गीतों में प्रकट करते जाते थे –

'डाकू चोर गिरहकट जालिम छली लुटेरा आवारे
बदपिल्ले लोटे चश्म हरामी रहजन जालिम गद्दारे
तुम्ही हिंद में बन सौदागर आए थे टुकड़े खाने
लगा फूट का पेड़ हिंद में और अग्नि को बरसाने।'

और यह भी कि

'चरखा चला चला के हम स्वराज लेंगे-'

आज न गाँधी है न गाँधी का चरखा-हम सुराज पा चुके हैं। स्वराज पाने में स्वतंत्रता के इन गीतों का बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

17 नवंबर सन 1921 को ब्रिटिश शासन के युवराज के भारत भ्रमण की घोषणा की गई। इस अवसर पर रोष व्यक्त करने वृहद जुलूस निकाला गया था। विरोध प्रदर्शन पर देश में गिरफ्तारियाँ की गई। जंगी हड़ताल शुरू हुई। इस अवसर पर लोगों द्वारा गीत गाए गए-

'हड़ताल हो गजब की सरकार दंग हो
सूना बिना प्रजा के दरबार भंग हो
मेहमान भी समझ ले सूना है रंग सब
ब्यूराक्रिसी से हमने छेड़ा है जंग अब।'

इन गीतों में आजादी के लिए मर मिटने की अपील थी। इन गीतों को आजादी की लड़ाई के अमर दस्तावेजों के रूप में सुरक्षित रखा जाना चाहिए था।

यह गीत केवल जुवानों में ही कैद होकर रह गए कुछ चर्चित गीतों को छोड़कर।
अब कहाँ है वे आजादी के गीत!

अब सरफरोशी की तमन्ना कहाँ रह गई है? उपभोक्तावादी संस्कृति में यह उत्साह, यह राष्ट्र प्रेम कहाँ देखने मिलता है?
हमने खो दिया है इन गीतों को।

1932 से 1940 का समय देशभक्ति के गीतों का समय था। हर प्रदेश का अपना एक राष्ट्र कवि होता था। वह अपना राष्ट्रगीत अपने अभिन्न मित्र के माध्यम से अपना नाम न लिखते हुए सभी को एक पर्ची में लिखकर बँटवा देता था जिसे उत्साही युवक अपनी-अपनी धुनों में गाते थे। कागज के टुकड़े पर गीत की पहली प्रति होती थी उसे नष्ट कर दिया जाता था। बाद में जब यह गीत याद हो जाते थे तो पर्चियाँ भी नष्ट कर दी जाती थीं। इसलिए यह राष्ट्रगीत हमारी पहुँच से बाहर हैं। आजादी के इन गीतों की मौखिक परंपरा को अब हम कैसे जिंदा बचा सकते हैं?

दरअसल, इन मौखिक गीतों को कई वर्ष पूर्व बचाया जा सकता था। लेकिन अब भी कोई देर नहीं हुई है। आजादी के इन गीतों को ढूँढ़ने और संकलित करने में प्रकाशन विभाग, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास तथा कुछ निजी प्रकाशनों ने सराहनीय कार्य किए हैं। किंतु यह बहुत कम हैं।

हम इन गीतों को ज़हन में रखते हुए स्वतंत्रता का जश्न मनाए। इन गीतों की अहमियत समझते हुए हम इन गीतों को सहेजें। क्योंकि गीतों की ताकत तलवारों से अधिक है यह स्वतंत्रता के दीवाने ही जान सकते हैं।

वर्तमान दौर में प्रत्येक नागरिक के मन में इन गीतों के प्रति आदर और समर्पण का भाव होगा तो देश के प्रति भी समर्पण जागेगा।

सी-1-101, इंडियन आयल
हाउसिंग कॉम्प्लैक्स
दुर्गापुर पश्चिम-713201 (बंगाल)
मो. - 9424914474

उत्तर क्षेत्रीय युवा लेखक सम्मिलन

सुमिरि सीय नारद वचन

- चंदन कुमारी

जन्म – 4 मार्च 1982।
शिक्षा – एम.फिल., पीएच.डी.।
रचनाएँ – छः पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – मानस संगम साहित्य सम्मान।

'पुष्पवाटिका प्रसंग' मानस का मधुरतम प्रसंग है और श्री सीताराम के जीवन का भी यह सबसे मधुर प्रसंग है। राम स्वरूप के लीलावतार में ब्रह्म और उनकी माया का मनुज रूप में परस्पर प्रथम दर्शन जनकराज की पुष्पवाटिका में हो रहा है। इस पावन प्रेमपूरित बेला की साक्षी जनकपुर की धरती है, वह मनोहर उपवन है, उस उपवन का वह सरोवर है जिसमें अमृतमय कंचन जल कल-कल कर बह रहा है। भाँति-भाँति के खग हैं, विहग हैं और उनके कलरवों से पटा पड़ा आकाश है; सीता की सखियाँ हैं और श्रीराम के अनुज 'लक्ष्मण' हैं। पंचभूतों में से चार भूतों की उपस्थिति में उदीयमान सूर्य भी इस दिव्य और मनोरम पल के साक्षी हैं। क्षिति, जल, गगन और समीर उपस्थित हैं पर प्रेमोदय के इस पल में पावक को कवि ने अनुपस्थित रखा है। यह पावक परिणय-सूत्र बंधन के समय विवाह-मंडप में उपस्थित होता है।

परिणय से पूर्व किशोर हृदय में उपजे उसी पुरातन प्रेम की गाथा और मंगलमय उछाह के अवसरों को आज दुहराया जाना है। श्रीराम और जग-जननी सीता का फुलवारी में प्रवेश होता है। फुलवारी में प्रवेश का समय एक है पर दोनों के मार्ग अलग हैं और उद्देश्य भी अलग है। उनके मार्गों के मध्य में लताभवन की ओट है। श्रीराम मुनि की पूजा-वंदना के लिए फूल लेने आए हैं और माता सीता गिरिजा पूजन के लिए वहाँ आई हैं। उस उपवन की सुंदरता नयनाभिराम राम को भी आराम दे रही है। उन्हें आनंदित कर रही है। तुलसीदास के शब्दों में-

'बागु तड़ागु बिलोकी प्रभु हरषे बंधु समेत।
परम रम्य आरामु यह जो रामहि सुख देत।।'

श्रीराम उस फुलवारी के माली से पूछकर फूल चुनने लगते हैं। यहाँ तुलसीदास ने जीवन में अनुशासन की प्रतिष्ठा कराई है जिसके तहत एक राजपुत्र भी माली से अनुमति लेता है। वह फुलवारी माली का कार्यक्षेत्र है। वही उसकी सँभार करता है। भले ही वह साधारण नागरिक है पर उसके कार्यक्षेत्र में श्रीराम अनधिकार कुचेष्टा न करते हुए बड़ी विनम्रता से फूल चुनने की अनुमति माँगते हैं और अनुमति मिलने के बाद ही फूल चुनना प्रारंभ करते हैं। इस अनुशासित आचरण से दो और बातें निकलती हैं-हर मनुष्य की अपनी गरिमा होती है और हर काम प्रधान है। अर्थात् मनुष्य और उसके उचित कर्म को कोई किसी से कमतर नहीं आँक सकता है।

उधर दूसरी ओर माता सीता 'गिरिजा भवन' में माँ पार्वती की प्रेमपूर्वक पूजा करके अपने अनुरूप वर प्राप्ति की प्रार्थना करती हैं।

'पूजा कीन्हीं अधिक अनुरागा। निज अनुरूप सुभग वर माँगा।।'

इस मुख्य कथा के साथ ही यहाँ कुछ अंतरकथाएँ भी हैं जिन्हें कुछ शब्दों में सांकेतिक रूप से कवि ने उभारा है-गंगा अवतरण की कथा-इस कथा को मुनि विश्वामित्र श्रीराम-लक्ष्मण को सुनाते हैं। इसका उल्लेख तुलसीदास निम्न शब्दों में करते हैं-

'गाधिसुनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई।।'

अहल्या उद्धार की कथा-

'गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसे पग पानी।
मन विहँसे रघुवंशमणि प्रीति अलौकिक जानी।।'

सीता के प्रति नारद वचन-पुष्पवाटिका प्रसंग के अंतर्गत 'सीता के प्रति नारद वचन' को इस खंड का बीज अंतरकथा कहा जा सकता है। इस 'नारद वचन' का उल्लेख इस विषय खंड में ही दो बार आया है-

1. सुमिरि सीय नारद बचन। उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि। जनु सिसु मृगी सभीत।।
2. सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मनकामना तुम्हारी।।
नारद वचन सदा सुचि साचा। सो बरु मिलिहिं जाहिं मनु राचा।।
मनु जाहिं राचेउ मिलिहि सो बरु सहज सुंदर साँवरो।
करुनानिधान सुजान सीलु सनेहु जानत रावरो।।

आज के विषय से थोड़ा पीछे जाकर मानस का अनुशीलन करें तो एक प्रसंग मिलता है 'नारद अभिमान और मोह' से संबंधित। आइए, उस प्रसंग का अवलोकन करते हैं-

निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। / भयउ रमापति पद अनुरागा।।
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। / सहज बिमल मन लागि समाधि।।

साधना के अनुकूल शांत और मनोरम स्थल देखकर नारद तपलीन हो गए। उनके प्रचंड तप को देखकर इंद्र को भय हुआ कि मुनिवर इंद्रलोक की प्राप्ति हेतु तप कर रहे हैं। उन्होंने कामदेव को तप भंग

करने के उद्देश्य से वहाँ भेजा। कामदेव अपने प्रयत्न में पराजित हुआ। काम हार गया और मुनि का तप जीत गया। वैसे इंद्र की आशंका भी निर्मूल ही थी।

काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। / निज भयँ डरेउ मनोभव पापी।।
सीम कि चाँपि सकइ कोउ तासू। / बढ़ रखवार रमापति जासू।।

उसका कोई क्या बिगाड़ सकेगा जिसकी रक्षा स्वयं रमापति करते हों! मुनि का तप निर्विघ्न समाप्त हुआ। इसके पीछे अपने इष्ट की कृपा न समझ कर मुनि को स्वयं के अपने तपबल का अभिमान हो गया। अब वे सबके सामने अपने तपबल का बखान करने लगे। प्रभु ने अपने भक्त को अभिमानरहित करने हेतु एक लीला रची। उन्होंने एक मायानगरी का निर्माण किया जिसका राजा सीलनिधि था। उसकी एक कन्या थी जिसका नाम था विश्वमोहिनी। सुलक्षणा और सुरूपा! इस कन्या का स्वयंवर होना था। नारद मुनि घूमते हुए उस नगर में पहुँचे। उन्होंने कन्या को देखा एवं उसके रूप और गुण को देखकर उसपर मोहित हो गए। कन्या के सारे गुणों को अपने मन में रखकर; उसके पिता को कुछ लक्षण मुनि ने बता दिए। और स्वयं चल दिए श्रीहरि के पास सुंदर रूप माँगने के लिए ताकि कन्या उन्हें ही वरे। श्रीहरि ने उन्हें रूप दे दिया। स्वयंवर के दिन श्रीहरि स्वयं भी मनुष्य रूप में वहाँ उपस्थित थे। कन्या ने इन्हें ही अपना वर चुना।

'धरि नृपतनु तहाँ गयउ कृपाला। कुँवरि हरषि मेलेउ जयमाला।।
दुलहिनि लैगे लच्छिनिवासा। नृप समाज सब भयउ निराशा।।'

इधर नारद के रूप को देखकर शिव के गणों ने उनका उपहास कर दिया। उनके उपहास से क्रोधित होकर मुनि ने उन्हें तो शाप दिया ही; साथ ही अपना चेहरा देखने के बाद श्रीहरि को भी शाप दिया।

'बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा।।
कपि आकृति तुम्ह कीन्ह हमारी। करिहहि कीस सहाय तुम्हारी।।
मम अपकार कीन्ह तुम्ह भारी। नारी बिरहँ तुम होब दुखारी।।
जब हरिमाया दूरि निवारि नहिं तहाँ रमा न राजकुमारी।
तब मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना।।'

नारद मुनि ने प्रभु को मनुष्य रूप में जन्म लेने का श्राप दिया साथ ही विरही होने का भी। विरह से पहले यदि मिलन होगा तभी तो आगे विरह की संभावना बनेगी। यानी मिलन की अनिवार्यता का संदेश यहाँ से भी प्राप्त हो रहा है–एक बात यह है। दूसरी बात है कि प्रभु ने कश्यप–अदिति और गोतनुधारी पृथ्वी से भी यह कहा था कि उनका भय–हरण करने के लिए परम शक्ति के साथ अवतार लेंगे। माता सीता के मन में जिस 'नारद वचन' को याद करके प्रीति उपजी है उस वचन का मूल स्वरूप कुछ और है।

यह 'नारद वचन' अध्यात्म रामायण में अति संक्षिप्त रूप में तथा श्रीरामप्रियाशरण कृत 'सीतायण' में बहुत विस्तार के साथ दिया गया है। अध्यात्म रामायण बालकांड सर्ग 6 श्लोक 61–67 में यह कथा वर्णित है। उनमें से कुछ श्लोक इस प्रकार हैं–

'परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रहकाम्यया।
देवकार्यार्थं सिद्ध्यर्थं रावणस्य वधाय च।।63।।
जातो राम इति ख्यातो मायामानुष वेष धृक्।
आस्ते दाशरथिर्भूत्वा चतुर्धा परमेश्वरः।।64।।
योगमायापि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि।
अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः।।65।।
नान्येभ्यः पूर्वभार्येषा रामस्य परमात्मनः।
इत्युक्त्वा प्रययौ देवगति देवमुनिस्तदा।।66।।
तदारभ्य मया सीता विष्णोर्लक्ष्मीर्विभाव्यते।
कथं मया राघवाय दीयते जानकी शुभा।।67।।'

अर्थात् देवर्षि नारद ने कहा कि परमात्मा ऋषीकेश भक्तों पर कृपा, देवताओं की कार्य सिद्धि और रावण का वध करने के लिए माया–मानव रूप से अवतीर्ण होकर 'राम' नाम से विख्यात हुए हैं। वे परमेश्वर अपने चार अंशों से दशरथ के पुत्र होकर अयोध्या में रहते हैं। और इधर योगमाया ने तुम्हारे यहाँ सीता के रूप में जन्म लिया है। अतः तुम प्रयत्नपूर्वक इस सीता का पाणिग्रहण रघुनाथ जी के साथ ही करना और किसी से नहीं–क्योंकि यह पहले से ही परमात्मा राम की भार्या है, ऐसा कहकर देवर्षि नारद जी आकाश मार्ग से चले गए। तब से इस सीता को मैं (जनक) विष्णु भगवान की भार्या समझता हूँ। फिर यह सोचते हुए कि शुभलक्षणा जानकी को किस प्रकार रघुनाथ जी को दूँ, मैंने एक युक्ति विचारी।

राजा जनक द्वारा सोची गई वह युक्ति ही शिवधनुष भंग का विचार है। जो शिवधनुष को भंग करेगा वही त्रिलोकविजयी होगा तथा जानकी उसे ही वरेंगी। श्रीराम और सीता के पाणिग्रहण के बाद इस अंतर–कथा को राजा जनक ने गुरु वशिष्ठ और महर्षि विश्वामित्र को सुनाया। इसी नारद वचन को 'सीतायण' में सीता–जन्म के बाद उनका गुण–दोष परखते हुए नारद मुनि कहते हैं –

'रेख लखे समुझे बहुरि, अस मोहि भासत राव।
ई सीता हैं राम की, प्यारी मधुर सुभाव।।8।।
इनको रूप अनूप है, जैसे राम अनूप।
तातें निश्चै होत हों, रामबल्लभा रूप।।9।।
रेखा के फल समुझेऊँ, अरु मेरो सब जान।
तातें दृढ़ करि कहत हों, समुझहु नृप निज ज्ञान।।10।।
प्रकृति लोक तापर लसत, दिव्य लोक छबि ऐन।
तापर है अति दिब्य पुर, जेहि लषि लज्जित मैन।।11।।
तापर है गोलोक शुभ, ता बिच शुभ साकेत।
नव रँग मणिमय धाम महि, इनकी लीला हेत।।12।।
सो मायिक जनि बूझहू, सतचित आनंद धाम।
तहँ राम किसोर के संग में, राजति अमल अनूप।।13।।
सोई सीता सब योग–फल, प्रगट भई हैं आय।
तातें दंपति देषहू, अद्भुत छबि दरशाय।।14।।
अस कहि सिय मुखचंद मैं, लागी प्रगट समाध।

तेहि क्षण सकल विदेह हैं, लगी समाध अगाध।।15।।'

यहाँ विविध प्रकार से नारद मुनि ने माता सीता को श्रीराम की प्यारी बताया है। बड़ी दृढ़ता के साथ नारद मुनि यहाँ अपनी बात को रख रहे हैं। उसका कारण है कि जब अयोध्या में श्रीराम का जन्म हुआ था उस समय भी ये वहाँ बालक के गुणों को देखने के लिए गए थे। इस संदर्भ को राजा जनक से बताते हुए नारद मुनि इससे आगे की बात कहते हैं–

'तहँ हम रेखा देखेऊँ, राम लला के पाय।
सोइ सब रेखा सिया के, चरण-कमल दरसाय।।20।।
जो रघुबर के दाहिनें सोइ है इनके बाम।
जो इनके है दाहिनें, वाम राम सोइ नाम।।21।।
अस मैं लषि आयऊँ तहँ, पुनि इहऊँ लषि लीन।
तातें अपने चित्त में, सब बिधि निश्चै कीन्ह।।22।।
जो अनादि परब्रह्म हैं, सत चित आनंद रूप।
सोई किशोरि किशोर तन, स्यामल गौर अनूप।।23।।
सोई राम दशरथ तनय, कौशल्या के गोद।
अरु उनकी ई बल्लभा, तव गृहि करत विनोद।।25।।
ताते मैं पहिले कहे, उनको ब्याह उदार।
होवेगी रघुवंश में, अंक को इहे विचार।।26।।'

भारतीय संस्कृति में शिशु के जन्म के बाद ब्राह्मणों से उसके गुण-दोष दिखाए जाते हैं। यहाँ मिथिला में माता सीता का प्राकट्य हुआ है। माता सुनयना और महाराज जनक नारद मुनि से अपनी पुत्री की रेखाओं और चिह्नों को गुनने के लिए कहते हैं। एक-एक रेखा एवं चिह्न के साथ उसके गुणों का विस्तृत विवरण 'सीतायण' में आप देख सकते हैं। 'सीता राम की ही भार्या हैं और इनका विवाह रघुवंश में श्रीराम से ही होगा।' यही वह नारद वचन है जिसे याद करके माता सीता के मन में प्रीति उपजी। इसकी सत्यता का आशीष उन्होंने गौरी पूजन करके पहले ही पा लिया था। गौरी का आशीर्वाद पाकर पुलकित मन से घर जाने से पहले वे तुलसी पूजन भी करती हैं। भारतीय संस्कृति में तुलसी घर और मंदिर के साथ जीवन का भी अहम् हिस्सा है। यहाँ एक संकेत है कि अभीष्ट की प्राप्ति के पश्चात् उन्माद में आँखें मूँदकर नहीं वरन् आँख पूरी तरह से खोलकर ही चलें ताकि पास की चीजें साफ-साफ दिखें और उनकी योग्य सेवा होती रहे। ब्रह्म लीला रचते ही इसलिए हैं कि साधुजनों का उद्धार हो और मनुष्य अपनी मर्यादा से पतित होकर भ्रष्ट आचरण न करे। जीवन का एक सुपथ प्रशस्त करना भी इस लीलाभाव का उद्देश्य रहता है। इस पूजन से पूर्व जब ब्रह्म रूपी राम और योगमाया सीता का मिलन होता है। हालाँकि ये अविभक्त हैं पर लीलावपुधारी भी हैं। उस समय इनके मिलन का कारण बनी वह सखी जो गौरी पूजन करती हुई सीता का साथ छोड़कर बाढ़ देखने गई हैं। राम-लखन की मनोहर जोड़ी को देखकर वह दौड़ी आती है और सीता तथा सखियों से कहती है–

'स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी।
सुनी हरषीं सब सखीं सयानी। सियँ हियँ अति उत्कंठा जानी।
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि संग आए काली।।
जिन्ह निज रूप मोहिनी डारी। कीन्हें स्वबस नगर नर नारी।।
बरनत छवि जहँ-तहँ सब लोगू। अवसि देखिहिं देखन जोगू।
तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने।।
चलि अग्र करि प्रिय सखी सोई। प्रीति पुरातन लखई न कोई।।'

सीता के हृदय में छिपे पुरातन प्रेम को उनकी सखियाँ भी नहीं भाँप सकीं। धरती पर लीला हेतु अवतरित हुए ब्रह्म और माया का मनुष्य रूप में राजा जनक की पुष्पवाटिका में यह प्रथम मिलन है। कितना अद्भुत दृश्य है जो सदा एक हैं और जिनकी पहचान सदियों पुरानी है; वे ही आज अलग-अलग खड़े होकर, बहुत दूर से एक-दूसरे को देखकर अपने नयनों को परस्पर शीतल कर रहे हैं। इस शाश्वत प्रेम की गहराई, इसकी संवेदनात्मक तीव्रता को कितनी दूर तक कोई आँक सकता है? 'गीतावली' में तुलसीदास ने लिखा है–

'राघौजू श्री जानकी लोचन मिलिबे को मोद/ कहिबे को जोगु न, मैं बातैं-सी बनाई है।
स्वामी, सीय, सखिन्ह, लषन तुलसी को तैसो, / तैसो मन भयो जाकी जैसिये सगाई है।'

प्रेम अनिर्वचनीय है। यह निर्मल सूर्य की भाँति तिमिरनाशक और जीवन में आशा का संचार करनेवाला है। यह प्रेम पुष्पवाटिका में ब्रह्म और उनकी शक्ति के मध्य; उनके मनुज स्वरूप में उदित होने को है। बस एक लता की ओट सीता-राम के मध्य अवरोध रूप में अवस्थित है। इस अवरोध का निवारण सीता की स्नेहिल सखियाँ करती हैं और उन्हें लता की ओट में खड़े श्रीराम का दर्शन कराती हैं–

'लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए।।
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचानें।।
थकें नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरिं निमेषें।
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।'

चर्म दृष्टि से दोनों एक-दूसरे को अपलक निहार रहे हैं और आत्म दृष्टि परस्पर संवाद कर रही है। होंठों की मुस्कान सीमित है। रोम-रोम हर्षित है। और अंग-प्रत्यंग प्रेम की असीमता का भार धारे शिथिल पड़ रहे हैं। थकित हो रहे हैं। श्रीराम की छवि को अपने हृदय में धारण करके माता सीता अपने पलकों को मूँद लेती हैं–

'लोचन मग रामहिं उर आनी। दीन्हें पलक कपाट सयानी।।'

सीता की सखियाँ उन्हें परबस होता जानकर कहती हैं– कल फिर हम सब इसी समय यहाँ आएँगे, अभी विलंब हो रहा है। विलंब से घर जाने में माता का भय है। कुमारियों के मन में माता का भय मानने की वृत्ति वस्तुत: उनके मन में यह माता के प्रति आदरसूचक भाव प्रतीत होता है। भारतीय संस्कृति में बड़ों की बात मानने की पुरानी परंपरा है। इधर श्रीराम ने भी जब सीता के कंकण और पायल की आवाज सुनि तो उनका मन भी विस्मित हुआ। उनकी दशा देखें–

'कंकन किंकिनि नुपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन राम हृदय गुनि।।
मानहुँ मदन दुदुंभी दीन्हीं। मनसा बिस्व विजय कहँ कीन्हीं।।
अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।

भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल।।'

इस प्रकार सीता के स्वरूप को हृदय में विचारकर वे लक्ष्मण को उनका परिचय देते हुए कहते हैं–

'तात जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई।।
गिरिजा पूजन जननी पठाई। करत प्रकासु फिरइ फुलवाइ।।'

और पुन: अपने मन में सीता के प्रति आए विचारों पर वे लक्ष्मण के साथ मंथन करने लगते हैं–

'रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथ पगु धरइ न काऊ।।
मोहि अतिशय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारी न हेरी।।
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पीठी। नहिं पावहिं परतिय मनु दीठी।।
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नर बर थोड़े जग माहीं।।'

तुलसीदास ने यहाँ प्रेम को केंद्र बिंदु बनाकर, शील और मर्यादा का ही वृत्त खींचा है। अपना प्रेमास्पद जानकर-पहचान कर भी ललक कर उसे लोकने की प्रवृत्ति न राम में है, न सीता में। धीरज, संयम और लोकमर्यादा के सानिध्य में यह प्रेमांकुरण एक-दूजे के हृदय में अवतरित होने तक सीमित है। दोनों के शांत चित्त में उनके प्रीत की प्रगाढ़ता और प्रगाढ़ हो रही है। प्रेम का संचरण कराकर गोस्वामी तुलसीदास ने यहाँ चारित्रिक दृढ़ता को प्रतिष्ठापित किया है।

यह पुष्पवाटिका प्रसंग जिसमें सीता-राम का प्रथम दर्शन भी वर्णित है; इसे तुलसीदास ने प्रसन्नराघव नाटक से लिया है। जिस लता-ओट को हटाकर सखियों ने उनका नयन-मिलन करवाया; उसका वर्णन चित्रविज्ञान के आधार पर पं. सीताराम चतुर्वेदी ने बहुत सुंदर शब्दों में किया है। उनके अनुसार 'लताभवन से दो चाँद निष्कलंक एक साथ प्रकट हुए। बादल उनपर तभी तक छाए रह सकते हैं जब तक वे चाहें और जब प्रकट होना चाहें प्रकट हो जाते हैं। अत: लतामंडप की लताओं को हटाकर ज्योंही राम और लक्ष्मण ने उन्हें छोड़ा त्योंही वे उनके पीछे गहरे नीले बादल के समान गहरे नीले रंग की चादर बनकर ऐसे लटक गई कि आगे राम और लक्ष्मण का सुंदर रूप और भी सुंदर बनकर निखर आया...लतामंडप की हरितिमा और आकाश की नीलिमा में उभरे चंद्रस्वरूप ये राम-लक्ष्मण अतीव सुंदर जान पड़ रहे थे।'

लताभवन ते प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलध-पटल बिलगाइ।।

लक्ष्मण गोरे वर्ण के हैं पर श्रीराम का रंग नीले आकाश की भाँति श्यामल है या जो नीलकमल, दूर्वादल या नवघन के समान साँवले हैं; उन लक्ष्मण रूपी गोरे और श्रीराम रूपी साँवले रंग के चाँद के उदित होते ही सारा अंधकार हट जाता है। साँवले रंग की इस दिव्य प्रतिभा को बिहारी ने भी उकेरा है, देखिए-'**या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय। ज्यों-ज्यों बूढ़े श्याम रंग, त्यों-त्यों उज्वल होय।।'**

जिस साँवले रंग में डूबनेवाला उज्ज्वल हो जाता है वह रंग स्वयं कितना उज्ज्वल होगा। साँवले की इस उज्ज्वलता को वही देख पाता है जिसका चित्त उस साँवरे के प्रति अनुराग से परिपूर्ण हो और वही उसे हृदय की आँखों से देख पाने में सक्षम होगा। और उसे ही उस दिव्य उज्ज्वलता का दर्शन होगा। साँवलेपन की जगह एक दिव्य, अखंड और अपरिमित प्रकाश चतुर्दिक दिखाई देगा। इसका दर्शन जनक ने किया, मिथिलावासियों ने किया, सीता और उनकी सखियों ने किया तथा रंगभूमि में उपस्थित सभी सहृदय राजाओं ने किया। रंगभूमि में केवल सहृदय राजाओं ने ही उनकी उज्ज्वलता को परसा; उपस्थित तो वहाँ बहुतेरे थे।

श्रीराम का रंगभूमि में प्रवेश होता है। वहाँ सभी अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप उनकी छवि का दर्शन करते हैं। राजाओं को वे ऐसे दिखे मानो साक्षात् वीर-रस हों, कपटी राजाओं को वे भयानक काल की तरह दिखाई दिए। स्त्रियों को वे शृंगार रस की तरह मधुर और मनभावन लगे। विद्वानों ने उन्हें विराट स्वरूप में देखा। माता सीता ने उन्हें जिस भाव से देखा वह स्नेह और सुख तो वर्णनों से परे है–

'रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहि कथनीया।।'

उनकी माता सुनयना बड़े असमंजस से सुकुमार राम को देखती हैं और कहती हैं-'ये बालक असि हठि भल नाहीं।' सभा में उपस्थित लोगों के असमंजस का भी बहुत सुंदर चित्र तुलसीदास ने खींचा है– पहली बात है कि सभी चाहते हैं कि सीता-राम का विवाह हो जाए। इसी नाते ये यहाँ आएँगे और मिथिलावासियों को उनका दर्शन मिलेगा। यहाँ असमंजस यह है कि यह तभी होगा जब हमारे पुण्य बहुत हों। दूसरा असमंजस यह है कि शिवधनुष बहुत कठोर है और ये अत्यंत सुकोमल। जिस धनुष को बड़े-बड़े राजा-महाराजा और बलशाली पुरुष तिल भर भी न हिला सके भला उस धनुष को ये बालक क्या तोड़ सकेंगे? इन असमंजसों का निपटारा सीता जी की सखी की निम्नोक्त वाणी में है –

'परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी।।
सो कि रहिहि बिनु सिव धनु तोरे। यह प्रतीति परिहरिअ न भोरे।।
जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी।
तासु बचन सुनि सब हरषानीं। ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी।।'

उन सबकी इच्छा के अनुरूप ही राम द्वारा धनुर्भंग के साथ ही सियाराम का विवाह हो गया। अतुलितबलधाम राम के साथ अतुलनीय शक्ति सीता शोभित हो रही हैं।

C/o Mr. Sanjeev Kumar, I.F.A.
HQ wv CORPS, Sultania Infantry Lines,
PO- SI Lines, BHOPAL 462001 (M.P)
M.: 8210915046

यशोधरा का काव्य वैभव

- अजीत कुमार पुरी

जन्म स्थान - गोरखपुर (उ.प्र.)।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ - एक पुस्तक प्रकाशित।

'साकेत' के अनंतर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की रचना तूलिका से निसृत 'यशोधरा'अपने युग की महत्त्वपूर्ण कलाकृति है। यह उपेक्षित उर्मिला के चरित्र को हिंदी साहित्य में प्रतिष्ठित करने वाले महाकवि की विस्मृता यशोधरा के चरित्रनिर्माण में उनकी कलाकांक्षा का प्रतिफलन कही जा सकती है। इस काव्य रचना में गद्य-पद्य, दृश्य-काव्य, प्रगीत-प्रबंध सभी का सहज समावेश हुआ है। यशोधरा में घटना तत्व को वर्ण्य न बनाकर भावों को वर्ण्य बनाया गया है। आख्यानात्मकता के स्थान पर चरित्र सृष्टि को महत्व दिया गया है। कहा जा सकता है कि 'यशोधरा' की सृष्टि करके गुप्त जी ने उपेक्षितय शोधरा को पाठकों की दृष्टि में लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। अपने प्रसिद्ध महाकाव्य 'साकेत' में गुप्त जी ने चर्चित उपेक्षिता उर्मिला को वाणी प्रदान की है। वहीं से प्रेरणा लेकर गुप्त जी ने विस्मृता यशोधरा के उदार व्यक्तित्व को भी अभिव्यक्ति दी है। यशोधरा के चरित्र निर्माण की ओर कवि की विशेष रुचि है। इस काव्य में यशोधरा के हृदयगत भावों की विविध छंदों एवं काव्य शैलियों में अभिव्यक्ति प्रदान की गई है।

यशोधरा की कथा प्रख्यात है। विशेषत: 'यशोधरा' के पूर्वांश में महात्मा बुद्ध से संबंधित महाभिनिष्क्रमण आदि के प्रसंग, परंतु 'यशोधरा' कवि की युगानुकूल मंजुल नवीन कल्पना है। यशोधरा के मन में उड़ती हुई भाव तरंगों की अभिव्यंजना के लिए कवि ने मौलिक प्रसंगोद्भावनाएँ भी की हैं। कवि की ये रमणीय कल्पनाएँ इतिहास का विरोध नहीं करतीं और संपूर्ण कथा ऐतिहासिक सी ही प्रतीत होती है। यशोधरा की कथा बीस शीर्षकों में विभाजित है। 'मंगलाचरण', 'महाभिनिष्क्रमण' एवं 'संधान' के अतिरिक्त शीर्षक काव्य के पात्रों के नामों के अनुरूप हैं। यथा-सिद्धार्थ, यशोधरा, शुद्धोधन आदि मंगलाचरण में कवि, राम और बुद्ध की वंदना करता है। वह मुक्ति की अपेक्षा भक्ति की याचना करता है। सिद्धार्थ और महाभिनिष्क्रमण शीर्षकों के अंतर्गत कथावस्तु गीतिबद्ध एवं गौतम बुद्ध की आत्माभिव्यक्ति के रूप में है। संसार के प्रति गौतम की विरक्ति की भावनाएँ यहाँ सुंदर रूप में प्रस्तुत की गई हैं। 'यशोधरा', 'नंद', 'महाप्रजावती', 'शुद्धोधन', 'पुरजन' में गीतों एवं मुक्तकों के रूप में सिद्धार्थ के गृह त्याग से संबद्ध विभिन्न पात्रों की प्रतिक्रियाएँ बहुत ही मार्मिक रूप में प्रकट हुई हैं। 'छंदक' में गौतम के त्याग एवं यशोधरा के तापसी वेश धारण की कथा है। यशोधरा के आत्मोद्गारों में नायिका की विरह वेदना व्यंजित है तथा 'राहुल-जननी' में वात्सल्य के उद्रेक हैं। 'बुद्धदेव' से यशोधरा की कथा की पर समाप्ति है। यहाँ यशोधरा की प्रेम सफलता का वर्णन है। 'यशोधरा' के वस्तु विधान की जहाँ तक बात है तो इसे प्रबंधात्मक काव्य कहा जा सकता है, जिसमें गीत और नाटक के तत्वों का आनुपातिक मिश्रण भी हुआ है। नायिका के अंतर में चलने वाले द्वंद्व को प्रकट करने के लिए प्रचुर मात्रा में स्वगत कथनों का भी निर्माण किया गया है। प्रख्यात आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी मानते हैं कि इसकी 'भावव्यंजना प्राय: गीतों में है।' (हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारणी सभा, काशी, संस्करण विक्रम संवत 2067, पृ.333) यशोधरा की कथा में स्थान ऐक्य एवं घटना ऐक्य का सुंदर विनियोग हुआ है। संपूर्ण कथा कपिलवस्तु के राज प्रसाद में विन्यसत हुई है। अरस्तु द्वारा निर्देशित वस्तु के तीन अंग-आदि, मध्य और अवसान के सफल निर्वाह से कथा विन्यास में सुसंगठन भी आभासित होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'यशोधरा' वस्तुत: एक भावात्मक चरित्र काव्य है, जिसमें संक्षिप्त भाव कथा है, सूक्ष्म भावनाओं प्रवाहात्मक संकलन है एवं घटनातत्व गौण है।

यशोधरा नायिका प्रधान काव्य है। गुप्त जी ने यशोधरा के चरित्र निर्माण में पर्याप्त श्रम किया है। वस्तुत: इस कृति के प्रणयन का उद्देश्य ही भी यही था। इस काव्य के अन्य पात्र हैं-राहुल, गौतम, शुद्धोधन, महाप्रजावती, नंद, छंदक, गौतमी, गंगा चित्रा और विचित्रा। ये सभी पात्र यशोधरा के चरित्र को ही स्पष्ट करने के लिए इस रचना

में गुंफित किए गए हैं। गौतम काव्य के आरंभ तथा अंत में आते हैं। आरंभ में उनके 'महाभिनिष्क्रमण' से पूर्व का चरित्र अंकन है और अंत में वे सिद्धि प्राप्त प्रचारक के रूप में आते हैं। राहुल 'यशोधरा' का महत्त्वपूर्ण पात्र हैं। यह साधारण बालक है। उसमें शिशु सुलभ गुणों के साथ-साथ वयस्कों जैसा आचरण भी है, प्रौढ़ों जैसा ज्ञान भी है। 'शिशु राहुल अपनी छाया से चकित और अपने खिलौनों की बधिरता से खिन्न होता है। पितृभक्त राहुल अपनी माँ का दुख बँटाता है। उसकी बाल कल्पना पक्षियों की भाँति उड़ने की आकांक्षा उत्पन्न करती है और किशोर-कल्पना उपमा-चयन एवं काव्य-सृजन की शक्ति है। (यशोधरा : काव्य-संदर्भ, पृ.42)पिता के प्रति उसकी अगाधश्रद्धा है। गौतम के चरणों में पढ़कर वह अनुरोध करता है –

'तात पैतृक दाय दो, निज शील सिखलाओ मुझे।
प्रणत हूं मैं इन पदों में, मार्ग दिखलाओ मुझे॥' (यशोधरा. पृ.127)

'यशोधरा' काव्य की नायिका यशोधरा है। प्रोषित यशोधरा की अंतर्व्यथा ही इसकी भाव संपदा है। 'यशोधरा' के केंद्र में यशोधरा का दिव्य चरित्र ही सबकुछ है, वास्तव में उसकी अंतर्व्यथा को गहन रुप में प्रकट करके ही राष्ट्रकवि कृतकृत्य हुए हैं। प्रभाकर श्रोत्रिय जैसे आलोचक गुप्त जी के नारी चरित्र-चित्रण में अंतर्विरोध देखते हैं जो यह मानते हैं कि 'गुप्त जी के रचना-मानस में पारंपरिक आदर्शों और मूल्यों के प्रति पूज्य भाव था। उन्होंने महापुरुषों की जो गाथाएँ अतीत में उठायी थीं उन सबके साथ कमोवेश नारी की त्रासदी जुड़ी हुई थी। वे इस विषण्ण और संत्रस्त नारी को अपनी करुणा और संवेदना तो देना चाहते थे, मगर उन चरित नायकों की कीमत पर नहीं, जो उनके नव-सांस्कृतिक जागरण के शीर्ष पुरुष थे।' **(अतीत के हंस मैथिलीशरण गुप्त, पृ.40)** ऐसे कथन हिंदी आलोचना में नए नहीं हैं, कारण कि यह स्वाभाविक है। यूरोपीय लेखकों ने नारी को लेकर जिस दृष्टिकोण का प्रचार किया उसमें यूरोपीय नारी की त्रासदी का भयावह चित्रण बहुत था। जिसकी चपेट में भारतीय लेखक भी आ गए और भारतीय साहित्य को लेकर मनमाने निष्कर्ष निकाले जाने लगे। जबकि भारतीय हिंदू नारी का आत्माभिमान, धैर्य, प्रेम, पति-समर्पण जगत विख्यात है और अन्य देशों के साहित्य में ऐसा मिल सकना बहुत दुर्लभ है। प्रो. कृष्णदत्त पालीवाल ने यशोधरा के चारित्रिक वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि-'यशोधरा अगाध विश्वासमयी, रागमयी नारी है। प्रिय यदि साधना से पिघलकर प्राणों में पल न जाएँ, तो साधना का मूल्य ही क्या? चाहे प्रतीक्षारत चर्म-चक्षु गल जाएँ, लेकिन हृदय में जिस दिव्य-मूर्ति को उसने धारण किया है, उसकी विनय में कहीं चूक न हो जाए।' **(यशोधरा : काव्य-संदर्भ, पृ.150)** इस प्रकार देखा जाए तो 'यशोधरा' में आदि से लेकर अंत तक नारी के सच्चे त्याग का आदर्श विद्यमान है। गुप्त जी ने यशोधरा के इस नारी रूप को इन पंक्तियों में अंकित किया है-

'देख कराल काल सा जिसको काँप उठे सब भय से,
गिरे प्रतिद्वन्दी नन्दार्जुन नागदत्त जिस हय से,
वह तुरंग पालित-कुरंग सानत हो गया विनय से,
क्यों न गूँजती रंगभूमि फिर उनके जय जय जय से?
निकला वहाँ कौन उन जैसा प्रबल पराक्रमकारी?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा अब है मेरी बारी।' (यशोधरा. पृ.37)

'यशोधरा' का प्रमुख रस शृंगार है, शृंगार में भी केवल विप्रलंभ। संयोग का तो केवल एकांताभाव है। क्योंकि कथा के प्रारंभ में ही गौतम के निर्वेद भाव का चित्रण है जो उनके महाभिनिष्क्रमण में परिणत हो गोपा को प्रवत्स्यपतिका बना देता है। विप्रलंभ श्रृंगार के साथ-साथ करुण, शांत एवं वात्सल्य का भी इसमें समावेश है। परंतु प्रधानता विप्रलंभ की ही है। नगेंद्र मानते हैं कि 'कवि की रस-व्यंजना का मूल आधार स्थायी भाव ही है। आधुनिक युग में विकसित मानव-चेतना की सूक्ष्म तरल विवृत्तियों से उसकी रस-सामग्री का निर्माण नहीं होता।' **(मैथिलीशरण गुप्त : युग और कविता, पृ.52)** गुप्त जी की 'यशोधरा' पर नगेंद्र का यह कथन सटीक बैठता है क्योंकि इस रचना में वे काव्य-रस का परिपाक करने में सफल हुए है तो उसमें परंपरागत रस-दृष्टि की अपनी महती भूमिका रही है। 'यशोधरा' में विप्रलंभ शृंगार उसके मध्यांश में नियोजित है। वियोग की विभिन्न अवस्थाओं, अभिलाषा, चिंता, स्मरण, गुण-कथन, उद्वेग, उन्माद, प्रलाप, व्याधि, जड़ता, मूर्छा और मरण इन सभी का न्यूनाधिक अंकन इस काव्य में प्राप्त है। परंपरागत षड्ऋतु वर्णन स्वाभाविकता के साथ अंकित हुआ है। यशोधरा के करुण विप्रलंभ का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

'जाओ नाथ! अमृत लाओ तुम, मुझ में मेरा पानी।
चेरी ही मैं बहुत तुम्हारी, मुक्ति तुम्हारी रानी।।' (यशोधरा. पृ.38)

विरहिणी यशोधरा के विरह का मानसिक-पक्ष 'मरण सुंदरबन आया री', 'प्रियतम तुम श्रुति पथ से आए', 'सखि! वे मुझसे कहकर जाते' आदि गीतों से विशेष रूप से निरूपित है।

प्रकृति चित्रण की दृष्टि से भी यशोधरा गुप्त जी के साहित्य में विशिष्ट महत्व रखती है। 'पंचवटी' की तरह से 'यशोधरा' में भी धारावाहिक रूप में प्रकृति अनायास ही चित्रित हुई है। प्रकृति सौंदर्य के विविध

रूप इसमें अंकित है। यशोधरा को सर्वत्र प्रकृति में अपना दु:ख प्रतिबिंबित मिलता है। षड्ऋतुओं का उद्दीपन रूप में वर्णन कर प्रकृति और यशोधरा की एकरूपता का वर्णन प्रशंसनीय है। जायसी की तरह अपने प्रियतम का प्रतिबिंब भी 'यशोधरा' में शरदागम में देखा जा सकता है। 'यशोधरा' तक आते-आते गुप्त जी छायावाद से प्रभावित दिख जाते हैं। 'यशोधरा' के प्रकृति वर्णन वाले अंश को देखकर इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। गुप्त जी के काव्य का मुख्य विषय प्रकृति नहीं है। उनका युग तो जागरण और सुधार काल का युग है। अत: उनके काव्य का मुख्य विषय उनके युगानुकूल रहा। इस संबंध में डॉ. वीरेंद्र कुमार बडसूवाला को उद्धृत करना समीचीन प्रतीत हो रहा है। डॉ. बडसूवाला के अनुसार 'गुप्त जी यद्यपि प्रकृति के कवि नहीं हैं, तथापि वे प्रकृति के प्रभाव से बच नहीं पाए हैं।' **(यशोधरा : काव्य-संदर्भ, पृ.132)** यशोधरा में प्रकृति अधिकतर मानवीय भाव की सहचरी बनकर उपस्थित हुई है। तथापि यशोधरा में यथातथ्य प्रकृति चित्रण विषयक कुछ खंड चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किए जा सकते हैं-

वर्ण-वर्ण के फूल खिले थे, झलमल कर हिम-बिंदु मिले थे,
गाते थे खग कल-कल स्वर से, सहसा एक हंस ऊपर से,
गिरा वृद्ध होकर खर सर से, (यशोधरा. पृ.59)

भाषा अभिव्यक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इसके बिना काव्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती। अगर रस काव्य की आत्मा है, तो भाषा को शरीर माना जा सकता है। गुप्त जी द्विवेदी युग के कवि हैं। द्विवेदी युग भाषा संस्कार का युग है। उस समय खड़ी बोली अत्यंत तीव्रता से काव्य भाषा बनने की ओर अग्रसर थी। गुप्त जी ने भी युग अनुकूल खड़ी बोली में काव्य रचना की। गुप्त जी आधुनिक काव्य-भाषा के निर्माताओं में से हैं। 'खड़ी बोली को उसके व्याकरण-सम्मत शुद्ध एवं मानक रूप में काव्य की प्रभावी माध्यम-भाषा बनाने का सर्वाधिक श्रेय उनको ही है। उन्होंने उसे एक ओर संस्कृत की तत्सम शब्दावली से आक्रांत होने से बचाया और दूसरी ओर ब्रजभाषा के रीतिभुक्त प्रयोगों से, जो काव्य का अभिन्न अंग बन चुके थे।' **(राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, पृ.54)** 'यशोधरा' में शुद्ध साहित्यिक खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है। भाषा के चारों रूप, यथा- तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी सभी 'यशोधरा' में विद्यमान हैं। फिर भी तत्सम शब्दों का बाहुल्य स्पष्ट दिखता है। यशोधरा में एक तरफ नक्र, तक्र, आर्य, प्राप्य जैसे तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है तो दूसरी ओर अंधकार, खुजलाऊँ, पहचाना, बात जैसे तद्भव भी है। रिस, तरस, गाकर, जला जैसे देशी शब्द के साथ रोग और बेदा जैसे विदेशज शब्द भी यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए हैं। 'यशोधरा' की भाषा तत्सम शब्दप्रधान, विशुद्ध संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली है। जिसमें प्रौढ़ता, ओजस्विता एवं संगीतात्मकथा पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

अलंकार योजना के दृष्टि से भी यह अधिक सरस एवं मनोहर है। प्राचीन अलंकारों के अतिरिक्त मानवीकरण, ध्वन्यार्थव्यंजना, विशेषण विपर्यय जैसे नवीन पाश्चात्य अलंकारों का प्रयोग कवि ने बहुतायत से किया है। शब्द सौष्ठव की दृष्टि से शब्दालंकारों का विशेष महत्व है। कवि ने अन्य कृतियों के समान 'यशोधरा' में भी अनुप्रास, यमक, श्लेष, वीप्सा अलंकार का उत्तम प्रयोग किया है। अनुप्रास और श्लेष का एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य है -

क) लोलुप-रसना का लोल-लास। (यशोधरा. पृ.17)
ख) प्रियतम तुम श्रुति पथ से आए। (यशोधरा. पृ.23)

विद्याव्यसनी और सभाप्रिय मैथिलीशरण गुप्त के काव्यमें उक्ति चमत्कार या वाग्विदग्धता का अभाव नहीं है। इतना अवश्य है कि वह रीतिकालीन कवियों की तरह उक्ति चमत्कार के लिए द्रविड़ प्राणायाम नहीं करता। यशोधरा की चमत्कारपूर्ण युक्तियाँ भी अधिकांश स्वत: स्वतंत्र हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है -

क) है नारीत्व मुक्ति में भी तो अहो विरक्तिबिहारी। **(यशोधरा. पृ.38)**
ख) जलने को ही स्नेह बना। **(यशोधरा. पृ.40)**
ग) जन्म-मूल मातृत्व मिटाओ, मिटे मरण चौरासी। **(यशोधरा. पृ.100)**

उपर्युक्त उक्तियों में कहीं विरोध की विचित्रता, कहीं सूक्ति की सहजता, कहीं श्लेष की सघनता, कहीं कटाक्ष की तीक्ष्णता को अत्यंत प्रभावपूर्ण ढंग से चित्रित करने में कवि सफल रहा है। शब्द शक्ति की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण गुप्त जी मुख्यतया 'अभिधा कवि' माने जाते हैं। परंतु उनकी उत्तरोत्तर रचनाओं में भाषा की समृद्धि वैदग्ध्य और वक्रता या अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्र्य का आभास भी मिलता है। यशोधरा में भी लक्षणा और व्यंजना के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण अनायास मिल जाते हैं। सांगरूपक और मानवीकरण के सभी उदाहरणों में लक्षणा का वैचित्र्य देखा जा सकता है। इस प्रकार यशोधरा की लोरी में राहुल के लिए प्रयुक्त गृह गुंजन, अंचल धन, व्यथा विनोदन, अपलक दर्शन, शिशु यौवन आदि विशेषण में भी लाक्षणिक चमत्कार है। वैसे तो लाक्षणिक प्रयोगों का प्रयोजन सदैव व्यंग्य ही होता है परंतु यहाँ शाब्दी और आर्थी व्यंजना का एक-एक उदाहरण पृथक रूप से दिया जा रहा है -

'पहले तुम हो यशोधरा के, पीछे होंगे किसी परा के।' **(यशोधरा.**

पृ.95)

'ले लो मुझको भी गोदी में' 'सुन मेरी यह बात, हँस बोले-असमर्थ हुई क्या तेरी जननी? जात!'**(यशोधरा. पृ. 67)**

पहले उदाहरण में साहचर्य से 'परा' का अर्थ है दूसरी स्त्री। पुन: व्यंजना के द्वारा उसका अर्थ पराशक्ति भी प्रकट हो जाता है। दूसरे उदाहरण में बुद्ध के वाक्य का कामवाक्षिप्त अर्थ यह है कि यशोधरा असमर्थ नहीं है। व्यंग्यार्थ यह निकलता है कि सिद्धार्थ बुद्ध भगवान हो गए हैं और उनकी मैत्री अनाथों के लिए है-'निर्बल के बलराम'। यशोधरा जैसी माँ जिसे प्राप्त हो गई हो वो अनाथ कैसे हो सकता है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सजीवता आ जाती है। इनके प्रयोग से भाषा में अर्थ गांभीर्य और सहजता की सृष्टि होती है। संदर्भ विशेष में लोकोक्ति और मुहावरे को जड़ बनाकर उसके व्यंजना का विस्तार करने में मैथिलीशरण गुप्त पारंगत हैं। यशोधरा में भी प्रसंगानुकूल लोकोक्तियाँ एवं मुहावरे का प्रयोग कवि ने खुलकर किया है। यथा -

तब है जब वे दाँत उखाड़ू, **(यशोधरा. पृ.10)**

जाओ नाथ! अमृत लाओ तुम मुझ में मेरा पानी, **(यशोधरा. पृ.38)**

काँटा बना बिछौना **(यशोधरा. पृ.68)**

गुप्त जी को अनेक शब्दों की लय सिद्धि है। उन्होंने संस्कृत के वर्णिक और हिंदी के मात्रिक छंदों का प्रयोग समान अधिकार से किया है। कवित्त, सवैया, दोहा, हरिगीतिका आदि छंदों का प्रयोग यशोधरा में कवि ने किया है। यशोधरा गीतिकाव्य के निकट है। अत: शास्त्रीय दृष्टि से शब्दों का चयन कवि को अभीष्ट नहीं है। गीतों में अनेक शब्दों के चरण का संयोजन करके लय साधा गया है।

कहा जा सकता है कि यशोधरा एक परंपरागत कथानक को नवीन परिधान में सुसज्जित कर मौलिक उद्भावनाओं से युक्त एक सफल कलाकृति है। जिसमें विविध भावों एवं रसों की योजना के साथ रसराज विप्रलंभ शृंगार का सफल परिपाक है। युगभावनाओं के अनुकूल यशोधरा के चरित्र की उदात्त प्रस्तावना समस्त नारी के गौरव का आख्यान है। अपनी मार्मिकता और सहजता के गुणों के कारण हिंदी संसार में इस कृति को अपार लोकप्रियता मिली। नंदिकशोर नवल भी मानते हैं कि 'यशोधरा' की लोकप्रियता का ही यह प्रमाण है कि इसकी असंख्य उक्तियाँ जैसे लोकोक्ति बनकर तुलसी की उक्तियों की तरह हिंदी भाषी जाति की संस्कृति में घुल गई हैं।' **(मैथिलीशरण गुप्त, पृ.252)** विचार किया जाए तो वात्सल्य वर्णन, गीति रचना जैसी कुछ दिशाओं में तो इस कृति की कलात्मक योजना आधुनिक हिंदी काव्य में एक अभिनव प्रयोग है और यह प्रयोग कहीं-कहीं साकेत से भी बेहतर है दिख जाता है।

सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-110007
मो.- 9968637345

उत्तर क्षेत्रीय युवा लेखक सम्मिलन

समकालीन हिंदी साहित्य : जीवनमूल्यों और समरसता की चुनौतियाँ

- सुनीता अवस्थी

जन्म – 13 अगस्त 1969।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ – तीन पुस्तकें प्रकाशित, कतिपय सम्पादित।
सम्मान – साहित्य सरोज सारस्वत सम्मान।

वास्तव में समरसता हिंदी साहित्य में ही नहीं समाज में भी व्याप्त होनी चाहिए। परन्तु इसके लिए लेखक, बुद्धिजीवी का संवेदनशील, ईमानदार और अपने कर्तव्य निर्वहन में निष्णात होना चाहिए। दुखद है कि ऐसा बहुत कम होता है। परिणामत: वर्ग भेद, सामाजिक असंतुलन और असहिष्णुता बढ़ती है। आवयश्कता हमें अपनी प्रतिबद्धता और राष्ट्र के प्रति कर्तव्य निभाने की है।

हम बड़े ही विचित्र मोड़ पर खड़े हैं। एक तरफ जहाँ हमारे सनातन और सामाजिक जीवन मूल्य, चुनौतियाँ और मान्यताएँ हमारे सामने हैं। वहीं दूसरी तरफ तकनीकी विकास, नई वैचारिकी, उन्नति के मानदंड, फैलता भूमंडलीकरण और उन सबके बीच खत्म होते संबंध, परिवार और रिश्ते। यहाँ यदि धर्म, संविधान, जाति आदि की बात भी जोड़ दें तो यह समय बड़ा सशक्तता, सूझबूझ और धैर्य की माँग करता है। यह माँग साहित्य और समाज से ही नहीं बल्कि सभी नागरिकों विशेषकर सुधि जनों और बुद्धिजीवियों से भी है।

लोकतंत्र की कई खासियतों में से एक यह भी है कि वह सभी को समान अवसर उपलब्ध करवाता है। परन्तु यह अलिखित करार, समझदारी हमें पता होनी चाहिए कि हर अवसर, हर मौका सभी के लिए नहीं होता। जैसे बारहवीं पास कला और विज्ञान के छात्रों की नियति और धारा अलग होती है वैसे ही आम और खास की भी। यह अलग बात है कि हर खास होने की प्रक्रिया आम, साधारण होने के रास्ते से ही गुजरती है। और यह सब एक साथ, आसपास, नजदीक ही रहते हैं। हर शहर, महानगर और कस्बे में आप इन्हें देख, पहचान सकते हैं। डाइलेक्ट तब कड़वाहट में बदल जाता है जब कोई अपनी योग्यता, मेधा, भाग्य और कठिन परिश्रम से अपनी स्थिति बदलना चाहता है। लेकिन दूसरा पूँजीवादी पक्ष बिना मेहनत के उससे अधिक लाभ ले लेता है, फिर लोकतंत्र और उसके नियम हालात सँभालते आए हैं। परन्तु कई बार यह समरसता और जीवनमूल्यों से समझौते की कीमत पर होता है।

समकालीन हिंदी साहित्य और समरसता की चुनौतियाँ :- एक लेखक, विचारक जो अपने समय पर नजर भी रखता है और जड़ों से भी जुड़ा है, वह इन सब बातों की पड़ताल गम्भीरता से करता है। साथ ही उस सौहार्द को बनाए रखने में अपना बहुमूल्य योगदान भी देता है। हिंदी साहित्य प्रारम्भ से ही समरसता और सौहार्द की बात करता है। चाहे जयशंकर प्रसाद की पुस्तक कंकाल, माधवराव सप्रे की एक टोकरी मिट्टी, प्रेमचंद के गबन, निर्मला, गोदान, सेवासदन, अज्ञेय की शेखर : एक जीवनी, जैनेन्द्र के सुनीता, त्यागपत्र, राही मासूम रजा का आधा गाँव, अमृत लाल नागर का नाच्यो बहुत गोपाल, फणीश्वरनाथ रेणु के मैला आँचल, परती परिकथा, नासिरा शर्मा के कुइयाँ जान, चन्द्रकान्ता के कथा सतीसर, यहाँ वितस्ता बहती है से लेकर कुसुम खेमानी के लाल बत्ती की अमृत कन्याएँ, लावन्या देवी, रणेंद्र के ग्लोबल गाँव के देवता, चित्रा मुद्गल के पोस्ट बॉक्स नंबर 20/3 नाला सोपारा और अभी अभी बुकर से पुरस्कृत हुआ रेत समाधि सभी समाज और मानव से जुड़े मुद्दे उठाते हैं। यह कहना प्रासंगिक होगा कि बारीकी से मुद्दों की पड़ताल, क्या खेल चल रहा और क्या होना चाहिए? इन सब पर बात करते हैं।

वर्तमान में जो मुख्य चुनौतियाँ है वह पंथ निरपेक्षता, जातिवाद, कश्मीर आदि नहीं है बल्कि इनकी आड़ में तेजी से विस्तृत होता भूमंडलीकरण, (ग्लोबलाइजेशन) और मूल्य ह्रास है। इन सभी मुद्दों के साथ आप देखें तीव्र औद्योगीकरण, तकनीक और सूचना क्रांति का विस्फोट और बाजारवाद का एक हजार प्रतिशत से भी अधिक विकास हुआ है। और यह याद रखें जो भी विकास होता है वह श्रम, श्रमिकों और मजदूर वर्ग की कीमत पर होता है। आपको लगेगा यह तो विषयांतर है, इस बाजारवाद का समरसता से क्या लेना देना? समझें, जब यह अंतर, विभाजन और गहरा होता जा रहा है, जिसमें एक बड़े वर्ग से उसके घरेलू रोजगार छीने जा रहे हैं, उसे छोटी सी जमीन से भी बेदखल कर बाजार कब्जा करता जा रहा है और उसे चौकीदार, मजदूर, बेरोजगार, बाई आदि बनाता जा रहा है तो मित्रों समरसता, सौहार्द, भाईचारा तो बुरी तरह प्रभावित होगा ही होगा। खासकर तब जब आप और हम सभी का उत्थान और विकास उत्तरोतर हो रहा है। यह कैसी उलटबाँसी है कि जिसके कारण

जीडीपी ग्रोथ, विकास सूचकांक बढ़ता है वही और गरीब, मोहताज हुआ जाता है?

यह वह बड़ा वर्ग है जो चन्द रुपयों के लिए रैलियों में भीड़ बनता है। यह वर्ग ही धरने पर बैठता है, यही वर्ग मंदिर, मस्जिद, चर्च के विवाद में आगे बढ़कर आता है और यही वह वर्ग है जो जाने कब और कैसे अपराध की तरफ मुड़ जाता है। और वह अपने तर्क देता है कि मैं अपने साथ हुई असमानता और ज्यादतियों की भरपाई कर रहा हूँ। फिर वह लोकतंत्र के हिसाब से जेल भी जाता है। और इस तरह कम से कम बीस फीसदी हिस्सा अपराध की तरफ मुड़ जाता है। इस विषमता को समकालीन हिंदी साहित्य कम करने में लगा हुआ है। खासकर युवा रचनाकार और साहित्यिक पत्रिकाएँ। (यहाँ पत्रिकाओं के साथ लघु शब्द इस्तेमाल नहीं करूँगी क्योंकि वह बहुत बड़ा और महत्त्वपूर्ण हिस्सा है हमारे समकालीन समाज और संस्कृति का)।

यह समरसता और जीवनमूल्यों का जो ह्रास करते हैं और जो इन्हें बढ़ावा देते हैं, (हर राजनैतिक दल)इस पर काम करने और लिखने के साथ साथ क्रियान्वयन की भी जरूरत है। यह वक्त वर्ग विसंगतियों और मुख्य समस्या-भूमंडलीकरण के बढ़ते प्रभाव की चुनौतियों को समझने और उन्हें कम करने की ईमानदार कोशिश करने का है।

कुछ महत्त्वपूर्ण किताबें और विषयवस्तु :- सर्वप्रथम ध्यान जाता है वरिष्ठ लेखिका ममता कालिया के दुक्खम-सुक्खम पर जिसमें बड़ी खूबसूरती से जीवन के उतार-चढ़ाव के मध्य यह बात उभरकर सामने आती है कि हमारी सोच और देखने का ढंग चीजों को, हालात को हमारे अनुकूल बना देता है। यह मनुष्य ही है जो दुख में भी सुख और विपरीत परिस्थितियों को भी अपने अनुकूल बना लेता है। लेकिन आवश्यकता उस बौद्धिकता, उस नजरिए की है जो बहुत कम लोगों में पाया जाता है। कुसुम खेमानी लाल बत्ती की अमृत कन्याओं के माध्यम से उन रेडलाइट क्षेत्र की बात उठाती हैं जहाँ आम व्यक्ति जाने की सोच भी नहीं सकता। खासकर महिलाएँ तो कभी अपने जीवन में उन गलियों को, अँधेरे कोनों को देखना भी नहीं चाहती। समरसता और राष्ट्रीयता क्या उन सेक्स वर्कर और उनके बच्चों के लिए नहीं होनी चाहिए जिनके लिए कोई अस्पताल, डॉक्टर या बीमारियों से बचाव के मूलभूत साधन तक उपलब्ध नहीं होते? कैसे जीते हैं और किस तरह से गुमनामी की मौत मर जाते हैं, यह उपन्यास बताता है। लेखिका के गहन शोध का परिणाम है कि वह इस उपन्यास में रेड लाइट पर गुब्बारे, खिलौने बेचते या भीख माँगते महिलाओं और बच्चों के माध्यम से हमारा ध्यान इस तरफ खींचती है। हम उपन्यास के पात्रों को अपने सामने जीवंत पाते हैं और हमारा दृष्टिकोण इन लोगों के प्रति हमेशा-हमेशा के लिए सकारात्मक हो जाता है।

राजकाज, मुख्यमंत्री, उसकी सोच और सत्ता में टिके रहने के हथकंडों की बात करता है यशवंत व्यास का चिंताघर उपन्यास। यह एक और नई दुनिया में पाठकों को ले जाता है जो मनोरंजक होने के साथ-साथ एक कड़वा सच हमारे सामने रखती है। राजनीति और राजनेता कितने घड़ियाली और मगरमच्छ के आँसू हमारे सामने बहाते हैं हकीकत में वह इससे उलट संवेदनहीन और चतुर चालाक होते हैं। विडंबना यह है कि वह समाज में से ही उठकर चुने जाते हैं। यह कौन सा रसायन है जो आम व्यक्ति को राजनीति में ऊँचा उठते ही काँइया, धूर्त व्यक्तित्व में बदल देता है?

जवाहर चौधरी का उपन्यास उच्च शिक्षा का अंडरवर्ल्ड एक नई दुनिया, कड़वी सच्चाई हमारे सामने रखता है किस तरह से शोध से लेकर के नियुक्ति तक में कुछ लोग भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। उच्च शिक्षा का बंटाधार कर रहे हैं, इसका वर्णन इसमें किया गया है और यह सच्चाई सामने आती है कि वास्तव में शिक्षा व्यवस्था शिक्षा नीति के लाने से नहीं बदलेगी बल्कि उच्च शिक्षा के इन केंद्रों में पूर्णतया निगरानी, अनुशासन और समय-समय पर जवाबदेही तय करने से ही कुछ गुणवत्ता रहेगी।

महेंद्र भीष्म युवा कथाकार अपने उपन्यास मैं पायल के माध्यम से उस दुनिया में हमें ले चलते हैं जिसके बारे में आज भी हम बात करने में हिचकते हैं। जिनके बारे में हम सोचना नहीं चाहते। जिन्हें हम अपनी कॉलोनी में, सभ्य समाज में, हमारे पास की कुर्सी पर कभी बैठे देखना नहीं चाहते। जबकि वह हमारी तरह से ही किसी माँ की कोख से जन्मे हैं। किन्नर विमर्श पर एक महत्त्वपूर्ण उपन्यास मैं पायल बताता है किन्नरों की संवेदनाएँ, उनके दुख दर्द, रोजगार को लेकर हमें समरसता की ही नहीं बल्कि संवेदनशीलता की भी जरूरत है। समरसता समान विचारों वाले में ही क्यों हो? समरसता का तात्पर्य मेरी निगाह में यह है कि हम विपरीत वर्ग, विपरीत परिस्थितियों और विपरीत लोगों के मध्य परस्पर सौहार्द समरसता और भाईचारा बढ़ाएँ तो वह सही अर्थों में हमारे जीवन को एक उद्देश्य देगा।

हरीश नवल, बोगी नंबर 2003, में ट्रेन के माध्यम से परस्पर अपनापन और भिन्नताओं के मध्य भी किस तरह जरूरतें इंसानों को पास लाती हैं, पर प्रकाश डालते हैं। सुभाष चन्दर अक्कड़-बक्कड़ के माध्यम से पुलिस थानों और उनके अधिकारियों के किस्सों को रोचक ढंग से रखते हैं। उनकी चुटीली भाषा शैली की बानगी देखें, 'थानेदार मेघनाथ सिंह के बारे में यह मशहूर था कि उन्होंने जिस नार पर नजर डाली वह फिर अपने भरतार की न रही। और ऐसी नारियों की संख्या आसपास के सात-आठ गाँव मिलाकर सिर्फ तीन दर्जन भर है। यह संख्या और बढ़ सकती थी पर वह सिद्धांतों के बड़े पक्के आदमी हैं।

वह केवल ब्याहता औरतों का ही शिकार करते हैं। कुँवारी कन्याओं को वह देवी स्वरूप मानकर अष्टमी पर बाकायदा उन्हें भोजन कराकर उनके चरण छूते हैं।'

सामाजिक विसंगतियों पर प्रहार करता और उसे समाज और देश के सामने रखता है वरिष्ठ लेखक ज्ञान चतुर्वेदी का उपन्यास नरक यात्रा जो अस्पतालों की अव्यवस्था और डॉक्टरों की लापरवाही एवं राजनीति पर कड़ा प्रहार करती है और हमें बताती है, हमें सावधान रहना चाहिए, डॉक्टर भगवान नहीं होता है। ऐसे ही बारामासी उपन्यास के माध्यम से ज्ञान जी सुदूर ग्वालियर के मऊरानीपुर कस्बे की कहानी के माध्यम से बताते हैं कि किस तरह से एक आम मध्यमवर्गीय परिवार अपने छोटे-छोटे सपनों को पूरा करने की आस लिए ही रह जाता है और जिंदगी बीत जाती है।

कश्मीर पर क्षमा कॉल का उपन्यास दर्द पुर एक नया वितान, नई सच्चाई हमारे सामने रखता है। वह सच्चाई जो जम्मू कश्मीर के हर घर में व्याप्त है। हिंदू घरों में जो खंडहर हो चुके हैं, में बहुत अधिक और मुस्लिमों के अधिकांश घरों में भी दर्द देखा जाता है। सच है खता लम्हों ने की और सजा सदियों ने पाई। सांप्रदायिक सौहार्द और भाईचारे को कौन बिगाड़ रहा है और किस तरह से हिंदू हो या मुस्लिम सब का दर्द साझा है। परंतु न जाने वह कौन है जिसने जुबान बंद कर रखी है। कोशिश करनी चाहिए कि हम जुल्म और अत्याचार के खिलाफ अपनी आवाज बुलंद करें और राजनेताओं के प्रायोजित धरना प्रदर्शनों में अपनी मेधा को, अपनी प्रतिभा को नष्ट न करें।

ऐसे अनेक समकालीन कथा साहित्य में प्रयोग हुए जो समरसता को, समझदारी से आगे बढ़ाते हैं। कहीं वह आपको सोचने पर मजबूर करते हैं तो कहीं वह मुस्कान भी ले आते हैं। कभी आप सोचते हैं कि यह फ्रंट कॉरिडोर में हजारों किमी का समानांतर रेलवे ट्रेक बन गया और जिस पर पचास से सत्तर बोगियों की मालगाड़ियाँ विदेशों से आए बड़े-बड़े कंटेनर लेकर देश भर में रातदिन दौड़ रही हैं, यह सब क्या है?

यह वह सच है जिसे जानने और समझने की जरूरत है। चीन से मोबाइल, इलेक्ट्रॉनिक सामान से लेकर गणेश जी, लड़ियाँ तक आयात होकर आ रही हैं, सरकारी सहमति और अग्रीमेंट से (यह एक पार्टी ने नब्बे के दशक में प्रारम्भ किया और दूसरे दल ने उसके बड़े-बड़े फलों को जी भरके खाया और बाँटा)। उधर आम जनता को छद्म राष्ट्रप्रेम की घुट्टी पिलाते हुए हर त्यौहार पर चीनी सामान का बहिष्कार करवाने का शगूफा। यह सब बाजार और उसके अंतरराष्ट्रीय आका करवा रहे हैं।

कबीर जैसे संत का विरोध मध्यकाल में सामंती, पुरोहिती दमन चक्र से था। जिसमें जनसाधारण हिंदू-मुसलमान दोनों ही पिस रहे थे। इसलिए कबीर ने अपने जमाने में इन्हीं सामंती प्रवृत्ति शक्ति के खिलाफ आवाज उठाई। फिर चाहे वह मुल्ला और मस्जिद हो या फिर स्वर्ग नरक, आत्मा, पुनर्जन्म का डर बताकर लूटते ब्राह्मण। **(नामवर सिंह, दूसरी परंपरा की खोज, 67 पृ.)** यह बताता है कि समरसता बनाए रखने, समाज में पाखंड, फरेब, दिखावा कम करने, विरोध की आवाज उठाने में कबीर एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व बन के सामने आते हैं। यह भी विडंबना है कि समाज हमेशा समरसता, भाईचारे और सौहार्द के लिए यह अपेक्षा करता है कि दूसरे आकर के उसे राह दिखाएँ। खुद से समाज कुछ क्यों नहीं करना चाहता?

समरसता की राजनीति और राजनीति की समरसता :- यह अनायास नहीं है कि कुछ फिल्म स्टार आजकल तस्वीरों और मीडिया में अपने परिवार, अक्सर दूसरी या तीसरी पत्नी और तीन अथवा चार बच्चों के साथ अवतरित होते हैं। यह दिखने में सरल बात लगती है पर यह बहुत दूर तक समरसता भंग करती है। और एक तबके को लंबे समय तक अशिक्षित और गरीबी के नीचे ही रहने देती है जिससे वह भीड़ में तब्दील होकर रह जाए। उसकी स्वयं की पहचान न बने। वह जो इन्हें ही रोल मॉडल मानता है और यह संदेश सितारे उन्हें देते हैं। समरसता कहाँ से होगी? कैसे होगी? ऊपर से स्त्री के स्वास्थ्य, मनोदशा का तो सोचा ही नहीं जाता। फिर वही मंचोंऔर फोरम में समरसता की दुहाई मचाते हैं। इस दोहरी चाल और छल को भी समझना होगा और रोकना होगा।

'रेत समाधि' के माध्यम से गीतांजलि श्री इसी प्रश्न को नए सवालों और उनके अनुत्तरित जवाबों में उठाती हैं। वह वृद्ध महिला और एक युवा स्त्री के माध्यम से विभाजन की बात रखती हैं पर मूल प्रश्न विभाजन या बँटवारे का पीछे छूट जाता है और यह सामने आता है कि इंसानियत और समरसता दूर रह कर के भी बरकरार रखी जा सकती है। यदि आप में सदिच्छा, ईमानदारी और स्वनियंत्रण है। स्पष्ट है इसमें सभी का सम्मान, समभाव और सर्व हिताय और लोग कल्याण की भावना निहित है। और यदि अकेलापन और दोष दूसरे पर मढ़ने को ही समरसता कहते हैं तो यह उपन्यास काफी बात करता है।

दरअसल हम एक तीव्र विकास के साथ-साथ परम्परा और मूल्यों के संरक्षण वाले समय का हिस्सा हैं। साथ ही तीव्र तकनीकी विस्फोट और औद्योगीकरण ने परस्पर सौहार्द और समरसता में कमी की है। हम विचारों, किताबों, चर्चाओं से कटते जा रहे हैं। तो फिर मन के प्रश्नों, समस्याओं का समाधान कैसे हो?

उधर कुछ ऐसे भी हैं जो तिल का ताड़, सूखे हुए पत्तों को हवा देने और हर बात की उल्टी व्याख्या करने को ही साहित्य सेवा मानते हैं।

और बड़ी प्रतिबद्धता, ओढ़े हुए गाम्भीर्य से यह नेक काम करते हैं। दो उद्धरण से बात स्पष्ट होगी। एक पत्रिका, प्रेमचंद द्वारा स्थापित तो नाम की है, छपता उसमें वह सब है जिससे प्रेमचंद जी की आत्मा तड़पती रहती होगी। तो उसके सितंबर 2022, आजादी के अमृत महोत्सव अंक (अतिथि सम्पादक संजीव कुमार)की बानगी देखें 'संविधान के सिर फूटा ठीकरा', संविधान और जनप्रतिनिधियों की मंजूरी से जम्मू कश्मीर के विशेष दर्जे को खत्म किया। पर इसके लिए पूरे कश्मीर के तमाम नागरिक लंबे समय के लिए आजादी से वंचित कर दिए गए। संजीवकुमार बड़ी मासूमियत से यह नहीं कहते कि, आजादी के समय से कश्मीर देश का अभिन्न अंग होते हुए भी अलग-थलग था। कोई भी भारतीय नागरिक धारा तीन सौ सत्तर, लागू होने के कारण एक इंच भूमि का टुकड़ा भी नहीं ले सकता था। हजारों हजार कश्मीरी पंडितों के परिवारों को वहाँ से पलायन करने पर मजबूर होना पड़ा और आज 2022 तक वहाँ शांतिप्रिय आम नागरिक, रोजी रोटी की तलाश में जो गए उनकी हत्या हो रही है। इस पर यह नहीं बोलते ? क्या यह समरसता को भंग करना एकतरफा सोच रखना और विशेषकर कम जानकारी रखने वाले लोगों को भड़काना नहीं हुआ ?

इस एकतरफा और आंशिक सत्य को सार्वभौमिक, सनसनीखेज बना पेश करने का यह ढंग दरअसल पहचान है इन लोगों की। यह लोग सब जगह, सोशल साइट्स, समाचारपत्र, साहित्यिक पत्रिकाओं में भी घुसपैठ किए हैं। पर शिक्षित वर्ग समझदार और सही तथ्यों के आधार पर बात की गहराई में जाता है। और वहाँ यह बेनकाब हो जाते हैं। कुछ विद्वान आज के दौर में सत्य, समरसता, भाईचारे को विखंडित करने का कार्य कर रहे हैं। इतने आत्मविश्वास से बार-बार झूठ बोलकर भावी पीड़ी के कुछ हिस्से को भड़काकर। यह समरसता को भंग करके भड़काने वाले लोग ही हैं जिनके कारण चन्द लोग, युवा अपना जीवन, आत्मसम्मान बर्बाद कर बैठते हैं।

दूसरा उद्धरण है अपूर्वानंद का। यह वही हैं जिनका अभी ऊपर जिक्र आया। आजादी हर भारतीय के लिए गर्व, स्वाभिमान और उत्साह से देश के सभी अच्छे नेताओं, सेनानियों और वर्तमान के भावी नवाचारों पर गर्व करने का विषय है। पर यह लिखते हैं 'कैसा जश्न, किनका जश्न ? आजादी के अमृत महोत्सव को प्रेमचंद, रघुवीर सहाय की आजादी के पूर्व लिखी गई पंक्तियों को खोज कर नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं। एक प्रोफेसर जब यह बात नहीं जानता कि वह आजादी की लड़ाई और अत्याचारी, क्रूर अंग्रेजों के खिलाफ था, जिसे वह आजाद भारत के अमृत महोत्सव के प्रति अपनी निजी भड़ास के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं। **(हंस, सितंबर, 2022,पृ. 79)** समान नागरिकता कानून (सीएए) के सर्वे को प्रारम्भ होना है यह भारत को डंपिंग मैदान मान बांग्लादेश, बर्मा, नेपाल आदि के मुस्लिम, हिन्दू, (बौद्ध भी) रोहिंग्या घुसपैठियों की पहचान करने और उन्हें रोकने के लिए है। जो लाखों की संख्या में भारत में अपने वोट बैंक के लिए लाए गए। माननीय प्रोफेसर अपूर्वानंद, इस बात का भी ऐसा गलत सार्वभौमिकरण करते हैं 'यह नागरिकता कानून मुस्लिमों को देश से बाहर करने के लिए है।' अब ऐसी उलटबाँसी अकेले यही नहीं कर रहे बल्कि योजनाबद्ध ढंग से चन्द बुद्धिजीवी लोग कर रहे हैं। जिसे उनसे बेहतर तो हमारे आम, निर्दोष नागरिक समझते हैं।

समरसता, भाईचारे और सद्भाव को धता बता यह घुसपैठ करने वाले लोग देश के संसाधनों, जमीन, जल सभी का इस्तेमाल कर रहे हैं। (यह प्रश्न ही महत्त्वपूर्ण और सम्पूर्ण जानकारी की माँग रखता है कि लाखों की तादाद में सीमाओं से घुसकर असम, बंगाल, दिल्ली और पूर्वोत्तर में इन्हें किन दलों और नेताओं ने बसाया ? और ऐसा करते हुए उन्हें इस देश के आम व्यक्ति, विशेषकर भारतीय मुस्लिमों का ख्याल नहीं आया कि यह उनके हक को मार रहे हैं ? और अनेक देशविरोधी, समरसता खत्म करतीं गतिविधियाँ यह बाह्य लोग करेंगे, और उनकी देखादेखी हमारे कुछ भारतीय युवा भी भटक जाएँगे और अब जब केंद्र सरकार इस देश और इसके नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए कुछ ठीक करना चाहती है, तो यह बुद्धिजीवी हंगामा करते हैं। और देश के निर्दोष मुस्लिम नागरिकों को धरने पर आगे बैठा खुद पीछे से षड्यंत्र रचते हैं।

साहित्यिक पत्रिकाओं, साहित्य और बुद्धिजीवियों के विरोध और आलोचना का बराबर स्वागत है। यह लोकतंत्र में आवयश्क भी है। पर यह झूठ, गलत तथ्यों द्वारा समरसता, भाईचारे और सबसे बढ़कर देश के नागरिकों में भेदभाव बढ़ाने वाला हो यह अपेक्षा नहीं की जाती। दुर्भाग्य से कुछ लोग ऐसा कर रहे। और तर्क, बुद्धिमता से काफी लोग खासकर युवा पीढ़ी इसे समझ रही। फिर भी हमें सावधान ही नहीं रहना बल्कि जागरूकता भी बढ़ानी होगी। और चन्द विदेशी पैसों से देश की झूठी तस्वीर बेच किताब लिख रहे लोगों को भी यह नहीं करना चाहिए। इन सभी पर अभी बहुत कुछ लिखने और सामने लाने की जरूरत है। मगर महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यह जो लिखा, पढ़ा जा रहा तो जो इससे सम्बद्ध हैं क्या उन तक यह साहित्य पहुँचता है ? क्या कुछ बदलाव होता है ? कुछ असर होता है ?

यकीनन पहुँचता है। प्रभाव भी होता है। कुछ पर असर भले ही कम हो पर होता अवश्य है और यही समरसता, अपनेपन के साथ जीवनमूल्यों को बनाए रखता है।

सह आचार्य, हिंदी
स.ध.रा.महाविद्यालय,
ब्यावर- 305001 (अजमेर)
मो.-9928708899

पुराणों में वर्णित भूखंड

- अनामिका

जन्म - 28 अप्रैल 1973।
जन्म स्थान - राँची (झारखण्ड)।
शिक्षा - एम.ए., पीएच.डी।
रचनाएँ - दो पुस्तकें प्रकाशित।

हमारे पुराणों में मनीषियों से इस पृथ्वी के मुख्य भूभागों का विस्तृत रूप से वर्णन किया है। वर्तमान में जो द्वीप बने हैं, उसी प्रकार से प्राचीन समय में भी इस भूभाग को द्वीपों में विभाजित किया गया था, लेकिन आज के द्वीप की परिभाषा उस समय के द्वीपों से भिन्न थी। फिर भी मुख्य बात यह है कि हरेक द्वीपों की जलवायु, वनस्पति, और निवासियों का विस्तृत वर्णन पुराणों में किया गया है। यह द्योतक है कि प्राचीन समय में हमारे मनीषियों ने इस पृथ्वी का भ्रमण कर विस्तार से अध्ययन किया था और जानकारी इकठ्ठा कर उसे उल्लेखित भी किया था। वर्तमान अध्ययन हमारे पुराणों में वर्णित भूखंडों का वर्तमान समय में अवस्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन है।

पुराण के बारे में कहा जाता है कि 'पुराणम् सर्वशास्त्राणाम् प्रथमं ब्रह्माणाम् स्मृत, अनंतरम् च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनि:सृता:'। अर्थात् पुराण सभी शास्त्रों से पूर्व थे, पश्चात् ब्रह्मा के मुख से वेद निकले। आदिकाल में 'पुराणमेकमेवासीत्' अर्थात् क्पुराण एक ही था। कालांतर में पुराणों का विभाजन सूतों द्वारा हुआ (वायु पुराण, पृष्ठ 2)। सूत एक जाति या संप्रदाय था, जो वंश परंपरा के अनुसार घूम-घूम कर कथाओं द्वारा समाज का संशोधन व मनोरंजन करता था **(वायु पुराण, पृ. 3)**। पुराण की परिभाषा विष्णु पुराण के दो श्लोकों में उद्धृत है;

सर्गश्च, प्रतिसर्गश्च वंशमन्वन्तराणि च।
सर्वेश्वेतेषु कथ्यते वंशानुचरितं च यत्।। (विष्णु पुराण, Ⅲ, 6, 25)
सर्गे च प्रतिसर्गे च वंशमन्वन्तरादिषु।
कथ्यते भगवान्विष्णुरशेषेष्वेष सत्तम।। (विष्णु पुराण, Ⅲ, 6, 27)

पहले श्लोक का अर्थ है, 'पुराणों में सृष्टि, प्रलय, देवता आदिकों के वंश, मन्वन्तर और भिन्न-भिन्न राजवंशों के चरित्रों का वर्णन किया गया है।' **(वही, पृ. 184, पंक्ति 9)**। और दूसरे श्लोक का अर्थ है, 'हे साधुश्रेष्ठ! इसमे सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश और मन्वंतरादि का वर्णन करते हुए सर्वत्र केवल विष्णु भगवान का वर्णन है।' **(वही, पृ. 184, पंक्ति 15)**। दूसरा श्लोक वस्तुत: विष्णु पुराण में उद्धृत विषय-वस्तुओं को बताता है, लेकिन इसमें प्रथम पंक्ति के अर्थ से पुराण की परिभाषा उद्धृत होती है।

पुराण को अगर शाब्दिक अर्थों में परिभाषित किया जाए, तो सहज ही यह बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त हिंदी शब्द 'पुराना' अर्थात् 'पहले का' या मगहि उक्ति 'बूढ़-पुरनियाँ' अर्थात् 'बूढ़े या पहले के लोग' जैसा प्रतीत होता है। 'बूढ़-पुरनियाँ' में पुरनियाँ शब्द पूर्वजों के लिए है, लेकिन पुराण शब्द सभी प्राचीन काल की घटनाओं, परिस्थितियों, मान्याताओं, स्थलाकृतियों, व जीवन आरम्भ के सभी आयामों, जैसे जल, थल, वायु आदि का द्योतक है। अत:, हमारे मनीषियों ने ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति से लेकर ग्रहों, उपग्रहों की अवस्थिति, जीवनदायिनी पृथ्वी की उत्पत्ति, जीवन का आरम्भ, पोषण व अंत, समाज की व्यास्थाओं, सुखमय जीवन व्यतीत करने के आधार व तरीकों, पूर्व में घटित घटनाओं का उल्लेख व भविष्य के गर्भ में घटने वाली घटनाओं आदि को उद्धृत कर पीढ़ी दर पीढ़ी प्राकृतिक व सामाजिक ज्ञान को संकलित कर पहले श्रुति या स्मृति माध्यम से और तत्पश्चात् लिखित रूप में हमारे वर्तमान समाज को दिए, जो कि पुराण कहलाए।

लगभग सभी पुराणों में पृथ्वी के भुखंड की विस्तृत चर्चा की गई है, लेकिन विष्णु पुराण, वायु पुराण, भागवत् पुराण, भविष्य पुराण, और मत्स्य पुराण में पृथ्वी के भूभाग का विस्तृत वर्णन किया गया है। वर्तमान अध्ययन में इन्हीं पुराणों में उद्धृत भूखंडों का विस्तृत व सटीक वर्णन किया गया है।

पुराणों में उद्धृत है कि परम्-पिता ब्रह्मा ने प्रजा पालन हेतु स्वयंभुव मनु को उत्पन्न किया। तत्पश्चात् स्वयंभुव मनु ने तप से सतरूपा नाम की स्त्री को अपनी पत्नी के रूप में ग्रहण किया। उनकी चार संतानें हुईं-दो पुत्र व दो पुत्रियाँ। उन्होंने पुत्री प्रसूति को दक्ष के साथ और आकूति को रुचि प्रजापति के साथ विवाह दिया **(वही, I, 7, 16-19)**। उनके प्रियव्रत और उत्तानपाद नाम के दो पुत्रों में से उत्तानपाद का विवाह सुरुचि और सुनीति से हुआ। सुनीति से जन्मे पुत्र ध्रुव ने अपनी घोर तपस्या के बल पर भगवान विष्णु से सर्वोत्तम एवं अव्यय

स्थान को प्राप्त करने की इच्छा बताई, जो विश्व का अधारभूत हो **(वही, I, 12, 81)**। अत: ध्रुव को वह स्थान प्राप्त हुआ जो अचल है– ध्रुव तारा का स्थान, जो पृथ्वी के परिप्रेक्ष्य में कभी परिवर्तित नहीं होता। कालान्तर में ध्रुव की पत्नी सृष्टि और भव्य से उत्पन्न पुत्रों ने इस पृथ्वी के कई भागों पर राज किया। इसी वंश में चाक्षुष, कुरु, पुरु, पृथु जैसे कई राजा उत्पन्न हुए। स्वायंभुव मनु के ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रत का प्रजापति कर्दम जी की पुत्री से दो कन्याएँ और दस पुत्र उत्पन्न हुए। 10 में से तीन पुत्रों ने योग व साधना का रास्ता चुना। बाकी 7 पुत्रों में मनु ने सात द्वीप बाँट दिए।

जम्बूद्वीपं महाभाग साग्नीध्राय ददौ पिता।
मेधातिथेस्तथा प्रादात्प्लक्षद्वीपं तथापरम।। (वही, I, 1, 12)
शाल्मले च वपुष्मन्तं नरेन्द्रमभिषिक्तवान।
ज्योतिष्मन्तं कुशद्वीपे राजनं कृतवान्प्रभः।। (वही, I, 1, 13)
धृतिमन्तं च राजनं क्रौञ्चद्वीपे समादिशत।
शाकद्वीपेश्वरं चापि भव्यं चक्रे प्रियवतः।
पुष्कराधिपतिं चक्रे सवनं चापि स प्रभुः।। (वही, I, 1, 14)

प्रियव्रत ने आग्नीध्र को जम्बू द्वीप और मेधातिथि को प्लक्ष द्वीप दिया। उन्होंने शाल्मल द्वीप में वपुष्मान को अभिषिक्त किया और ज्योतिष्मान को कुशद्वीप का राजा बनाया। द्युतिमान को क्रौञ्च द्वीप, भव्य को शाकद्वीप का स्वामी बनाया और सवन को पुष्कर द्वीप का अधिपति बनाया। इन द्वीप विभाजनों का वृत्तांत विष्णु पुराण, वायु पुराण, भागवत् पुराण एवं मत्स्य पुराण में मूलत: समान है **(वही, 1; वायु पुराण, 15; भागवत् पुराण, 20; मत्स्य पुराण, 122-23)**। तत्पश्चात् प्रियव्रत के इन सातों पुत्रों ने अपने पुत्रों को द्वीप का पुन: आंतरिक विभाजन कर शासक बनाया। इन द्वीपों की वर्तमान अवस्थिति से पता चलता है कि ये सातों द्वीप वर्तमान एशिया, अफ्रीका और यूरोप भूभाग में ही स्थित थे, (चित्र 1)।

चित्र 1 पौराणिक द्वीप (अली, 2019) :-

विभिन्न पुराणों में अगर इन द्वीपों की अवस्थिति के उल्लेख पर प्रकाश डालें तो थोड़ा बहुत अंतर दिखाई देता है। लेकिन सभी एक बिंदु पर सहमत हैं कि जम्बू द्वीप की अवस्थिति वर्तमान एशिया के मध्य भाग में ही उत्तर से दक्षिण तक फैली थी, जिसका कि केंद्र मेरु पर्वत था जो कि वर्तमान में पामीर का पठार माना जाता है। बाकी द्वीपों की अवस्थिति जम्बू द्वीप के परिप्रेक्ष्य में की गई है।

आग्नीध्र ने जम्बू द्वीप को अपने नौ पुत्रों में बाँट दिया। उन्होंने दक्षिण का हिमवर्ष नाभि को, हेमकूट किम्पुरुष को, नैषधवर्ष हरिवर्ष को तथा इलावृतवर्ष इलावृत को दिया, जिसके मध्य में मेरु पर्वत है। उन्होंने नीलाचल से लगा वर्ष रम्य को, उसका उत्तरवर्ती स्वेतवर्ष हिरण्वान को, और जो वर्ष श्रिंगवान पर्वत के उत्तर में स्थित है वह कुरु को दिया। मेरु के पूर्व में स्थित क्षेत्र भद्रावर्ष भद्राश्व को, और पश्चिम का क्षेत्र गंधमादनवर्ष केतुमाल को दिया (चित्र 2)। महात्मा नाभि का मेरुदेवी से ऋषभ नमक पुत्र पैदा हुआ। उनके 100 पुत्रों में श्रेष्ठ भरत जी को महात्मा नाभि ने वनगमन से पहले हिमवर्ष को सौंप दिया, जो कि कालांतर में भारतवर्ष कहलाया।

चित्र 2 : जम्बू द्वीप (अली, 2019) :-

पुराणों में द्वीप शब्द मूलत: उन स्थानों के लिए प्रयुक्त हुआ है जो दो, तीन या चारो तरफ से पानी से घिरे हों। कहीं-कहीं अगम्य क्षेत्र (पहाड़, रेगिस्तान इत्यादि) से घिरे हुए स्थान को भी द्वीप की संज्ञा दी गई है। पुराणों में सभी द्वीपों में विभिन्न स्थानों के उच्चावच व वानस्पतिक विवरण से उनका वर्तमान स्थान निश्चित किया गया है। शाक द्वीप के बारे में पुराणों में वर्णित है कि सात पवित्र नदियों के अलावा यहाँ सहस्त्रों धाराएँ भी हैं, अर्थात् यहाँ वर्षा बहुतायत में होती है। यहाँ सागवान (टीक) के बहुत वृक्ष हैं, जो कि मानसून क्षेत्र में ही पाए जाते हैं। यहाँ विष्णु भगवान की पूजा सूर्य के रूप में होती है, जो बताता है कि यह क्षेत्र जम्बू द्वीप के पूर्व दिशा में है। वर्तमान में अगर ऐसी भूखंड जी खोज की जाए तो पता चलता है कि जम्बू द्वीप के पूर्व में मानसून वाला एशिया महाद्वीप का भाग जहाँ टीक के वृक्ष बहुतायत में हैं, उस भूभाग में म्यांमार, मलय, सियाम और इंडो-चीन

आते हैं। लेकिन हमें ज्ञात हैं कि म्यांमार और मलय ऐतिहासिक रूप से भारतवर्ष के भूभाग थे, अत: सियाम, इंडो-चीन, और दक्षिण चीन ही शाक द्वीप हैं। दक्षिण चीन सागर का अशांत फेन वाला पानी जो कि इस भूभाग को तीनों ओर से घेरे हुए हैं, पुराणों में वर्णित 'दूध का सागर' या 'क्षीर सागर' माना जाता है।

कुशद्वीप के बारे में पुराणों में वर्णन हैं कि यहाँ बहुतायत में 'कुश' या 'पोआ घास' पाया जाता हैं। फल-फूल के अलावा यहाँ वृक्षों की अनेक प्रजातियाँ, अनाज व खनिज के भण्डार हैं। यहाँ भी सात पवित्र नदियाँ हैं और इन्द्र देव की वर्षा से अनेक धाराएँ बहती हैं। यहाँ ज्वालामुखी से उत्पन्न पर्वत भी हैं। मंदार पर्वत भी यहीं है, जहाँ खनिज व बहुमूल्य पत्थर के भण्डार हैं। यहाँ के मुख्य देवता अग्नि हैं। पुराणों में वर्णित ऐसे द्वीप की विशेषता हमें उस भूभाग की ओर इंगित करती है जहाँ पर सवाना घास के मैदान हैं। अत: कुशद्वीप का वर्तमान स्थान इराक, ईरान व उसके चारों ओर की भूमि प्रतीत होती हैं। और ऐतिहासिक रुप से यहाँ के लोग अग्नि की पूजा भी करते थे। लगभग सभी पुराणों में प्लक्ष द्वीप की स्थिति जम्बूद्वीप के नजदीक बताई गई है। वर्णित है कि यहाँ सात पर्वतों, सात नदियों, सात शासकों, सात वर्णों के अलावा मुख्या रूप से प्लक्ष (पाकर) वृक्ष है जो कि भूमध्यसागरीय जलवायु में ही पाई जाती है। प्लक्ष को बेंत की तरह लचकदार डाली वाला पेड़ माना गया है या कुछ लोग इसकी पहचान अंजीर के पेड़ के रूप में भी करते हैं। अत: भूमध्य सागर के चारों ओर की भूमि को प्लक्ष द्वीप से चिह्नित किया जा सकता है। वी. वी. अय्यर इस द्वीप की पहचान ग्रीस व उसके आसपास की भूमि के रूप में करते हैं।

पुष्कर द्वीप के बारे में सभी पुराणों में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है। भागवत् पुराण के अनुसार इस द्वीप पर न वर्षा होती है, न ही कोई पानी का सोता है, न झरना है, और न ही वनस्पति। स्कन्द पुराण कहता है कि यहाँ के दो राज्यों के बीच वृत्त रूप में मानस पर्वत अवस्थित है। ऐसा ही वर्णन वाराह पुराण, विष्णु पुराण, लिंग पुराण और कूर्मपुराण में वर्णित है। वामन पुराण और गरुड़ पुराण यहाँ के जलवायु की स्थिति को अत्यंत भयावह बताते हैं, और इस स्थान को अत्यंत की क्रूर और जंगलीपन वाले जनजातियों की भूमि बताते हैं। इसे राक्षसों की भूमि की भी संज्ञा दी गई है। इसकी अवस्थिति के बारे में वर्णन है कि यह उत्तर कुरु की सीध में स्थित है क्योंकि इसकी जलवायु उत्तर कुरु से मेल खाती है। यहाँ की जलवायु बहुत ज्यादा शुष्क है, और चूँकि यहाँ वर्षा नहीं होती, इसीलिए इस भूमि पर कोई नदी नहीं बहती। मत्स्य पुराण के अनुसार इस द्वीप का नाम पुष्कर (कमल) के फूल से घिरे होने के कारण पड़ा। चित्रसेनु नाम का वृत्ताकार द्वीप इस भूभाग के पूरब-मध्य में है। पश्चिम भाग में दूसरी वृताकार शृंखला मानस है। मत्स्य पुराण के अनुसार मानस सागर किनारे में उगते चंद्र के समान है। यहाँ रहने वाली निवासी मुख्यत: घुमन्तु प्रवृति के हैं, जिनका कोई स्थाईत्व निवास नहीं है और न ही पशु पालन, व्यापार आदि का व्यवहार। इस द्वीप की एक और मुख्य विशेषता यह है कि इस भूभाग के एक ओर सूखे की स्थिति हैं तो दूसरी ओर मानव समुदाय के बसने की सारी व्यस्थाएँ। पुराण के अनुसार यह भूभाग भी स्वच्छ जल के समुद्र से घिरा हुआ है। इन सारी स्थितियों को अगर वर्तमान सन्दर्भ में आकलन किया जाए तो पता चलता है कि जापान सागर चारों ओर से पर्वतों से घिरा हुआ है और उसके पूर्व में जापान का पर्वतीय क्षेत्र है और पश्चिम में कोरिया की उच्च भूमि, मंचूरियन तट और सिखाता अलिन स्थित है जो कि सागर तट के नजदीक है। यह वृताकार पर्वत शृंखला वस्तुत: सतत है। अत: अगर हम जापान की उच्च भूमि को चित्रसेन मानते हैं, और पुष्करद्वीप के वृत्ताकार पर्वत शृंखला के पूर्वी और पश्चिमी भाग को मानस, तब इसी साइबेरिया, मंचूरिया और जापान तक की भूमि को पुष्कर द्वीप माना जा सकता है, जहाँ पितृसोम फ्यूजियमा पर्वत हो सकता है और उत्तर-पूर्व प्रशांत महासागर और जापान सागर पुराण में वर्णित क्षीर सागर हो सकता है।

साल्मलद्वीप के बारे में पुराणों में वर्णित है कि इस द्वीप की मुख्य विशेषता यह है कि यहाँ बहुतायत में साल्मल या सिल्क-सूती के वृक्ष पाए जाते हैं। यह वृक्ष मुख्यत: भूमध्यवर्ती क्षेत्र या मानसून क्षेत्र में पाए जाते हैं जहाँ मध्यम वर्षा होती है। मत्स्य पुराण के अनुसार इस द्वीप पर तापमान की वार्षिक सीमा कम है। अत: मौसम में परिवर्तन नहीं होता। यहाँ पर घने बादल होते हैं। इसीलिए यहाँ से अक्सर कोई तारा, ग्रह और चाँद नहीं दिखाई देता। यहाँ के लोग अनाज पैदा नहीं करते, बल्कि अनाज इकट्ठा करते हैं। पुराणों में वर्णित उपर्युक्त तथ्यों से पता चलता है कि साल्मलद्वीप भूमध्यवर्ती क्षेत्र में स्थित होंगे। ऐसी स्थिति में यह द्वीप या तो अफ्रीका का भाग होगा या फिर ईस्ट इंडीज। ईस्ट इंडियन चूँकि जम्बू द्वीप का पूर्वी हिस्सा है, अत: पुराणों के अनुसार साल्मलद्वीप अफ्रीका का भूमध्यवर्ती भाग है जो कि पूर्व में हिन्द महासागर से घिरा हुआ है।

पुराणों में क्रौंच द्वीप की जलवायु व वनस्पति सम्बन्धी विशेषताओं के बारे में ज्यादा वर्णन नहीं किया गया है। अत: इसके लिए हमें

अन्य सूत्रों का सहारा लेना पड़ेगा। तैत्तरीय अरण्यक के अनुसार क्रौंच पर्वत के नाम पर इस द्वीप का नाम पड़ा। अर्थात्, इस द्वीप का सम्बन्ध जम्बू द्वीप से था। अत: इसकी अवस्थिति जम्बू द्वीप के समीप ही होगी। महाभारत (12, 14, 21-5) क्रौंच द्वीप को मेरु के पश्चिम में बताता है, और अध्याय (6, 12) के अनुसार क्रौंच द्वीप जम्बूद्वीप के उत्तर-पश्चिम में है। मत्स्य पुराण के अनुसार सात पवित्र नदियों के अलावा यहाँ हजारों धाराएँ पानी की बहुतायत मात्रा के साथ बहती हैं। अत: यह क्षेत्र नमीयुक्त क्षेत्र ही होगा। अत: हमें इस द्वीप की अवस्थिति के लिए वैसा स्थान खोजना होगा जो जम्बू द्वीप के उत्तर-पश्चिम में हो और वहाँ रहने वाली जनसंख्या के पास समृद्धि के लिए पर्याप्त पानी हो। जम्बू द्वीप के उत्तर-पश्चिम में पूर्ण रूप से घिरा हुआ या पार्श्व रूप से घिरा हुआ 5 सागर है; बाल्टिक, भूमध्य, काला, कैस्पियन, और अराल। बाल्टिक, अराल और कैस्पियन सागर गर्म व ठंडे मरुस्थल से घिरा हुआ है, जो इंसानों के रहने के पूर्णत: योग्य नहीं है। अत: यह क्षेत्र द्वीप की संज्ञा में नहीं आता। इसके अलावा यहाँ पाई जाने वाली विशेषता पुराणों में वर्णित विशेषताओं से सर्वथा भिन्न हैं। अत: निष्कर्ष यही निकल सकता है कि पुराणों में वर्णित क्रौंच द्वीप काला सागर के आसपास है (चित्र 1)।

हमारे पुराणों में भौगोलिक जानकारियों का भंडार है। परन्तु, खेद कि वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में भारत के मनीषियों द्वारा वर्णित की गई भौगोलिक जानकारी को वर्तमान पीढ़ी से दूर रखा जा रहा है। हमारे पुराण सभी मुख्य भूभाग की विस्तृत जानकारी देते हैं, जिनका उल्लेख वर्तमान में वहाँ के वनस्पति, जलवायु, और रहने वाले निवासियों के बारे में किए गए उल्लेख से पता चलता है। सभी द्वीपों की विस्तृत जानकारी उस समय के ज्ञान के भण्डार को उल्लेखित करती है। हमें अपने भूत से अवगत कराती है। अनुष्ठानों में कहे जाने वाले 'जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्ते भारतदेशे' की ऐतिहासिकता और इस भूभाग के लोगों के बीच सांस्कृतिक सौहार्दता को उल्लेखित करती है। अत: पुराणों में वर्णित भूखंडों के विश्लेषणात्मक अध्ययन से पता चलता है कि हमारे पुरखों की भौगोलिक जानकारी बहुत सटीक थी। ऐसा तभी हो सकता है जब इन सभी भूखंडों में बहुत दिनों तक भ्रमण किया जाए और विश्लेषण कर के उसे पंक्तिबद्ध किया जाए। अब समय आ गया है कि हम अपने मनीषियों के भौगोलिक खोजों में योगदान को उद्धृत करें और संसार तक पहुचाएँ। हम लोग भी भौगोलिक वस्तुओं का विस्तृत रूप से वर्णन करने के लालसा अपने अंदर जगाएँ, जो आने वाली पीढ़ी के लिए ज्ञानवर्धक हो।

एच-2417, प्रतीक एडिफिस,
सेक्टर 107, गौतमबुद्ध नगर,
नोएडा- 201301 (उ. प्र.)
मो.-9716870230

उत्तर क्षेत्रीय युवा लेखक सम्मिलन

नरेन्द्र कोहली के उपन्यासों में चित्रित पौराणिक कथाओं का नवीन परिदृश्य

- अनिता पी.एल.

जन्म - 12 अक्टूबर 1977।
जन्म स्थान - एरणाकुलम (केरल)।
शिक्षा - एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.।
रचनाएँ - तीन पुस्तकें प्रकाशित।

साहित्य मानव समाज की सांस्कृतिक धरोहर है। साहित्य देश के इतिहास और संस्कृति का निर्माण करता है। साहित्य रचना ऐसी मानव क्रिया है जो सामाजिक जगत से सामग्री ग्रहण कर उसे एक विधान में इसतरह गुंफित करती है कि व्यक्ति उसे पढ़कर या देखकर मुग्ध हो जाए, उसमें तल्लीन हो जाए। जो कृति इतना काम करने में सक्षम होती है, उसे ही हम साहित्य कृति कहने का दावा करते हैं। प्रत्येक युग में युगीन आवश्यकताओं के अनुसार साहित्य के नए-नए रूप आकार लेते हैं। साहित्य कभी निरुद्देश्य नहीं होता। किसी न किसी उद्देश्य को समाज के सामने लाने की उद्देश्य से ही साहित्य सृजन होता है। किसी देश को पूरी तरह जानना चाहे तो उसी देश का साहित्य हमें मार्ग दर्शन देने में सहायक सिद्ध होता है। साहित्यकार की दृष्टि इतनी पैनी और सूक्ष्म होती है कि समाज में व्याप्त सत्-असत् को, अत्याचारों को, शोषणों को पर्दाफाश करते हैं।

उपन्यास मानव जीवन की संपूर्णता को यथावत प्रस्तुत करने में सक्षम है। उपन्यास का काम इस नए युग के नए मानव की वास्तविकताओं और समस्याओं को प्रस्तुत करना है, जो आधुनिक सभ्यता के साथ उत्पन्न हुए हैं। उपन्यासकार के लिए आज मानव जीवन का कोई पक्ष अछूता नहीं रहा। मानव जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक धार्मिक आदि सभी पक्ष बहुत खुलकर आज उपन्यासों में आने लगे हैं। स्वाधीनता के बाद हिन्दी उपन्यास साहित्य में अनेक विषयगत एवं रचनागत प्रयोग हुए हैं।

हर एक साहित्यकार का अपना अलग-अलग दृष्टिकोण होता है, जिसके अनुसार वह साहित्य सृजन करता है। उनकी रचनाओं से हमें यह बात ज़ाहिर होता है कि वह अपने समाज के प्रति कितने जागरूक है? और समस्याओं को सुलझाने में उनकी प्रतिक्रिया कितनी है? वास्तव में लेखक की प्रतिक्रिया पाठकों के लिए ऊर्जा बन जाती है। लेखक अपनी विशेष जीवन दृष्टिकोण पर दृढ़ रहते हुए समाज की हर विडंबना को, हर सच्चाई को साहस से उद्घाटित करता जाता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में कालजयी मनीषी कथाकार के रूप में नरेन्द्र कोहली प्रख्यात हैं। उन्होंने उपन्यास, नाटक, कहानी, व्यंग्य, निबन्ध, जीवनी, संस्मरण, आलोचना, बालसाहित्य, कविता जैसी साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलायी है। उनके कई उपन्यासों को महाकाव्यात्मक कहा जा सकता है। पौराणिक एवं ऐतिहासिक चरित्रों के माध्यम से आधुनिक समाज की समस्याओं का विश्लेषण कोहली की अन्यतम विशेषता है। अत: उनको सांस्कृतिक-राष्ट्रवादी साहित्यकार कहा गया है। उनकी रचनाओं पर भारत की पारंपरिक जीवन दृष्टि का गहरा प्रभाव पड़ा है।

नरेन्द्र कोहली पुराकथाओं को समकालीन सन्दर्भों से जोड़कर युगीन समस्याओं को मुखरित करने में विशेष रूप से समर्थ है। रामायण और महाभारत के विस्तृत कथा सन्दर्भों को कोहली जी ने अत्यन्त सरलता से, लेकिन तर्क और युक्तिपूर्ण ढंग से वर्तमान से जोड़ा है। रामायण कथा से संबन्ध उपन्यास है, अभ्युदय जो पाँच शीर्षकों में- दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर, युद्ध भाग-1, युद्ध भाग-2 में विभक्त है।

अभ्युदय 1971 के भारत पाकिस्तान युद्ध के दौरान जो भीषण नरहत्या हुई उसने कोहली के मन पर बड़ा आघात किया, तभी उन्होंने रामकथा के उस संदर्भ को स्मरण किया जब राक्षसों द्वारा निरपराध ऋषि, महर्षि को मारने और उनका वंशनाश करने का भीषण कार्य हो रहा था। फलस्वरूप उन्होंने अभ्युदय उपन्यास की रचना की। यह उपन्यास रामकथा के उस सन्दर्भ का पुनराख्यान नहीं है बल्कि उस माध्यम से वर्तमान समाज का प्रत्यक्षीकरण है।

तात्कालिक अन्धकार, निराशा, भ्रष्टाचार एवं मूल्यहीनता के युग में नरेन्द्र कोहली ने ऐसा कालजयी पात्र चुना है जो भारतीय जनता के लिए हमेशा फक्र की बात रहेगा, इसमें कोई सन्देह नहीं। कोहली जी ने भगवान राम को भक्तिकाल की भावुकता से निकालकर आधुनिक

यथार्थ की ज़मीन पर खड़ा कर दिया। उनका आग्रह है कि मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा हो। वर्तमान में चारों ओर जो मूल्य च्युति हो रही है उसकी ओर समाज का ध्यान आकर्षित करना भी उनका लक्ष्य है। नैतिक मूल्यों पर विश्वास करने वाले कोहली, राम के पात्र को चुनकर अत्यन्त सराहनीय कार्य किया है। कोहली जी का स्वप्न है कि भारतीय आदर्शों का पुनरुत्थान हो। क्योंकि वर्तमान समय में हमारे भारत में सब प्रकार के आदर्शों की पराजय हो रही है। आदर्शों को लेकर जीनेवालों को अनेक कठिनाइयों और षड्यन्त्रों से गुज़रना पड़ता है।

युग-युगान्तर से प्राचीन होते जा रहे राम कथा को अपने राम केन्द्रित उपन्यासों के द्वारा वर्तमान के अनुकूल प्रस्तुत करके रामकथा के गरिमा एवं रामायण के जीवन मूल्यों को लेखक ने सम्यक् निर्वाह किया है। रामायण कथा की मूल घटनाओं को परिवर्तित किए बिना उसने जो प्रयत्न किया है, वह सराहनीय है।

किस प्रकार एक उपेक्षित और निर्वासित राजकुमार अपने आत्मबल से शोषित, पीड़ित एवं त्रस्त जनता में नए प्राण फूँक देता है। उसका उत्तम उदाहरण है कोहली जी का राम केन्द्रित उपन्यास। इन उपन्यासों के माध्यम से कोहली जी ने तत्कालीन भारत के सामाजिक, राजनैतिक वातावरण का सजग अवलोकन किया है। एक-एक उपन्यास को लेकर चिन्तन-मनन करने पर एक बात तो अवश्य सामने आती है कि, हम कैसे मूल्यों से दूर हो रहे हैं? और अपने भारतीय आदर्शों से कितना दूर हो गया है? सिर्फ प्रश्न चिह्न मात्र खड़ा करना उपन्यासकार का लक्ष्य नहीं है कि बल्कि कैसे हम वापस अपने आदर्शों की ओर लौट सकते हैं? इसके लिए हमें कौन सा पथ अपनाना है? उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक जीवन में व्याप्त शोषण के विविध रूपों का चित्रण कर उसके विरुद्ध जन भावना विकसित करने का प्रयास किया है ठीक वैसे ही कोहली जी ने भी अपने राम केन्द्रित उपन्यासों के ज़रिए, एक नए आदर्श रूपी भारत का निर्माण करने की भरसक प्रयत्न किया है।

'दीक्षा' उपन्यास की रचना के पीछे कोहली जी के अपने कुछ अनुभव भी जुड़े हुए हैं। बंगाल में पाकिस्तानियों का बर्बर अत्याचार और विशेषकर बुद्धिजीवियों के व्यापक संहार, बिहार में हरिजन लोगों के ऊपर हुए हत्याकांड आदि घटनाएँ उन्हें प्राचीन कथा की ओर जाने के लिए विवश करती रहीं। आज हमारे देश में दिखाई पड़नेवाली अनेक घटनाओं एवं शोषणों का सूक्ष्म चिन्तन-मनन करने पर पता चलेगा कि रावण और अन्य असुर हमारे बीच जन्म ले रहे हैं और आदर्श पुरुष राम कहीं खो गया है। हम प्रतीक्षा कर रहे हैं कि एक न एक दिन राम आएगा और हमारी रक्षा करेगा। लेकिन कोहली जी ने अपनी प्रतीक्षा को राम केन्द्रित उपन्यासों में उकेरने का प्रयास किया है। वह सफल भी रहा।

'दीक्षा' उपन्यास ऐसी नवीन उद्भावनाओं को लेकर प्रकट हुई है। राम कथा का वर्णन करना मात्र उनका लक्ष्य नहीं था। बल्कि राम के चरित्र और कार्यों का तत्कालीन सामाजिक परिप्रेक्ष्य में मूल्याकंन करना चाहते थे। उन्होंने पौराणिक कथा में दिखाई पड़ने वाली काल्पनिकता और अलौकिकता से राम को मुक्त करके तार्किक और मनोवैज्ञानिक सूझबूझ से कथा का नया संस्कार किया।

'दीक्षा' उपन्यास के द्वारा लेखक ने दो मुद्दों को पाठकों के सम्मुख रखने की कोशिश की है। एक जो गुरुकुल की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण का विश्वामित्र के आश्रम में आना, ऋषिकुल बुद्धि और चिन्तन के केन्द्र हैं। राजा का प्रथम कर्तव्य है कि इनकी रक्षा करना। प्रतिगामी राक्षसी शक्तियाँ इन केन्द्रों का नाश कर रही थीं। विश्वामित्र ने इनके लिए राम को अपना माध्यम बनाया और दीक्षित किया। दूसरी प्रमुख मुद्दा दो राष्ट्रों के बीच सौहार्द स्थापित करने को लेकर है। जिसको विश्वामित्र ने राम और सीता के विवाह द्वारा पूरा किया। पूरे उपन्यास में हम राम को एक आज्ञाकारी चरित्र के रूप में देखते हैं। विश्वामित्र ने अपनी रक्षा के लिए राम को जानबूझकर ही चुना, इस चयन के पीछे का उपन्यासकार का तर्क है कि, जो अन्याय सहता है वही उस अन्याय के प्रतिरोध और प्रतिशोध कर सकने में पूर्ण सक्षम होता है। उनका मतलब है स्वयं राम अपने ही राज्य में अन्याय सह रहे थे, तब वह न्याय करने में कभी पीछे नहीं होंगे। यह तर्क वास्तव में सत्य निकला। राम ने ताड़का, सुबाहु, मारीच के अन्याय को रोकने के लिए उनका वध कराकर आश्रमवासियों में जीवन और विश्वास का संचार करते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति सभी के हृदय को जागरूक करने वाली थी। इस प्रकार उनके द्वारा समाज में जागृति लाने का प्रयास भी लेखक ने किया है। इस उपन्यास में राम ईश्वरीय राम न होकर मानवीय प्रतीत होते हैं और वे इसी रूप में सर्वत्र दिखाई देते हैं। वह आधुनिक मानव की भाँति संघर्ष करते हुए दिखाई पड़ते है, अपनी सौतेली माँ के कारण अपने पिता से तिरस्कार सहन करनेवाला एक सीधा सादा बेटा बन जाता है। परंपरागत कथा से राम को अलग करके सच्चे मानव के रूप में चित्रित करके उपन्यास में नवीनता लाने की कोहली जी की कोशिश वास्तव में सराहनीय है।

जब एक रचना अलौकिकता के स्तर से नीचे उतरकर पाठकों के बीच

रहने योग्य बन जाती है, तब पाठक उस रचना को आत्मसात कर लेता है। कथा में वर्णित घटनाओं में तत्कालीन समाज के स्वरूप को देखकर और भी प्रभावित हो जाते हैं। कोहली जी ने अपने उपन्यासों के माध्यम से तत्कालीन भारत के सामाजिक, राजनैतिक वातावरण का सजग अवलोकन किया है। तत्कालीन समाज की घटनाओं को नई दृष्टि से मूल्यांकन किया है। राजनैतिक सतर्कता, त्याग और वीरता का एक महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ दीक्षा उपन्यास में राम के चरित्र के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है। राम विश्वामित्र को वचन देते हैं–'ऋषिवर, मैं आपको यह वचन देता हूँ कि मेरे जीवन का लक्ष्य राज–भोग नहीं, न्याय का पक्ष लेकर लड़ना, अन्याय का विरोध करना, वैयक्तिक स्वार्थों का त्याग, जन कल्याण के मार्ग में आनेवाली बाधाओं का नाश तथा सब के हित और सुख के लिए अपने जीवन को अर्पित करना होगा।' **(दीक्षा, नरेन्द्र कोहली, पृ. 51)** राम का लक्ष्य पारंपरिक और धार्मिक संस्कृति को बनाए रखने तथा इस मार्ग से जन जीवन की सुरक्षा और मंगल करना है।

'अवसर' राम वनवास के संदर्भ पर आधारित है। कैकेयी की कूटनीति, रामवनवास, दशरथ की मृत्यु, सीता और लक्ष्मण दोनों का राम के साथ वन की ओर जाना जैसी पौराणिक घटनाओं के माध्यम से लेखक ने यहाँ आधुनिक राजनीति और शासकों की दुर्बलता जैसी बातों का वर्णन किया है। इसके विविध पात्रों द्वारा कथाकार ने नागरिकों का आह्वान किया है कि वे जाग उठें, अत्याचारों, अधर्मों और भ्रष्टाचारों से युक्त शासकों के विरुद्ध आवाज़ बुलन्द करें, स्वयं अपनी रक्षा करें। इस उपन्यास में भी कोहली जी ने समूचे राजनैतिक वातावरण का चित्रण किया है। राजनीति के संबन्ध में राम की अपनी मान्यता देखिए–'राज्य जन कल्याण के लिए होना चाहिए। प्रजा के दमन और हत्या केलिए नहीं, अत: राजसिंहासन से अनावश्यक चिपकना मेरे लिए आसक्ति से अधिक कुछ नहीं और आसक्ति सदा अन्याय की जननी होती है।' **(अवसर, नरेन्द्र कोहली, पृ. 65)** इस उपन्यास में राम का ऐसा चित्र अंकित हुआ है, जहाँ राम वनवास का दंड पाकर निराश तो नहीं होते बल्कि अपने सम्मुख आए जीवन चक्रों को घुमाते हुए आगे ही ले जाते हैं। जीवन की मुश्किलें बढ़ने पर भी राम अपनी निष्ठा में अडिग रहकर अपनी चेतना को गतिशील कर देते हैं। आधुनिक युग में मानव चेतना के एक प्रमुख अंग के रूप में गतिशीलता स्वीकृत हुई है, यह एक गत्यात्मक प्रक्रिया है, जो प्रगति का रास्ता खोल देती है। इससे व्यक्ति, परिवार समाज और राष्ट्र युगानुसारी कर्मों में प्रवृत्त होते जाते हैं।

कोहली जी ने दशरथ और अयोध्या के माध्यम से आज के राजनैतिक वातावरण का ही चित्र खींचा है। हम जानते हैं कि सत्ता में आते ही व्यक्ति अपनी सुख–सुविधाओं की ओर अधिक उनमुक्त होते हैं। अपने स्वार्थ के लिए सत्ता का उपयोग करता है। जनता का रक्षक नहीं बल्कि भक्षक बन जाता है। दशरथ में हम आज के शासक को देख सकते हैं। अवसर उपन्यास में कोहली जी ने अयोध्या के महल और वहाँ के षड्यन्त्र का चित्रण और राम के वनवासी जीवन के प्रारंभ का वर्णन किया है। राम अपने लक्ष्य पूर्ती के लिए वन गमन स्वीकार कर अपनी कर्म भूमि की ओर अग्रसर होते हुए चित्रित किया है। अपने कर्तव्यों के प्रति राम इनता निष्ठावान है कि वह लक्ष्मण से कहता है– 'यह वनवास नहीं, मेरे जीवन का अभ्युदय है, संकीर्ण राजनीति से उबर, व्यापक मानवीय कर्तव्य निभाने का अद्वितीय अवसर है।' **(वही पृ. 64)** राम चित्रकूट के शोषित, उपेक्षित लोगों को संगठित कर अन्याय और अत्याचार की ओर अग्रसर होती शक्तियों का प्रतिकार कर उनके मार्ग में प्रतिरोध उत्पन्न करते हैं।

कोहली जी ने अपने उपन्यासों को नए रूप में प्रस्तुत करने की कोशिश की है। वर्तमान युग का प्रधान लक्षण इसकी बौद्धिकता है। समस्त तथ्यों को बुद्धि की कसौटी पर कस कर ही आज का मानव स्वीकार करता है। राम जैसे पात्र के माध्यम से लेखक यह दिखाने की भरसक प्रयत्न किया है कि सिर्फ एक व्यक्ति के द्वारा संघर्ष करने से समाज में परिवर्तन नहीं ला सकते इसके लिए शोषण से पीड़ित पूरी जनता को जागृत कराना है। राम के अनुसार 'जन सामान्य में जागृति लाकर, उन्हीं को प्रबुद्ध बनाकर, उसी पीड़ित, जागृत जनता के बीच में से तैयार की गई सेना से हो सकता है।' **(वही पृ.65)** कोहली जी राम द्वारा उपेक्षित वर्गों को संगठित कराकर संघर्ष करने के लिए आह्वान देते हैं। भारत को एक सशक्त राष्ट्र के रूप में निर्मित करने की उद्देश्य से ही कोहली जी ने राम जैसे सशक्त पात्र को चुना।

कोहली जी ने पुराण कथा को नए सिरे में प्रस्तुत करके यह दिखाने की कोशिश की है कि भारत का मंगलपूर्ण भविष्य तभी संभव है जब हम पाश्चात्य और पौरुषत्य संस्कृतियों के गुणात्मक और युगानुरूप परिवर्तनों को समन्वित रूप से आत्मसात करके अपना पथ प्रशस्त करें, नहीं तो एक न एक दिन भारत अपना अस्तित्व खो बैठेगा। वर्तमान भारत की अनेक समस्याओं को जैसे राजनीतिक खोखलेपन, नैतिक मूल्यों का ह्रास, स्त्री के शोषण, भ्रष्टाचार, सांस्कृतिक पतन, आदि को अपने उपन्यासों में राम कथा के माध्यम से हमारे सामने रखने की कोशिश की है।

परिवार मनुष्य को सुरक्षा और शांति का वातावरण देता है। परिवार में रहकर ही व्यक्ति का विभिन्नमुखी विकास होता है, यही व्यक्ति–जीवन नियंत्रित और नियमित होता है। परिवार के सदस्यों के स्नेह

और आत्मीयतापूर्ण आपसी व्यवहारों से मानवीयता की भूमिका तैयार होती है, जिससे सामूहिक चेतना का भी उदय होता है। फलत: राष्ट्रीय और भावात्मक एकता दृढ़ होती है और संपूर्ण जनता शांतिपूर्ण जीवन बिताने के लायक हो जाती है। अवसर में संयुक्त परिवार के सदस्य है राम। वह पूरा परिवार कई प्रकार की विडंबनाओं से भरा था। सभी सदस्य एक-दूसरे को असंतोष और आशंका की दृष्टि से देखते थे। इन सारी बातों से राम अवगत थे। राज्याभिषेक के पूर्व एक बार सीता से राम कहते हैं-'मुझे लगता है, सीते! इस कुटुंब में अनेक सन्देह, शंकाएँ, विरोध, द्वन्द्व, ईर्ष्याएँ, स्वार्थ, द्वेष ओर जाने क्या-क्या विषैले जीव जंतुओं के समान मौन सो रहे थे। मेरे युवराज्याभिषेक की चर्चा से वे सारे जीव-जंतु जाग उठे हैं। वे परस्पर लड़ेंगे। इस राजप्रासाद में बहुत कुछ विषैला हो जाएगा। इधर माँ के मन में आशंकाएँ हैं, उधर पिताजी के मन में। और मैं कैसे कह दूँ, सीते! कि मेरे मन में आशंका नहीं है।' **(वही पृ. 39)**

कोहली जी ने नारी संबन्धित अनेक प्रसंगों को राम केन्द्रित उपन्यासों में लाने की कोशिश की है। 'दीक्षा' उपन्यास में अपने पति द्वारा उपेक्षित जीवन व्यतीत करने वाली कौशल्या को देख सकते हैं। उस समय यह परंपरा थी कि धनाड्य एवं राजा माहाराजा के अनेक पत्नियाँ होती थीं। ये स्त्रियाँ अपने व्यक्तित्व, अपनी अभिलाषाओं को परिवार की सुख-सुविधा के लिए बलिदान कर देती थीं। दशरथ की दूसरी पत्नी सुमित्रा कौशल्या से एकदम अलग थी। उसकी आत्मा ने उस समय के पुरुषों द्वारा बहुविवाह की प्रथा को स्वीकार नहीं किया, तथा इस भावना का खुलासा दशरथ के सम्मुख कर भी देती। ऐसे क्रान्तिकारी विचार के होते हुए भी उसका ऐसे पुरुष के साथ विवाह होना इस बात का सबूत है कि उस समय नारी के अस्तित्व, उसके विचारों की कोई मान्यता नहीं थी। कैकेयी का चित्रण राम के प्रति क्रूर चित्रित किया है लेकिन इसके पीछे वास्तव में दशरथ के प्रति प्रतिशेध की भावना थी। 'मैं इस घर में अपने अनुराग का अनुसरण करती हुई नहीं आई थी। मैं पराजित राजा की ओर से विजयी सम्राट को संधि के लिए दी गई एक भेंट थी। सम्राट और मेरे वय का भेद आज भी स्पष्ट है। मैं इस पुरुष को पति मान पत्नी की मर्यादा निभाती आयी हूँ, पर मेरे हृदय से इनके लिए स्नेह का उत्स कभी नहीं फूटा। ये मेरे माँग का सिंदूर तो हुए, अनुराग का सिंदूर कभी नहीं हो पाए। मैं इस घर में प्रतिहिंसा की आग में जलती, सम्राट से संबन्धित प्रत्येक वस्तु घृणा करती हुई आई थी।' **(वही पृ. 48)**

इसके अलावा अहल्या, वनजा आदि स्त्री पात्रों के द्वारा भी स्त्री मानसिकता को दर्शाने की कोशिश की है। 'अवसर' उपन्यास में सीता को एक आदर्श नारी के रूप में चित्रित किया है। सीता आधुनिक स्वतंत्र और स्वावलंबी नारी का प्रतिनिधित्व करती है। नारी-पुरुष संबन्धों की समता समसामयिक युग की एक उल्लेखनीय विशेषता है। यह हम सीता स्वयंवर के समय देख सकते हैं। कोहली जी ने नारी संबन्धित अनेक प्रसंगों से अपने उद्देश्य को स्पष्ट किया है। नारी के ऊपर होने वाले शोषण आदिम काल से ही चलते आ रहे हैं, इसमें आज भी परिवर्तन नहीं हुआ है। पुराण कथाओं में राक्षस जाति, और असुर लोग हैं तो आज असुरों के रूप में जन्मे मनुष्य ही करते हैं। शासन का भार सँभालने की शक्ति भी स्त्री में है, क्योंकि राम निषादराणी से निषादराज्य पर अंकुश लगाने को कहता है, और यह विश्वास भी दिलाता है कि न वे स्त्री का अंकुश मानें, न आप पुरुष का बंधन मानें, किंतु बुद्धि, विवेक, संतुलन और प्रेम की मर्यादा तो सब ही मानेंगे। अपने इन्हीं गुणों का उपयोग करना। आपकी प्रजा भाग्यवान है कि उन्हें आप जैसी राणी मिली।' **(वही पृ. 94)**

कोहली जी जैसे सफल साहित्यकार हमेशा जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का परीक्षण, निरीक्षण करते रहते हैं, और जीवन की जटिलताओं से नए-नए अनुभव प्राप्त करता है। उन्होंने सिर्फ वर्तमान भारत को ही नहीं देखा बल्कि भविष्य के भारत को भी ध्यान में रखकर ही रचना की। जीवन के प्रति सबका अपना-अपना दृष्टिकोण है। लेखक भी जीवन के प्रति अपना एक दृष्टिकोण रखता है। कोहली जी ने भारतीयों की सांस्कृतिक परंपरा को बनाये रखने के लिए अपने राम केन्द्रित उपन्यासों में जो प्रयास किया है वह बिलकुल सफल रहा।

कोहली जी के राम केन्द्रित उपन्यास को पढ़कर कभी भी हमें नहीं लगा की वह किसी अपरिचित और अद्भुत देश की कथा है। खुद उन्होंने अपने राम केन्द्रित उपन्यासों के संबन्ध में कहा है कि-'यह किसी अपरिचित और अद्भुत देश तथा काल की कथा नहीं है। यह इसी लोक और काल की, आपके जीवन से संबन्धित समस्याओं पर केन्द्रित एक ऐसी कथा है जो, सार्वकालिक और शाश्वत है और प्रत्येक युग के व्यक्ति का इसके साथ पूर्ण तादात्म्य होता है।' **(अवसर × दीक्षा, नरेन्द्र कोहली, मुख पृ.)**

इस में कोई संदेह नहीं है कि अखिल मानवता को ऊँचा उठाने वाली शक्ति नरेन्द्र कोहली जी के राम केन्द्रित उपन्यासों में है।

सह आचार्य
हिन्दी विभाग, महाराजा कॉलेज (सरकारी स्वायत्त)
एरणाकुलम जिला-682011 (केरला)

बौद्ध भिक्षुओं की दीक्षा पद्धति एवं वेशभूषा

- संगीता सिंह

जन्म स्थान – हस्तिनापुर मुरार, ग्वालियर (म.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

भारत देश की संस्कृति में प्राचीन काल से ही साधु-संतों का विशेष महत्व रहा है। जब कभी समाज के कल्याण या समाज के पथ प्रदर्शन की बातें की जाती हैं तो सबसे पहले साधु-संतों को याद किया जाता है। कहा भी जाता है जिसने स्वयं (आत्म) को साध लिया वह साधु है। अर्थात् जीवन की भोग विलासिता से दूर रहकर समय सापेक्ष ऐसे उदाहरण प्रस्तुत करना जिसमें केवल मानवोद्धार की बात हो। जिसका जीवन समाज के लिए आदर्श माना जाता है। ये साधु-संत ही अपने ज्ञान और तप के माध्यम से समाज को समस्याओं से मुक्ति दिलाने का कार्य करते हैं। भारत में विभिन्न जाति, धर्म, संप्रदाय के लोग निवास करते हैं। जिनकी अपनी अलग संस्कृति, रीति रिवाज, परिवेश हैं। हमारे देश में अनेकता होकर भी एकसूत्र में बँधे होने के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण देखने को मिलते हैं। इन साधुओं को भिन्न-भिन्न जाति धर्मों में भिन्न-भिन्न नाम दिए गए हैं। जिन्हें हिंदू धर्म में साधु, बौद्ध धर्म में भिक्षु, जैन धर्म में मुनि एवं इस्लाम धर्म में फकीर कहा गया है। सबके मार्ग अलग हैं लेकिन उद्देश्य एक है। ईश्वर को प्राप्त करने के साधन अलग हो सकते हैं पर साध्य सभी का एक है।

सनातन संस्कृति से कई धर्मों का उद्भव हुआ है जिनमें से जैन एवं बौद्ध धर्म प्रमुख हैं। मैं अपने शोध पत्र में मुख्य रूप से बौद्ध धर्म की दीक्षा पद्धति एवं वेशभूषा पर अपने विचार प्रस्तुत करना चाहती हूँ।

श्रामणेर या उपासक-दीक्षा के प्रथम चरण में श्रामणेर या शिष्य(श्रावक) बनकर बौद्ध बिहार (सारनाथ, नागपुर इत्यादि प्रमुख बिहार) में रहना होता है। श्रामणेर बनने के लिए व्यक्ति का केश कंपन (सिर मुड़वाना) कराया जाता है, भौंह भी बनवा दी जाती हैं। चेहरे को आकर्षित करने वाले सभी कारणों को दान करवा दिया जाता है। मुड़े हुए सिर पर हल्दी का लेप लगाते हैं और सफेद वस्त्र धारण करते हैं। श्रामणेर प्रात: चार बजे उठकर नहा धोकर, ध्यान साधना या विपश्यना (अर्थात् योग साधना के माध्यम अपने आपको विशेष देखना) करते हैं।

पाँच बजे तथागत गौतम बुद्ध को पुष्पांजलि अर्पित कर एवं मोमबत्ती जलाकर बौद्ध वंदना, मंगलपाठ और फिर परित्राण पाठ (दु:ख, पीड़ा, विपत्ति को दूर करने के लिऐ यह पाठ) किया जाता है। छ: बजे स्वल्पाहार ग्रहण करते हैं। उसके बाद मौन धारण कर धम्म कक्ष या हॉल में प्रवेश करते हैं। मौन व्रत का कठोरता से पालन किया जाता है। इस समय श्रामणेर आपस में इशारे भी नहीं कर सकते हैं। चूँकि भिक्षु एकाहार का प्रण शीलों का पालन करते हुए लेते हैं इसलिए बारह बजे से पहले आवश्यक रूप से भोजन ग्रहण कर लेते हैं। फल को खाने के लिए किसी भी प्रकार की धातु या औजार का प्रयोग नहीं करते हैं। कोई फल बगैर काटे खाते हैं। श्रामणेर को बहुत ही सीमित चीजों को जीवन में उपयोग में लेने की अनुमति होती है। अत्यंत उपयोगी सामग्री को ही अपने साथ रख सकते हैं जिसे अष्ट परिष्कार कहा जाता है। यथा –

1.चीवर बौद्ध भिक्षु को अपने शरीर पर केवल चीवर ही धारण कर सकता है। जो तीन वस्त्रों से मिलकर पूर्ण होता है एकांगी, अंतर – वासक, उत्तर-ओश या संघाटी।

2.पानी छानने का कपड़ा सदैव एक भिक्षु के साथ होना चाहिए ताकि सुदूर क्षेत्रों में भिक्षाटन करते समय वनमार्ग में मिलने वाले जल को छान कर पिया जा सके।

3.उस्तरा-धम्म के उपदेशों का पालन करते हुए भिक्षुओं को सदैव दाढ़ी, मूँछ और केश कंपन किया हुआ होना चाहिए।

4. कमर से लपेटने वाली पेटी या कमर से लपेटने के लिए वस्त्र।

5. भिक्षापात्र-भिक्षुओं का भिक्षापात्र गोलाकार मटकीनुमा होता है। जिसमें पकड़ने के लिए कुंडा नहीं होता है। चीवर के रंग के कपड़े से वह चारों ओर से ढँका हुआ रहता है। उसे टाँगने के लिए उसी कपड़े से बनी पट्टी लगी होती है जिससे उसे कंधे पर आसानी से टाँगकर भिक्षु भिक्षाटन पर निकलते हैं।

भिक्षा पात्र :- भिक्षा लेते समय मिलने वाली हर प्रकार की खाद्य सामग्री (चाहे मीठी, खट्टी, या नमक मिर्च या फलादि, गीली और सूखी) को उसी पात्र में रखते हैं। और जो भी भिक्षा में मिले खाद्य

सामग्री है उसे मार्ग में बौद्ध विहार पड़ता है तो सभी भिक्षु विहार में एक साथ बैठकर भोजन ग्रहण करते हैं। नहीं है तो किसी वृक्ष के नीचे बैठकर भोजन ग्रहण करते हैं। भोजन ग्रहण करने के पश्चात् भिक्षा पात्र को पौंछ कर साफ करके टाँग दिया जाता है।

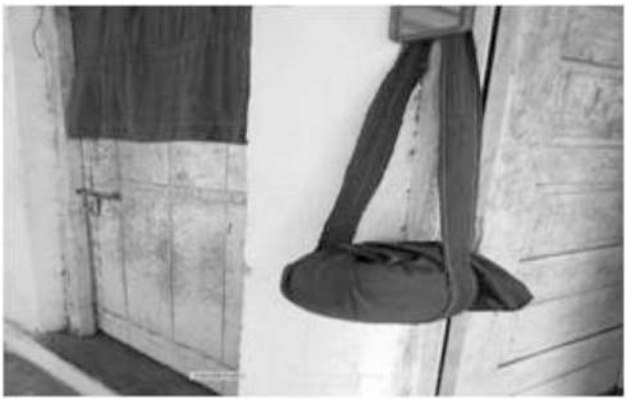

6.सुई धागा–बौद्ध 'अष्ठ परिष्कार' में सुई धागा को एक महत्त्वपूर्ण एवं आवश्यक वस्तु के रूप में साथ रखने हेतु बताया है।

भंते जीवक जी द्वारा बताया गया कि बौद्ध धर्म के उपासक बनने के लिए दो प्रकार की दीक्षा ली जाती है। प्रथम जिसमें व्यक्ति श्रामणेर या उपासक बनकर दस शीलों (शील, दान, उपेक्षा, नैष्क्रम, वीर्य, क्षांति, सत्य, अधिष्ठान, करुणा, और मैत्री) का पालन करता है। उसे अनागारिक भी कहते हैं। एक उपासक गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है वह चीवर धारण नहीं करता है। गृहस्थ होकर भी भिक्षुओं के सहयोग हेतु तत्पर रहता है। आजीवन संघ के उपदेशों का पालन करता है।

भिक्षु या परिव्राजक–जब एक श्रामणेर पिछत्तर सेखियों (शीलों) का ज्ञान अर्जित कर तथा वह बौद्ध संस्कृति को पूर्णत: अपने जीवन में धारण कर लेने एवं एक उपासक (जो भिक्षु बनने प्रक्रिया में है वह उपासक) के रूप में लगभग दस वर्ष का जीवन व्यतीत करने के पश्चात् उसकी 'उपसंपदा' की जाती है। उपसंपदा होने पर श्रामणेर या उपासक 'भिक्षु' या 'भंते' कहलाता है।

उपसंपदा होने के दस वर्ष तक भिक्षु जीवन व्यतीत करते हुए विभिन्न देशों में धम्म के कार्यक्रमों में नियमित भागीदारी करने के अनुभव और अपने धर्म के प्रचारक के रूप में सक्रिय भूमिका में रहते हुए, भंते बनने के जीवन काल के दस वर्ष बाद उनके नाम के आगे 'थैरो' शब्द लगा दिया किया जाता है। जो वरिष्ठ या बुजुर्ग होने का सूचक शब्द है। थैरो शब्द विशेष उपाधि के रूप में नाम के साथ जोड़ दिया जाता है।

जीवक थैरो जी :– थैरो बनने के दस वर्ष बाद 'महाथैरो' की उपाधि से विभूषित किया जाता है।

बौद्ध धर्म में भी संस्कारों को विशेष महत्व दिया जाता है। जिन्हें बोद्रो कहते हैं। बौद्ध धर्म में सभी संस्कार भंते द्वारा ही संपन्न कराए जाते हैं। उपासक माता पिता अगर गर्भस्थ शिशु को अगर बौद्ध धर्म का उपासक बनाना चाहते हैं तो वे अपने गर्भस्थ शिशु को पेट में ही तीन महीने की दीक्षा देते हैं। जो तीसरे महीने से सातवें महीने तक होती है। गर्भवती स्त्री प्रतिदिन प्रात: उठकर स्नान कर घर में उपासक द्वारा या विहार में जाकर भंते द्वारा बौद्ध वचनों का अध्ययन एवं पालन करती है जिसे मंगल संस्कार कहा जाता है।
दूसरा नामकरण संस्कार, तीसरा कर्ण छेदन संस्कार, इसी क्रम में केश कंपन, विद्यारंभ, विवाह संस्कार, मृत्यु संस्कार आदि।

वेशभूषा–उपसंपदा होने पर भिक्षु को विशेष प्रकार के वस्त्र धारण करने होते हैं। धम्म के उपदेशानुसार उनका रंग गेरुआ या नारंगी रंग के होने चाहिए। इस रंग के चीवर पहनने का उद्देश्य यह कि हम एक भिक्षु हैं, हमारे शरीर में मौजूद सातों चक्रों का अपना एक अलग रंग है। गेरुआ रंग आज्ञा चक्र का रंग है और आज्ञा ज्ञान–प्राप्ति का सूचक है। तीन महीने बौद्ध विहार (मठ) में धम्म उपदेशों का कठोरता से पालन करने के उपरांत भिक्षु जो वस्त्र पहनता है उनके विशेष नाम हैं, शरीर के ऊपरी हिस्से पर उत्तरासंग (एकांगी) कमर के नीचे के हिस्से में पहनने वाले वस्त्र को 'अंतर–वासक' ऊपर से ओढ़ने वाले वस्त्र (शॉल) को उत्तरओश कहते हैं।

संघाटी–सर्दी से बचाव के लिए संघाटी ही ओढ़ते। कितनी भी सर्दी हो भिक्षु अपने पारंपरिक वस्त्र ही पहनते हैं। इन सभी वस्त्रों से मिलकर चीवर बनता है।

देखा जाए तो चीवर का मुख्य वस्त्र उत्तरओश होता है। जिसमें धम्म के सभी उपदेश समाहित किए गए हैं। उत्तरओश-भंते जी द्वारा बताया गया उत्तरओश बनने में तेरह मीटर कपड़े का उपयोग होता है। जिसमें आठ डिब्बे नुमा आकार बने होते हैं जिसे अष्ट मार्ग कहा जाता है। चारों ओर बॉर्डर होता है, उन्हें चार आर्य सत्य बोलते हैं एवं पाँच खड़ी पट्टकाएँ होती हैं जिन्हें पंचशील कहते हैं। और दस आड़ी परिमिताएँ होती हैं जिन्हें दस सम्यक शील भी कहा जाता है। अर्थात् कहा जा सकता है भिक्षु का जीवन चीवर पर आधारित जीवन है। इसलिए चीवर वही धरण करता है जिसने इन सभी शीलों का कठोरता से पालन करना सीख लिया है।

जीवक थैरो जी के पास कुल तीन देशों के चीवर थे। यहाँ विभिन्न देशों के चीवर-

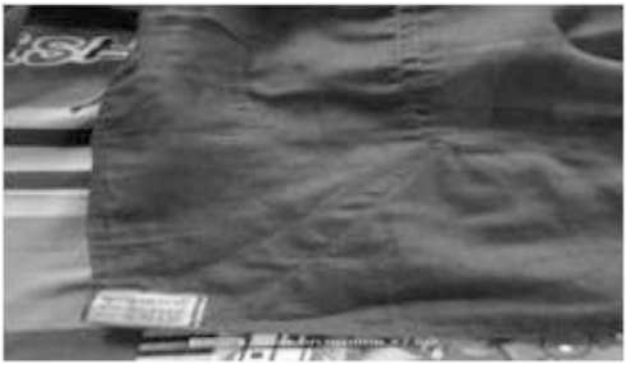

यह बर्मा का चीवर है।

इस पर पीले रंग के चिन्नी पर बर्मी भाषा में लिखा है। इसका रंग थोड़ा सा गहरा होता है। भारत में कहीं भी चीवरों का निर्माण नहीं होता है। बौद्धिस्ट देशों के लोग यहाँ आकर प्रसिद्ध मठों में दान करके जाते हैं। उन्हें ही सम्पूर्ण भारत के बौद्ध भिक्षुओं को दान स्वरूप दिया जाता है।

तिब्बती चीवर :- यह कहा जा सकता है की धर्म कोई भी हो समाज में सबके अवदान निहित है जिससे एक समृद्ध समाज का निर्माण होता है। साधु हो भिक्षु या किसी और नाम से संबोधित किया जाए, शांति, सहयोग और सद्भाव की त्रिवेणी मानवता की पीड़ा को दूर कर सकती है। भिक्षु या साधु-संतों के शब्दों में मानवता के प्रति समर्पित होने से बेहतर कोई विचार नहीं है। यही संदेश देते हैं मानवता के शांतिदूत क्योंकि वे वैज्ञानिक और धर्मनिरपेक्ष हैं। हम आशा करते हैं कि संन्यासियों के इन संदेशों से पूरित जीवन शैली मानवता के भविष्य को सुरक्षित करेगी और इसमें ही जीवन की संभावना निहित है।

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
विजयाराजे शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
मुरार ग्वालियर
मो. - 9977819671

उत्तर क्षेत्रीय युवा लेखक सम्मिलन

अर्चना पैन्यूली के साहित्य में प्रवासी जीवन और मूल्य आधारित शिक्षा

- कीर्ति माहेश्वरी

जन्म - 27 फरवरी 1981।

शिक्षा - एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.।

रचनाएँ - दो पुस्तकें प्रकाशित।

वर्तमान दौर में देश-विदेश के बीच कम होती दूरी और शिक्षा की बदलती विचारधारा हमें परिवर्तित मूल्यों से परिचित करा रही है। भारतीय शिक्षा व पाश्चात्य शिक्षा के मूल्यों में अन्तर है। पाश्चात्य शिक्षा में स्वच्छंद वातावरण, स्वप्रेरित मानसिकता, भौतिक उहापोह, पूँजीवादी संस्कृति, एकल आग्रह, मूल्यहीनता आदि दिखाई देते हैं लेकिन भारतीय शिक्षा में मूल्यपरक वातावरण रहा है। प्रवासी भारतीय का मन एक अजीब सी स्थिति में आ गया है। वह कौनसी संस्कृति की शिक्षा को ग्रहण करें। भूमंडलीकरण और डिजिटलीकरण ने दोनों संस्कृतियों की सीमाओं को खंडित कर दिया है। शिक्षा के अंतर्राष्ट्रीयकरण को बढ़ाने में इनकी अहम भूमिका रही है। भूमंडलीकरण से तकनीकी शिक्षा का तीव्र विकास हो रहा है।

'अपनी हालत का खुद अहसास नहीं है मुझको
मैंने औरों से सुना है कि परेशान हूँ मैं।'

आसी उल्दनी की यह पंक्तियाँ कह रही हैं वर्तमान समय में मनुष्य स्वयं को जानने और समझने से बहुत दूर चला गया है। इसका प्रमुख कारण पाश्चात्य शिक्षा पद्धति है जो हमें बाह्य रूप से सक्षम बनती है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करना है। साहित्य ने नैतिक शिक्षा को प्रोत्साहित किया है, राष्ट्र के विकास के लिए शिक्षा का सशक्त होना आवश्यक है। नैतिक शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को विमुक्त करना होता है लेकिन वर्तमान पाश्चात्य शिक्षा पद्धति मनुष्य को केवल नियुक्त करती है। केवल नियुक्ति उसे संतुष्टि और सुकून नहीं दे सकती। सफलता के कोई निर्धारित मानदंड नहीं होते हैं। वहीं देखा जाए तो शिक्षा के साथ 'मूल्य' या 'उसूल' हों तो जीवन के सभी लक्ष्यों को आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। नैतिक मूल्यों में शाश्वतता व सर्वकालिकता रहती है। भारतीय शिक्षा, संस्कृति, धर्म में देखा जाए तो हमें नैतिक मूल्य निर्विवादित रूप में मिलते हैं। प्राचीन भारतीय शिक्षा का मूल उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना रहा है। आधुनिक दौर में भारतीय छात्रों का रुख विदेशी शिक्षा की तरफ अत्यधिक रहा है। विदेशी शिक्षा उन्हें आकर्षित करती है क्योंकि वह शिक्षा व्यक्ति को आर्थिक रूप से भारतीय शिक्षा की तुलना में अधिक आत्मनिर्भर करती है। विदेशी शिक्षा में नैतिक मूल्यों का कोई स्थान नहीं है, वे उन्हें भौतिक रूप से सक्षम बनाते हैं। भौतिकता को केन्द्र में रखकर दी जाने वाली शिक्षा ने मनुष्य को यंत्रों से सम्पन्न किया है। उसका भौतिक जीवन सरल किया है लेकिन सम्बन्धों को सँजोये रखना नहीं हुआ। नैतिकताविहीन, मानसिकता आज के समाज का सबसे बड़ा खतरा है। पाश्चात्य वातावरण में भारतीय मान्यताओं व मानवीय मूल्यों को सँभालना मुश्किल होता जा रहा है। आज का व्यक्ति दायित्वहीन समाज को ज्यादा महत्व देता है। अपनों के लिए उसकी जिन्दगी में कोई स्थान नहीं है।

प्रस्तुत विषय के चयन की प्रेरणा :-आज के परिवर्तन के हिमायती देशों के समाज और वहाँ की भौतिकवादी संस्कृति की अतिशयता में नैतिक मूल्यों का होना बेमानी लगता है। स्वच्छन्द वातावरण, स्वप्रेरित मानसिकता, पूँजीवादी संस्कृति, मूल्यहीनता आदि के कारण मूल्यपरक समाज प्रभावित हो रहा है। पाश्चात्य देशों में शिक्षा का वातावरण स्वच्छन्दवादी और परिवर्तनगामी रहा है। वहाँ व्यक्ति नैतिक विचार से परे केवल स्वयं के बारे में सोचता है, घर-परिवार उसके लिए कोई मायने नहीं रखता है। कहीं न कहीं इस संस्कृति का प्रभाव प्रवासी भारतीयों पर पड़ रहा है। पाश्चात्य शिक्षा भारतीय प्रवासी युवाओं को अत्यधिक आकर्षित करती है लेकिन उसे वो भारतीय नैतिक मूल्य नहीं दे सकती। प्रवासीजन के लिए नैतिक शिक्षा का आधार परिवार है। युवाओं को परिवार जैसी संस्था को बचाने का भरसक प्रयास करना चाहिए।

प्रस्तुत विषय का प्रतिपाद्य :- जब कोई व्यक्ति अपनी संस्कृति से दूसरी संस्कृति में प्रवेश करता है तो वह अजीब सी स्थिति में आ खड़ा होता है। भारतीय समाज की पहली व दूसरी पीढ़ी का भारतीय सभ्यता से जुड़ाव रहा लेकिन जो तीसरी पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति में पली बढ़ी। इस तीसरी पीढ़ी में भारतीय संस्कृति के मोह और पाश्चात्य संस्कृति के मोह में द्वंद्व रहा है। इस पीढ़ी में माता-पिता चाहते थे कि इनकी शिक्षा पाश्चात्य देशों की होनी चाहिए, वही उन्हें बड़ी आसानी से रोजगार मिल जाए लेकिन साथ में भारतीय संस्कृति नहीं छूटनी चाहिए। भारत की मान-मर्यादा और मूल्यों की संस्कृति

को अपनाए, उसे सँभाल कर रखे, उसे अपनी जीवन शैली में धारण करे। इसके विपरीत भारतीय प्रवासी युवा अपनों से दूर हो रहा है, वह दैहिक संबंधों को ज्यादा महत्ता देता है। विवाह से पूर्व सम्बन्ध उसका अपना निजीपन है। माता-पिता की इज्जत और उनकी भावनाओं से कोई सरोकार नहीं होता है। भारतीय मूल्य, मर्यादा, आत्मीयता, पारिवारिक दायित्व उसे अवरोध लगते हैं। प्रवासी समाज की पहली, दूसरी और तीसरी पीढ़ी के शिक्षा ग्रहण करने के उद्देश्य भिन्न-भिन्न रहे। 'जबकि दूसरी प्रकार के प्रवासी वे हैं जो अपनी मर्जी से पढ़ाई-लिखाई करके अपनी माली हालात बेहतर करने के लिए ब्रिटेन, अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, खाड़ी देश आदि में बसने गए हैं। यह सब पहली पीढ़ी के प्रवासी हैं और इनका भारत से संपर्क लगातार बना रहता है।' **(आर्या, सुषमा, नावरिया, अजय, (संपा.), प्रवासी हिंदी कहानी : एक अंतर्यात्रा, पृ. 3)** दूसरी पीढ़ी ने शिक्षा विदेशी ग्रहण की लेकिन भारतीय संस्कारों से कहीं न कहीं जुड़े रहे। तीसरी पीढ़ी कानूनी रूप से विदेशी होकर रह गये। भारतवंशी होने के बावजूद भी उनका सम्पूर्ण समर्पण भाव विदेशी देशों के लिए रहा है।

पाश्चात्य देशों की परिवर्तनशीलता कुछ हद तक मूल्यों के विघटन के कारण है, इसका प्रमुख कारण समय के साथ समाज के मूल्यपरक मानदंड अपनी उपयोगिता खो देते हैं, नए वातावरण के अनुकूल उनका तालमेल नहीं बैठ पाता, उसी के फलस्वरूप मूल्यों का विघटन होने लगता है। ये मूल्यों का विघटन होना विदेशी माहौल की ही उपज है। अर्चना पैन्यूली का कहना है कि-'जहाँ तक सामाजिक मूल्य, संस्कार, संस्कृति और वर्जनाओं की बात है तो सभी की स्थिति एक जैसी है। वहाँ लोगों में कुछ न कुछ नैतिकता है। यह अच्छा है कि तुम्हारे देश में पारिवारिक सुरक्षा कवच है। लोग आध्यात्मिक और धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। वह अफसोस व्यक्त करती कि कैसे ये पाश्चात्य देश भावनात्मक स्तर पर शून्य होते जा रहे हैं। खून के रिश्तों में यहाँ इस कदर ठंडक जम रही है कि समाज के लिये एक समस्यापूर्ण स्थिति बनती जा रही है। हर कोई यहाँ आत्मकेंद्रित है, अकेला है। यह एकाकीपन का अहसास, असुरक्षा की भावना, युवा पीढ़ी में अधिक पनपती जा रही है जिसकी वजह से वे कई मनोवैज्ञानिक बीमारियों के शिकार बनते जा रहे हैं। आत्महत्या कर रहे हैं।' **(पैन्यूली, अर्चना, दो अकेले इंसान, पृ. 154)** विदेशी शिक्षा ने भारतीयों को अकेला जीना, ज्यादा से ज्यादा कमाना व स्वकेन्द्रीय होना सिखाया है। गिरते नैतिक मूल्य भारतीय युवाओं को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। वर्तमान भारतीय के जनमानस में यह रहता है कि विदेश गमन कर शिक्षा ग्रहण करने पर वहाँ रोजगार जल्दी से मिल जाता है।' गरीबी, बेकारी और प्रवासियों की भरमार ने यहाँ के सचेत युवक को बड़ा कंजरवेटिव बना दिया था। ज्यादा युवक-युवतियाँ पढ़-लिखकर अच्छा कैरियर बनाना चाहते थे।' **(बेदी, सुषमा, हवन, पृ. 27)** उन्हें विदेशी शिक्षा और रोजगार ज्यादा आकर्षित करते हैं।

अर्चना पैन्यूली विख्यात हिंदी साहित्यकार हैं। डेनमार्क को कर्मभूमि बनाकर प्रवासी हिंदी साहित्यकारों में इन्होंने काफी सक्रियता रखी है तथा भारतीय सभ्यता, संस्कृति के प्रति अपने विचार प्रकट किए। पैन्यूली जी ने प्रवास के दौरान के व्यक्तिगत अनुभव तथा वहाँ के प्रवासी भारतीय समाज की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है। इनका उपन्यास 'वेयर डू आई बिलांग' के कथानक में डेनिश समाज के गिरते मूल्यों को बखूबी दिखाया है। उपन्यास का भारतीय समाज अपने नैतिक मूल्यों के साथ डेनिश समाज की स्वच्छन्द वृति को भी ग्रहण करना चाहता है। वहाँ पर रहने वाला भारतीय युवा को डेनिश संस्कृति लुभावनी लगती है। सुरेश जो अपने कॉलेज के दरम्यान कई लड़कियों के साथ सम्बन्ध रखता है। उसे भारतीय मूल्य अच्छे नहीं लगते हैं यहाँ तक वो उनका उपहास भी करता है।

प्रवासी समाज की मूल्यविहीन भौतिक सफलता, भारतीय समाज के लिए बेहद खतरनाक सिद्ध हुई है। नैतिक मूल्यविहीन शिक्षा युवाओं को समाज के कर्तव्य के प्रति उदासीन बनाती है। इस सफलता के परिणामस्वरूप समाज में अनुचित गतिविधियाँ बढ़ गई है। जैसे धोखाधड़ी, जातीय या नस्लीय आधार पर उत्पीड़न, आपराधिक कार्य आदि। अर्चना पैन्यूली की कहानी 'अनुजा' में अनुजा के पति की छवि का अंदाजा उसके कार्यों से लगा सकते हैं। 'हमने लोगों से सुना कि नरेंद्र मल्होत्रा एक शिपिंग कंपनी में काम करता था। कंपनी में कुछ घोटाला करने की वजह से उसे दो साल की जेल हुई। इस घटना ने अनुजा के परिवार की सारी प्रतिष्ठा को धूमिल कर रख दिया। लोग उनसे दूरी बनाकर रखने लगे। यह भी सुनने में आया कि नरेंद्र मल्होत्रा किसी साफ-सुथरे बिजनेस में भी संलग्न नहीं है। लोगों को गलत, अवैध तरीकों से डेनमार्क में व्यवस्थित करवाता है और उनसे मुद्रा ऐंठता है।' **(पैन्यूली, अर्चना, हाइवे ई 47, पृ.16)**

प्रवासी तथाकथित शिक्षित युवाओं में हमें मूल्यहीनता दिखाई देती है जैसे-विवाहेतर शारीरिक सम्बन्ध, खुलेआम सिगरेट और शराब का सेवन, अर्धनग्न रहना, बड़ों का आदर सम्मान नहीं करना, पीढ़ीगत वैचारिक मतभेद, स्वच्छंदवादी प्रवृत्ति, यौन-शोषण में सिमटा प्रेम, जटिल दाम्पत्य जीवन के फलस्वरूप तलाक, अधूरापन, पूर्ण व्यक्तित्व की तलाश में अवैध सम्बन्ध इत्यादि। दो अकेले इंसान में पैन्यूली जी का कहना है कि -'इधर लड़की धूम्रपान करती है, जिस रफ्तार से नौकरियाँ बदलती है, उसी रफ्तार से अपने लाइफ पार्टनर। आज भी उसके पास न तो कोई ठोस जॉब है और न ही एक स्थाई जीवनसाथी। आज भी वह नि:संतान, अविवाहित है।' **(पैन्यूली, अर्चना, दो अकेले इंसान, पृ. 76)** 'हाइवे ई 47' कहानी में संदीप पेशे से प्रोफेसर है, डेनमार्क जाने पर अपनी पत्नी शुभ को साथ ले जाने का आश्वासन देता है। लेकिन उसका व्यवहार परिवर्तित हो जाता है। डेनमार्क में क्षणिक सुख के लिए ऐना के प्रति अनुरक्त होता है। वह नि:संकोच शुभ से तलाक माँग लेता है। हम देखते हैं शुभ और संदीप का विवाह अर्थहीन हो गया क्योंकि उसमें विश्वास और निष्ठा नहीं रही। संदीप

का शैक्षणिक क्षेत्र में कार्य करते हुए ऐसा व्यवहार उसकी मूल्यहीनता की पराकाष्ठा को दर्शाता है। पाश्चात्य देशों के वातावरण में मूल्यहीनता अत्यधिक दिखाई देती है। वहाँ ऑफिस या कॉलेज में काम करने वाले युवक-युवतियाँ कई दिनों तक दूसरे के साथ रह लेते हैं और जब मन भर जाता है तो अपने पार्टनर को बदल देते हैं। यहाँ के युवाओं में मूल्य दिनोंदिन गिरते जा रहे हैं, उनकी ऐसी मानसिकता भारतीय समाज के लिए घृणित और कुत्सित है। यह उनका मानसिक खुलापन नहीं है, यह यौन कुंठाएँ हैं। यह सब पाश्चात्य समाज के लिए सामान्य माहौल है लेकिन भारतीय समाज के लिए यह सब दोषपूर्ण है। प्रवासी समाज में हमें मूल्यहीन सफलता के कई दुष्परिणाम देखने को मिलते हैं। भारतीयों की ऐसे वातावरण में छवि धूमिल प्रतीत सी होती है 'वेयर डू आई बिलांग' में निर्मल रीना को कहता है-'रीना, तुझे कुछ मालूम नहीं। हिन्दुस्तान के इन लड़कों के बारे में। पश्चिम देश उन्हें बड़े आकर्षित करते हैं। यहाँ के वैभव की कथा सुनकर वे यहाँ के मोह में इतना बँध जाते हैं कि यहाँ आने के लिए कोई भी हथकंडे अपना सकते हैं-गलत गैरकानूनी तरीके।' **(वही, पृ.35)** पारिवारिक स्तर पर देखा जाये तो माता-पिता अपनी संतानों को सफल बनाने के लिए जी जान लगा देते हैं। संतान अपनी नौकरी की प्रतिबद्धता को बताकर परिवार की महत्ता को कम कर देता है। परिणामस्वरूप हमें टूटते परिवार और बिखरते रिश्ते देखने को मिलते हैं। शायर असलम कोलसरी ने लिखा है कि-

'शहर में आ कर पढ़ने वाले भूल गए,
किस की माँ ने कितना ज़ेवर बेचा था।'

पैन्यूली जी की कहानी 'मीरा बनाम सिल्विया' में विदेशी युवती विकास की पराकाष्ठा पर पहुँचे पश्चिमी देशों में सुखों से तरबतर, भावनात्मक दृष्टि से शून्य लोगों को आध्यात्मिक सुख का मशवरा देती है। पाश्चात्य संस्कृति के साथ सामंजस्य बैठाना मुश्किल है। 'कैराली मसाज पार्लर' उपन्यास में पात्र नेन्सी चार महाद्वीपों के सफर के दौरान अपने पति भी बदल देती है। हालाँकि वह एक आत्मनिर्भर युवती है लेकिन पाश्चात्य परिस्थितियों के अनुरूप वह भी ढल जाती है। वह भारत की मसाज पद्धति के आधार पर मसाज पार्लर चलाती है। नैन्सी के व्यक्तित्व हमें पूर्ण नैतिकता नहीं दिखाई देती है। वह अपनी आत्मनिर्भरता व रोजगार के साधन के लिए भारत की शिक्षा का उपयोग करती है। वह संस्कृति का अनुसरण नहीं करती है। उसे लगता है भारतीय संस्कृति में स्वच्छन्दता नहीं है। हमारे पवित्र ग्रन्थ जिसमें मूल्य आधारित शिक्षा का अपार भण्डार है जैसे- महाभारत, रामायण और गीता उनका विदेशों में प्रसार-प्रचार कर उसकी महत्ता को समझें और समझाएँ। ये काम प्रवासी पहली पीढ़ी कर रही है उनकी इतनी क्षमताएँ नहीं है जितनी तीसरी पीढ़ी की है। तीसरी पीढ़ी को यह अपनी जिम्मेदारी समझ इस काम को बढ़ावा देना चाहिए। वे अपनी कुछ भूमिका निभाते भी हैं जैसे-'मैं उन्हें पहचान न सकी' कहानी में डॉ. कृष्णन् कहते हैं-'ये विदेशी लोग विवाह की वचनबद्धता निभाना ही नहीं जानते, बड़ी जल्द ही तलाक पर उतर आते हैं। यूज एंड थ्रो कल्चर। मैं इनकी संस्कृति का अध्ययन करता रहता हूँ। बड़ी खोखली है, इनकी संस्कृति। हमारी भारतीय संस्कृति सचमुच बहुत ग्रेट है। भारत जैसी महानता कहीं नहीं है। इन विकसित देशों के पास धन है, विज्ञान है और टेक्नोलॉजी है। संसार में जब किसी को शान्ति, परम सुख, सच्चिदानन्द और आत्मा का ज्ञान चाहिए होता है, वह भारत आता है। भगवान से मिलने लोग भारत आते हैं। हमारा देश अध्यात्म की भूमि है, भारत विश्व गुरु है। जब कभी लोग उनसे उनका परिचय पूछते तो वे अपना लम्बा-चौड़ा परिचय देते, जाति से तमिल हिन्दू ब्राह्मण हूँ। बीस साल पहले अपना चेन्नई, पूर्व नाम मद्रास छोड़ कर, मुंबई, पूर्व नाम बम्बई बन गया था। आजकल स्कॉन्डिनेवियन देश डेनमार्क में जीवन आजमा रहा हूँ।' **(पैन्यूली, अर्चना, वेयर डू आई बिलांग, पृ. 229)**

अर्चना पैन्यूली के कथा साहित्य में हमें कुछ भारतीय प्रवासी पात्र ऐसे भी देखने को मिलते हैं जिनकी शिक्षा का उद्देश्य मात्र कामयाबी हासिल करना है। अर्चना पैन्यूली का उपन्यास 'पॉल की तीर्थ यात्रा' में पॉल कहता है कि-'आत्मा-परमात्मा, आस्थाएँ, उम्मीदें, विश्वास, अपेक्षाएँ। जिन्दगी के अँधियारे-उजियारे पहलू, मानव स्वभाव की विकृतियाँ, इन्सान की क्षुद्रता, बौनापन, नि:सहायता, जीवन की विषमताएँ, जिन्दगी के दायरे विस्तार, अन्तर्मन में उठने वाले सवाल। ओह यह मनुष्य जीवन कितने मसलों से भरा है। कोई भी जीवन सीधा-सपाट नहीं होता। जग बड़ी तेज़ी से बदल रहा है, जीवन उससे तालमेल बैठाने के लिए उसके पीछे भाग रहा है। जग और जीवन दोनों की तेज रफ्तार। और मैं धीमी चाल का एक पुराने किस्म का आदमी-ओल्ड फैशंड।' **(पैन्यूली, अर्चना, पॉल की तीर्थयात्रा, पृ.133)** धीमे चलने वाले मनुष्य को पसंदीदा नहीं बनाया जाता है। कामयाब होना काफी नहीं है। इस संदर्भ में 'थ्री इडियट्स' फिल्म का एक सम्वाद सटीक लगता है 'कामयाबी के पीछे नहीं, काबिलियत के पीछे भागो'। प्रवासी भारतीय अधिकतर युवा काबिलियत को पीछे छोड़ कामयाबी के पीछे भागते हैं। बदलते सामाजिक मूल्यों का प्रभाव भारतीय समाज पर भी पड़ता है। 'हैप्पी बर्थ डे गोल्डन होम' में लेखिका कहती हैं-'लेकिन आधुनिकता की होड़ में लोग यह भूल गये कि हमारी प्राचीन संस्कृति में सभी कुछ निष्कासित योग्य नहीं है। हमारी संस्कृति में कितनी ही अच्छी परम्परायें तथा नेक मूल्य हैं जिन्हें जीवित रखने की आवश्यकता है। पाश्चात्य देश हमारे आदर्श नहीं होने चाहिये। लेकिन वहाँ का हर रिवाज आज हमारे देश में है। सोचा था कि शायद उनके ओल्डएज होम का कल्चर कभी हमारे देश में नहीं आ पायेगा, मगर वह भी यहाँ आ चुका है।' **(पैन्यूली, अर्चना, दो अकेले इंसान, पृ. 64)** जिससे में भौतिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न हो जाते हैं लेकिन नैतिक मूल्य पीछे छूट जाते हैं। उनका

परिवार और समाज के प्रति कोई उतरदायित्व नहीं होता है। उनकी सफलता किसी प्रकार का आत्मिक संतोष नहीं दे पाती है। कुँवर बेचैन का कहना है कि–'**तुम्हारे दिल की चुभन भी ज़रूर कम होगी, किसी के पाँव से काँटा निकालकर देखो।**'

कहानी 'काश' में हमें दाम्पत्य जीवन के अलगावपन की हदें पार होती दिखाई देती है। इसका प्रमुख कारण भागदौड़ भरी सफल जिन्दगी है। अपनी इस सफलता के कारण एक एकेडमिशियन अपनी पत्नी को नहीं समझ पाता है। सुष्मिता अपने पति से कहती है कि– 'ध्यान तो रखते हैं मेरा, पर कोई सम्वेदना नहीं जताते। मैं तो पति के रूप में एक ऐसा अंतरंग मित्र चाहती थी, जो मेरी अपेक्षाओं, भावनाओं और शिकायतों को समझ सके।' **(पैन्यूली, अर्चना, हाइवे ई 47, पृ. 141)** बेघर कहानी में अर्चना पैन्यूली ने बताया है कि रिश्तों के बदलते प्रतिमान बच्चों के लिए घातक सिद्ध होते हैं। कहानी का पात्र राहुल मन्नू भंडारी के 'आपका बंटी' उपन्यास के बंटी की याद दिलाता है। माता अलग, पिता अलग, हाफ सिस्टर और हाफ ब्रदर ऐसी रिश्तों की संरचना में राहुल की मन:स्थिति का हम अंदाजा नहीं लगा सकते हैं। इतने रिश्ते होने के बावजूद वह स्वयं को परित्यक्त महसूस करता है। 'सुभाष सोच में पड़ गया। तेरह वर्ष का बालक राहुल किन मानसिक संवेगों से गुजर रहा है, इसका वह अनुमान लगाने की चेष्टा करने लगा। उसके माता–पिता, जो तलाक के उपरांत अपना नया परिवार बसाकर जीने लगे हैं, उनकी एक नई धुरी है, नए जीवन साथी और नए बच्चे हैं, राहुल इन परिस्थितियों को किन रूपों में ले रहा है।' **(पैन्यूली, अर्चना, कितनी माँएं है मेरी, पृ. 26)**

विस्थापन शुरुआती दौर भारतीय अप्रवासी अपनी भारतीय शिक्षा–संस्कार को पकड़े रहता है लेकिन समय के साथ उसे यह सामाजिक और नैतिक मूल्य बोझिल लगते हैं। वेयर डू आई बिलोंग में सुधा कहती है–'परदेश में रह कर अपने मूल्यों को अपनाये रखना बड़ा मुश्किल है और अव्यावहारिक भी।' **(पैन्यूली, अर्चना, वेयर डू आई बिलांग, पृ. 390)** मानव जिस परिवेश में निवास करने जाता है, उस परिवेश में ढलना मुश्किल होता है। वहाँ पर भी अपनी संस्कृति, सभ्यता के लोगों के साथ सहज महसूस करता है। अगर वह विदेशी परिवेश में रह रहा है तो कहीं न कहीं अपने मूल्यों को छोड़ उस देश के मूल्यों को अपनाता है और अपने जीवन को सहज महसूस करता है। वर्तमान शिक्षा पद्धति ने स्वयं को सर्वोपरि रखना, अपने को प्राथमिकता में रहना सिखाया है। इस शिक्षा में किसी भी प्रकार का मानवीय रिश्ता बड़ा नहीं होता है। भारतीय समाज में स्त्री के लिए पति परमेश्वर होता है उस से परे पत्नी की कोई जिन्दगी नहीं होती है लेकिन बदलते मूल्य में स्त्री ने स्वयं की जिन्दगी को केंद्र में रख रही है। जो पितृसत्तात्मक को चोट पहुँचाने के लिए आवश्यक भी है। सुरेश की मृत्यु पर कुसुम की मन:स्थिति में मिले–जुले भाव रहे हैं। 'एक जवान मौत पर उसे अफसोस हुआ था। उसे यह भी अफसोस हुआ था कि उसका बेटा राहुल इतनी अल्प आयु में पिताविहीन हो गया। मगर क्या उसे वास्तव में अपने पति की मौत पर दुख हुआ था? शायद नहीं। बल्कि इत्मीनान की एक लम्बी साँस उसने भरी थी। दो लम्बे वर्षों की यन्त्रणा का आखिरकार अन्त हो चुका था एक हल्की–सी आवाज उसके अन्त:करण से उभरी थी–अच्छा हुआ वह मर गया। एक बेवफा पति की पत्नी होने से बेहतर तो विधवा हो जाना है।' **(वही, पृ. 316)** आज भले ही मनुष्य ने शिक्षा ग्रहण कर बड़ी नौकरी प्राप्त की हो, सारी भौतिक सुख–सुविधाओं सहित निवास कर रहा हो लेकिन मानसिक शांति की गारंटी कोई नहीं ले सकता है। मानवीय रिश्ते को बोझ समझ उन्हें एक तरफ कर देने पर भी वह सुविधामय नहीं रह सकता है। 'विवाह विच्छेद व पुनर्विवाह भले हो, किसी राष्ट्र में अति सामान्य समझा जाए मगर विच्छेद की वेदना हर हाल में एक–सी होती है।' **(वही, पृ. 280)**

कैराली मसाज पार्लर उपन्यास की नैन्सी ने तीन प्रेम विवाह किए लेकिन एक भी सफल नहीं हुआ। सब पतियों ने उसे धोखा दिया। पहला व्याभिचारी था तो दूसरे ने उसके साथ मारपीट की और तीसरे ने उसे किसी भी प्रकार की आर्थिक सहायता, स्वतंत्रता नहीं दी, एक–एक पैसे को मोहताज थी। पॉल की विवाह के बारे में समझ है– 'जहाँ तक मैं समझ पाया हूँ, शादी की सफलता दो व्यक्तियों पर निर्भर करती है, मगर पारिवारिक मूल्यों, सामाजिक मानदण्डों और कानूनी नियमों का भी खासा प्रभाव पड़ता है।' **(कैराली मसाज पार्लर, पृ. 32)** आज भी समाज में पत्नी का पति से अलग कोई व्यक्तित्व नहीं होता है। समस्त संवैधानिक अधिकारों के बावजूद भारतीय संस्कारों में पली–बढ़ी स्त्री चाहे वह ग्रामीण हो या शहरी, देशी हो या प्रवासी, पारिवारिक और सामाजिक शोषण का शिकार बनी हुई है।

भारतीय शिक्षा और सांस्कृतिक मूल्यों की ही विशेषता है कि अपनी अस्मिता खोए बिना यह प्रवासी देशों की विशेषताओं को अपने भीतर ही समावेशित करती रही है। प्रवासी देशों में भारतीय समाज आज भी अपनी संस्कृति का प्रसार–प्रचार करने की पूरी कोशिश कर रहा है। इसके बावजूद भारतीय प्रवासी जन भारतीय व पाश्चात्य संस्कृति को स्वीकार करने में असामंजस्य की स्थिति में है। ऐसी स्थिति में हमारी नैतिक, मूल्यपरक शिक्षा ही हमें सही राह दिखाएगी कि हमें कौनसी संस्कृति को अपनाना है। भारतीय प्रवासीजनों का कर्तव्य बनता है कि वे भारत की शिक्षा और संस्कृति को विदेशों में सँजोये रखे। प्रवासीजन को महज़ सफलता का पुजारी न बनकर नैतिक मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध होने का प्रयास करना चाहिए ताकि क्षणिक सफलता के स्थान पर शाश्वत सफलता प्राप्त हो। महज भौतिक विकास ही नहीं, बल्कि नैतिक विकास भी मनुष्य का लक्ष्य होना चाहिए।

वार्डन क्वार्टर, पी जी गर्ल्स हॉस्टल ,
न्यू कैंपस, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय,
जोधपुर–342001 (राजस्थान)
मो.–7597471173

विवेकानंद पुराने साँचे में नई काव्य कृति

– गौरव गौतम

जन्म – 12 मई 1998।
जन्म स्थान – रीवा (म.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ – पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

युवाओं को आकर्षित करने वाले विद्वानों, दार्शनिकों और समाज सुधारकों में विवेकानंद अग्रगण्य हैं। इसी कारण 1985 से भारत सरकार ने विवेकानंद के जन्मदिवस यानी 12 जनवरी को युवा दिवस मानने का निर्णय लिया। यह एक संयोग ही है कि आचार्य कवि आनंद सिंह ने 'विवेकानंद' कविता के लेखन की शुरुआत इसी सन् में की। यह कविता 2013 में पूर्ण हुई जो विवेकानंद की 150 वीं जयंती है।

विवेकानंद का देहावसान 1902 में हुआ। तब से इस कृति के आने के पहले तक किसी भी कवि ने इस महापुरुष पर केंद्रित होकर अपनी लेखनी नहीं चलाई। आनंद जी ने हिंदी साहित्य में मौजूद इस कमी को दूर किया है। आनंद जी ने इस कविता को उसी छंद में लिखा है जिसमें महाप्राण निराला ने 'तुलसीदास' लिखा। यह काव्य लेखन का सबसे कठिन और दुरूह छंद है। आनंद जी की कविता में कुल 101 बन्द हैं। प्रत्येक बन्द की पहली, दूसरी, चौथी और पाँचवी पंक्ति 16-16 मात्राओं की है जबकि तीसरी और छठी पंक्ति में 16-16 मात्राओं के अलावा 6-6 मात्राएँ और हैं जिससे 22 मात्राएँ हो जाती हैं –

'ब्रह्मांड केन्द्र से जो विशाल / सर परिधि बन्ध, मानस मराल
अपनी संस्कृति के महाताल में आगत / देता था जग को स्वर नवीन
भारती हुई जिसमें वीलीन, / वह हन्त आज रे पंखहीन है भारत!'

(प्रथम बन्द)

उपर्युक्त उद्धरण में मात्राओं को देखा जा सकता है किंतु इस छंद को कठिन और दुरूह इसका तुक बनाता है। ऊपर के उद्धरण में 'विशाल' 'मराल' के साथ तीसरी पंक्ति के 'महाताल' से 'ल' की तुक है इसी तरह 'नवीन' 'वीलिन' और 'पंखहीन' में 'न' की तुक है। वहीं तीसरी पंक्ति के 'आगत' व छठी पंक्ति के 'भारत' में भी 'त' की तुक है।

इसी तरह निराला की 'तुलसीदास' में भी हम देख सकते हैं –

'वीरों का गढ़, वह कालिंजर, / सिंहों के लिए आज पिंजर
नर हैं भीतर बाहर किन्नर-गण गाते / पीकर ज्यों प्राणों का आसव
देखा असुरों ने दैहिक दव, / बन्धन में फँस आत्मा-बांधव दुख पाते।'
(निराला रचनावाली भाग 1, संपादक नंदकिशोर नवल, पृ. 267)

'कालिंजर', 'पिंजर' और किन्नर में 'र' की तुक 'आसव', 'दव' और आत्मा-बांधव में 'व' की तुक के साथ तीसरी पंक्ति के 'गाते' की छठी पंक्ति के 'पाते' के साथ तुक है। इस छंद को अपनाने में मात्राएँ भी बराबर रखनी हैं। गणों का भी यथासंभव पालन करना है। निराला की मुक्त छंदों की कविता को जब 'रबर छंद' केचुआ छंद आदि कहा जाता था तब निराला ने परिश्रम से यह कविता रचकर अपनी प्रतिभा का लोहा मनवाया। यह कविता इस कठिन अनुशासन के बावजूद अपने विषय को लेकर भी बेजोड़ है। अज्ञेय के शब्दों में 'विरली ही रचना ऐसी होती है जिसमें एक सांस्कृतिक चेतना सर्जनात्मक रूप से अवतरित हुई हो। 'तुलसीदास' मेरी समझ में ऐसी ही एक रचना है।' **(अज्ञेय, बसंत का अग्रदूत)** विवेकानंद में भी 'सांस्कृतिक चेतना सर्जनात्मक रूप से अवतरित हुई' है।

पिछले 30-40 साल में ज्यादातर मुक्त छंद में कविता लिखने से कविता नीरस, उबाऊ और गद्यमय होती गई है। पाठक या तो कविता से दूर हो रहे या मंच की कविता की ओर आकर्षित हो रहे हैं जहाँ बहुत कम लोग ही कविता का स्तर ठीक रख पाते है ज्यादातर तो तुकबंदी ही होती है। गद्यमय कविता लिखने वाले अक्सर छंद का बंधन न अपनाने के क्रम में निराला की कृति 'परिमल' की भूमिका का यह कथन उद्धरित करते हैं कि 'मनुष्य की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है।' लेकिन वह 'परिमल' की भूमिका के इस अंश को शायद नज़रंदाज़ कर देते हैं कि 'मुक्त छंद तो वह है, जो छंद की भूमि में रहकर भी मुक्त है।' इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि निराला ने 'छंद की भूमि' में रहने की बात की है न कि छोड़ने की। आनंद जी ने इस कृति को रचकर ऐसे लोगों को 'बात बोलेगी हम नहीं' **(सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', परिमल भूमिका प्रथमावृत्ति संवत् 1986, पृ.13)** के अंदाज़ में जवाब भी दिया है जो यह मानते हैं कि छंदों से विचारों की अभिव्यक्ति में बाधा आती है और अपनी बात को मनवाने के लिए निराला के कथन को आधार बनाते हैं। आज भी जब

कवित्त करना खेल की तरह हो गया है तब इस रचना का शिल्प यह बताता है कि कविता लेखन के लिए 'प्रतिभा' और 'अभ्यास' दोनों चाहिए।

तुलसीदास (1532–1623) और विवेकानंद (1863–1902) के समय में 331 वर्ष का अंतर है। दोनों के युग की समस्याएँ भिन्न हैं। दोनों का व्यक्तित्व भी भिन्न है। एक कवि पहले है समाज सुधारक बाद में; दूसरा समाज सुधारक पहले है कवि बाद में। लेकिन दोनों ने समाज को आध्यात्मिक रूप से जाग्रत करने का प्रयत्न किया इसके लिए 'संस्कृति' को आधार बनाया। विवेकानंद के अनुसार 'हिंदुओं के जातीय चरित्र का विकास आध्यात्मिक स्वाधीनता' **(शमशेर बहादुर सिंह-कविता कोश)** से हुआ। इसी के कारण हिंदू समाज मध्यकाल में मुस्लिम मदांधों व कुछ सूफी फकीरों के कुचक्र से अपने को बचा सका तथा आधुनिक काल में पादरियों और अंग्रेजों की शिक्षा नीति के प्रति सतर्क रहा।

विवेकानंद और तुलसी दोनों वर्ण व्यवस्था के समर्थक होने के बावजूद पंडे, पुरोहितों को फटकारने में पीछे नहीं हैं। तुलसीदास ने 'मानस' के उतरकांड में ढोंगियों की बखिया उधेड़ी है। विवेकानंद भी कहते है–'ऐ भारत के उच्च वर्ण वालों, तुम्हें देखता हूँ तो जान पड़ता है, चित्रशाला में तस्वीर देख रहा हूँ। तुम लोग छायामूर्तियों में विलीन हो जाओ, अपने उत्तराधिकारियों को अपनी तमाम विभूतियाँ दे दो, नया भारत जाग पड़े।' **(विवेकानंद, प्राच्य और पाश्चात्य चतुर्थ संस्करण जुलाई 1950, पृ. 18)** जाहिर है यह गुस्सा अकर्मण्यता के ऊपर है। आनंद जी ने अपनी कविता में विवेकानंद के इस आक्रोशित रूप को दिखाया है –

'पंडों पुरोहितों ने मिलकर/ चूसा जनता का रक्त अगर
फिर क्या यह दंड नहीं इन पर न्यायोचित?' (72 वाँ बन्द)

न्यायोचित यद्यपि गद्य का शब्द है जो कविता में आसानी से नहीं समा सकता किंतु कविता की लय ताल में ऊपर यह शब्द खटकता नहीं। अज्ञेय ने 'स्पर्शातीत' शब्द को जो प्राय: कविता में नहीं आता उसे रूप के 'विशेषण' की तरह रखा है जिससे पंक्ति चमक उठी है **'रूप स्पर्शातीत वह जिसकी लुनाई / कुहासे-सी चेतना को मोह ले।' (बावरा अहेरी)**

शब्दों का प्रयोग करने की ऐसी प्रतिभा 'निराला' और 'अज्ञेय' जैसे कवियों के बाद आनंद जी में ही है। जैसे तुलसी 'सकल पदारथ हैं जग माहीं। करमहीन नर पावत नाहीं।' को मानते हुए यह कहते हैं– 'करम प्रधान विश्व रचि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा।।' वैसे ही कठोपनिषद् का यह श्लोक विवेकानंद के व्यक्तित्व से ही जुड़ गया हैं –

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।
(कठोपनिषद्, अध्याय 1, वल्ली 3, मंत्र 14)

निराला के नायक 'तुलसीदास' और विवेकानंद में इतना साम्य है तब यदि आनंद जी ने 'विवेकानंद' कविता समान छंद में लिखा तो कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। किसी कवि से प्रेरणा लेकर लिखना बड़ी बात नहीं; बड़ी बात तो यह है कि उसे साधा कैसे गया है। निराला ने भी रविंद्रनाथ की 'अभिसार' कविता से प्रेरित होकर ही 'तुलसीदास' लिखा और अपनी प्रतिभा से उसे नया रूप दिया। आनंद जी ने भी रूप निराला से ग्रहण कर अपनी प्रतिभा से तुक, लय, यति, गति आदि माध्यमों से 'विवेकानंद' को अलग स्वरूप प्रदान किया। कहने का तात्पर्य यह की 'तुलसीदास' और 'विवेकानंद' में उपमेय-उपमान का संबंध नहीं है।

आनंद जी ने अपनी कृति में विवेकानंद के आत्मिक एवं आंतरिक संघर्ष को उभारा है साथ ही कविता में इतिहास चिंतन को भी व्यक्त किया है। प्राचीनकाल, मध्यकाल और आधुनिक भारत की घटनाओं के माध्यम से कवि ने इतिहास से दृष्टि लेकर वर्तमान में समस्याओं से समाधान की ओर जाने का इशारा है। 'अथर्वा मैं वही वन हूँ' में कवि ने तातनियम ग्रह में घटनाओं को घटित बताकर भविष्य में सचेत रहने की दृष्टि प्रदान की। कविता का काम यह भी बताना है कि समाज कैसा-कैसा होना चाहिए लेकिन यह काम वह प्रवचन के रूप में नहीं करती बल्कि संवेदना को झकझोरकर करती है जिससे बात भीतर तक पहुँच मनुष्य की अंतरात्मा को प्रभावित कर सके। 'अथर्वा मैं वही वन हूँ' और 'विवेकानंद' दोनों अपने-अपने माध्यम से यह कार्य करती हैं।

विवेकानंद का आत्मिक व आंतरिक संघर्ष यह है कि उनमें आत्ममुक्ति की अभीप्सा है जिसके लिए वह संन्यास ग्रहण करना चाहते हैं किंतु उनके गुरु ने कह रखा है कि जब तक तुम मेरा काम नहीं करोगे तब तक तुम्हें मुक्ति नहीं मिलेगी। भले ही कार्य करने में तुम्हारी हड्डियाँ ही क्यों न गल जाएँ –

अर्जित समाधि-सुख निर्विकल्प / गिरता द्वैतों के परे, अल्प
क्षण में कितने बीतते कल्प आभासित / चैन होगा न कभी पलछिन
हड्डियाँ भी टूटेंगी लेकिन / करना होगा यह काम कठिन सबके हित।
(42 वाँ बन्द)

विवेकानंद अपनी शंका के शमन हेतु पवहारी बाबा के पास गाजीपुर जाते हैं वहाँ भी–

'पवहारी बाबा ने वारण / कर दिया वह्नि योगारुण क्षण

साधन समाधि के हित कारण चिंतातुर!' (41 वाँ बन्द)

एक ओर गुरु का आदेश तथा दूसरी ओर स्वयं की मुक्ति की बात। गुरु ने कहा है जनता को शिक्षित करो। समाज की पीड़ा दूर करो।

निज सुख है क्या, जो लोकोत्तर / भी तो कुछ नहीं, सके जो कर
पर को आत्मवत सुखी क्षण भर वह मानव / जनता के कर-शिक्षित
अद्रवित / निरपेक्ष मनुज वंचक निश्चित -
'सुन पड़ी गिरा : यह अवचिंतित श्रृंगी रव! (43 वाँ बन्द)

क्या आज भी समाज के बुद्धिजीवियों का यह कर्तव्य नहीं है कि निजहित पर परहित को वरीयता दे? क्योंकि बिना चराचर के कल्याण के व्यक्ति मात्र का कल्याण संभव नहीं है लेकिन इस प्रण को साधने के लिए हड्डियाँ गलाना होगा, अपना घर जारने का खतरा लेना होगा। इसी से बचने के लिए सुधिजन केवल निजहित तक ही सिमटकर रहते हैं जिससे आज 'बुद्धिजीवी' शब्द उपहास के रूप में प्रयुक्त होने लगा है।

विवेकानंद महान ही इसीलिए है क्योंकि उन्होंने भवन की जगह श्री राम और बुद्ध की तरह वन का मार्ग चुना। 'कन्याकुमारिका के तट पर' ध्यानमग्न होकर यह विचार करते हैं कि आगे क्या किया जाए। गुरु आज्ञा को कैसे पूर्ण किया जाए। उन्हें जाना होगा अब दूर देश/ अस्ताचल में करने प्रवेश क्योंकि कुछ आध्यात्मिक थे प्रश्न जिनका उत्तर भी उन्हें स्वयं और अन्य लोगों को देना था। इसी क्रम में विवेकानंद फ्लैशबैक में जाकर भारत के इतिहास पर विचार करते हैं। समस्या का समाधान उसके ज्ञान पर निर्भर करता है। इतिहास में जाकर के वास्तविकता जानने का प्रयास विवेकानंद करते हैं। भारत रूपी मराल जो देता था, जग को स्वर नवीन वह आज हन्त और पंखहीन हो गया है। जिसका कारण है -

ये मत्त प्रभंजन के कराल / छाये पश्चिम के मरुज्जाल
वात्या बीहड़ अंधड़ अराल घिर-घिर कर / उठते भैरवि के अलक जाल
ज्यों, हुए छिन्न दिक् और काल / उदयाचल का छिप गया भाल शोभाधार
(तीसरा बन्द)

ऐसी स्थिति में भारत की सनातनता दक्षिण की ओर स्थानांतरित हो गयी है क्योंकि उत्तरी भारत का हिस्सा लगातार हमला झेल रहा है जिससे इसकी संस्कृति भी विकृत हो गयी है। विकृत का कारण खलजन समूह है। तुलसीदास के अनुसार ये खल 'हरि हर जस राकेस राहु से' सब जगह मौजूद होते हैं और 'पर अकाज भट सहसबाहु से' होते हैं। 'अपने हित युद्धव्यूह' रचकर यह समाज को कमजोर करते हैं। विवेकानंद के ध्यान में भारत का भूगोल आता है जिसका चुस्त वाक्यों में वर्णन आनंद जी ने किया है -

इंगित उत्तर नगपति प्राचल/ दक्षिण समुद्र जिस के उच्छल-
वंदन करते दोनों उज्ज्वल मंत्रित लय : / अभिधान उसी भू का भारत,
आभा में रत वह अग्नि भरत / भारती उसी अमिता संतति का परिचय।
(16वाँ बन्द)

एक भी शब्द भरती का नहीं। 'अरथ अमित अति आखर थोरे' इस पूरी कृति में है। जैसे एशिया और पश्चिम की संस्कृति की तुलना वाला यह बन्द देखते हैं -

एशियार्जित संस्कृति धर्मप्राण / नदियों के तट फैली महान-
जागी समतल में छंद गान से भरकर, / पर्वतोपत्यका समुद्रांत
यूरोप-अमेरिका बलोद्धांत / सभ्यता शिविर संपदाक्रांत बहु परिकर।
(21वाँ बन्द)

विवेकानंद अपनी ध्यानमग्न अवस्था में एशिया की संस्कृति और पश्चिम की संस्कृति के अंतर को समझते हैं कि एशिया की संस्कृति का प्राण धर्म है जबकि पश्चिम की संस्कृति बल, दमन व शोषण के माध्यम से आगे बढ़ती है। यह संस्कृति अपने को स्थापित करने के लिए किसी भी हद तक जा सकती है।

आज यह बात किताबी ही रह गयी है कि अमेरिका के मूल निवासी रेड इंडियन हैं। अफ्रीका के जनजातियों की स्थिति भी अत्यंत त्रासद, दारुण और हृदयविदारक है। ये क्षेत्र यूरोपीय देशों के उपनिवेश रहे हैं। आज भी संयुक्त राज्य अमेरिका दुनिया भर में अपने हित अपने प्रभुत्व की स्थापना के लिए क्या-क्या करता है, वह किसी से छिपा नहीं है। चाहे पश्चिम एशिया में अशान्ति व अराजकता की स्थिति हो या तालिबान का पनपना और आज अफगानिस्तान की सत्ता में कब्जा। पश्चिम की मनोवृति ही यही है कि अपने चंगुल में सत्ता, संसाधन लेने के लिए यह कोई भी जाल बुनने को तैयार रहती है, जिससे इन्हें वित्त की प्राप्ति होती रहे। आनंद जी ने इसका सधी हुई भाषा में सटीक वर्णन किया है -

पश्चिम संस्कृति पट जाल एक / धागे सागर भू गिरि अनेक
कपास जिसका संकर विवेक शतपर्णी / साहस-बल-विक्रम खड्ग धरे,
व्यापार बनिज के ध्वज फहरे, / पट बुनती वह युद्धक गहरे बहुवर्णी
(23 वाँ बन्द)

इस बन्द में प्रयुक्त बहुवर्णी शब्द इस बात को स्पष्ट करता है कि पश्चिम संस्कृति अपने विस्तार के लिए अनेक तरह के प्रयास करती है जिसके रंग को समझने के लिए गहरी और कई आयामों को समोने वाली दृष्टि चाहिए। पश्चिम की संस्कृति के वर्णन के बाद विवेकानंद उसके महिमाहत लुंठित भाग्य खिन्न होने के क्रम को बताते हैं क्योंकि सहस्त्राब्दी की हलचल में सभी प्रबल अरबों से हार गए थे। किंतु -

इटली में उठी जागृति तरंग / घेरती गयी फ्लोरेंस संग
फिर चुप हो गयी अबाध भंग में सुस्थिर (26 वें बन्द से)

पश्चिम के पुनर्जागरणकालीन दौर के वर्णन के बाद विवेकानंद भारत की ओर आते हैं। क्योंकि पश्चिम में प्रबोधन और औद्योगिक क्रांति के बाद ही साम्राज्यवाद की लहर फैली जिसके चपेट में भारत भी अपनी आंतरिक कमजोरियों की वजह से आया। विवेकानंद किसी भी समस्या की जड़ में जाते हैं जिसका रूप हम उनके द्वारा रचित कृतियों और भाषणों में देख पढ़ सकते हैं। आनंद जी विवेकानंद से गहरे तौर पर प्रभावित हैं जिसे इस उद्धरण से समझा जा सकता है –

'पढ़ने की भूख मुझे (आनंद जी को) रामकृष्ण मिशन ले गयी थी लेकिन धीरे–धीरे मैं विवेकानंद के साहित्य में डूबने लगा। उनका व्यवहारिक वेदांत दर्शन मुझे नए जीवन दर्शन की तरह लगने लगा जिसमें विश्व को देखने और समझने की एक मुक्कमल दृष्टि थी।' **(मोहम्मद रशीद खान को दिए गए साक्षात्कार से उद्धरित्, अक्षरा पत्रिका, अंक 206 मई 2022 पृ. 251)**

'देखने और समझने की मुक्कमल दृष्टि' प्राप्त होने के कारण 'विवेकानंद' कृति में आनंद जी भारत के सामाजिक राजनीतिक जीवन पर विचार करते हुए सातवीं शताब्दी के भारत में आते हैं जहाँ स्थिति यह है –

सातवीं शताब्दी के बाद विपुल / केंद्रिक सम्राटों के संकुल
टूटे, मंडलक बंध खुल खुल कर गिरता। (32 वाँ बन्द)

इसके कारण हुआ यह कि

संस्कृत का टूटा गौरव गढ़ / अपभ्रंश गिरा प्राकृत अनगढ़
भाषा विभिन्न भाषा अनपढ़ अनुबंधी / सम्राट हुए राजाधिराज
भूदास प्रजा के रक्षराज / उभरा अगला ऐहिक समाज बहुधन्धी। (33 वाँ बन्द)

इस बहुधन्धी समाज की विकृतियों के कारण देश पश्चिम से होने वाले आक्रमण नहीं झेल पाया और भारत में ही भारतीय दोयम दर्जे के नागरिक बन गए। रक्षराज शब्द प्रजा की पीड़ा को दृश्यमान कर देता है कि राजा राक्षस हो गए थे। ऐसे भक्षक शासन में प्रजा त्राहि–त्राहि के अलावा क्या कर सकती थी। यद्यपि देश में व्यापारिक उन्नति की वजह से धन मौजूद था किंतु शासन की नीति व नीयत दोनों में खराबी के चलते प्रजा की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी जिसका वर्णन तुलसीदास ने 'कवितावली' में बड़े मार्मिक ढंग से किया है। ध्यातव्य है कि तुलसीदास ने कवितावली अपने जीवन के अंतिम दौर में लिखी थी यानी 1600 ई. के बाद ;जाहिर है यही समय भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन और अपनी व्यापारिक कोठियों को स्थापित करने का है।

विवेकानंद अंग्रेजों के आगमन और तत्कालीन भारत की स्थिति और उसके बाद के घटनाक्रम में विचार करते हैं कि कैसे ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रसार हुआ और कंपनी चलाकर छद्म वार भारत की सत्ता अपने कब्जे में ले ली।

सूरत, मदरास औ चंद्रनगर / कोलकाता पांडिचेरी को धर,
सिराजुद्दौला भागा बचकर, हतजीवन / कब्जे में जो बंगालोत्कल–
बिहारावध कर्णाट सकल, / लहराया फिर प्यादों का दल राजा बन!
(बन्द 63वाँ)

इस बन्द में मात्र 26 शब्दों में कवि ने ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रसार बतलाया है जो कवि की शब्द साधना का ही परिणाम है कि बिना लय के बिखराव के इतना सशक्त वर्णन किया गया है। 'प्यादों का दल राजा बन' इस वाक्य में शासक वर्ग के लिए व्यंग्य और देश के गुलाम होने की टीस व्यक्त हो रही है।

राजाओं ने दूरदर्शिता की कमी और केवल अपने निजी हित को प्राथमिकता देने के कारण अपना राज्य खो दिया। राज्य की रक्षा के लिए आत्मसम्मान को 'सहायक संधि' जैसी नीतियों के माध्यम से गिरवी रखा किंतु आत्मसम्मान तो दोबारा पाने से रहे, अपना राज्य भी अंग्रेजों के नीतियों में फँसकर व पुरुषार्थ की कमी के कारण खो बैठे। 'अवध' राज्य पर अंग्रेजों ने कुशासन का ही आरोप लगाकर कंपनी में विलय किया गया था। राजाओं की लाचारी और पंगुता से अंग्रेजों को अपने हिसाब से नीति बनाने के लिए पूरी आजादी थी। अंग्रेजों ने अपने को समृद्ध करने के क्रम में भारतीयों को दीन–हीन कर दिया। अपनी शिक्षा संबंधी अधोगामी निस्यंदन की नीति के कारण भारतीय जन को शिक्षा से वंचित कर दिया। धर्मपाल जी ने अपने लेखन विशेषत: 'रमणीय वृक्ष 18 वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा में आँकड़ों से साथ इस पक्ष पर प्रकाश डाला है कि कैसे ब्रिटिश नीतियों के कारण भारत में शिक्षा व्यवस्था का पतन हुआ। आनंद जी ने भी निम्न बन्दों में तत्कालीन भारत को व्यक्त किया है –

संचित चिंतन के अमराक्षर/ भरते प्रेरण स्वबोध के स्वर!
शोषण– विपन्न जन में ईश्वर कब दीखा?/ है दीन–हीन कृशतन मलीन,
भारत के जन शिक्षा विहीन, / उदरम्भर उनके कौर छीनना सीखा!
(65 वाँ बन्द)

अधखाये, भूखे, प्यासे जन / भूल ही गए अपना तन–मन–
अंग से हुए बाहर निर्धन पथहारे / बेगार, गुलामी, के चिरज्वर
पीली आँखों से पथराकर/ बैठ ही गए दिन डूबे घर के तारे! (66 वाँ बन्द)

इसी पिछड़े बनाए हुए भारत व उसके रहवासियों के उठान व उत्थान के लिए ही विवेकानंद के गुरु रामकृष्ण परमहंस व गाजीपुर में पवहारि बाबा ने उन्हें समाधि लेने की जगह हड्डी गलाने के लिए कहा था जिसे ऊपर बताया जा चुका है। विवेकानंद कंपनी की नीतियों पर विचार करते हुए उसकी मंशा तक पहुँचते हैं कि वह यहाँ के निवासियों को रक्त और रंग से भारतीय किंतु आचार–विचार से

अंग्रेज़ बनाकर भारत और भारतीयों दोनों को खोखला कर रही है। ज्यादातर भारतीय इस मंशा को समझे बिना अंग्रेजों के चंगुल में फँस भी चुके हैं। पश्चिम की तो यह संस्कृति में है कि जाल ऐसा बुनो कि कोई छूट न पाए। विवेकानंद को ऐसे युवकों से खास शिकायत थी जो खाते भारत का थे लेकिन काम वो करते जिससे ब्रिटिश हित हो। देश को परे रखकर वो सत्ता के हित में ही अपना हित देखते थे।

ब्रेन ड्रेन (brain drain) जो आज भारत से हो रहा है यह औपनिवेशिक मानसिकता का ही परिणाम है जो अभी तक मौजूद है, व्यक्ति व समाज दोनों में। यदि कोई ट्विटर जैसी सोशल मीडिया साइट्स का सीईओ बनता है तो उसके ज्यादा चर्चे होते हैं लेकिन अगर कोई उद्यमी देश में ही वैसा करे तो उसकी चर्चा तुलनात्मक रूप से न के बराबर होती है। विवेकानंद ने ऐसे युवकों को तब फटकारा था और उनसे प्रभावित आनंद जी जब निम्न बन्द को लिख रहे होंगे तो मन में वर्तमान में मौजूद औपनिवेशिक मानसिकता के प्रति भी आक्रोश होगा।

मदरसों-पाठशालाओं हित/कलकत्ता का वह नवशिक्षित
फारसी-अरबी-उर्दू-संस्कृत का पोंगा?/चख अंग्रेजी का सम्प्रति फल
विज्ञान-ज्ञान के लिए सकल/पहना उसने बाबू का हल्का चोंगा।

(81 वाँ बन्द)

बाबू का चोंगा पहनने वालों को भले न भारती के दु:ख दर्द दिखाई दे लेकिन राममोहन, विद्यासागर जैसे कुछ लोग जागरूक है जो उपनिवेशी चालों को समझते हैं और भारतीय समाज में मौजूद जड़ता कुरीतियों के प्रति सचेत ही नहीं है बल्कि इनके विरुद्ध आवाज भी उठाते हैं। समाज को नई दिशा देकर उचित दशा में देखना चाहते हैं।

कलकत्ता में देवेंद्रनाथ / ऋषिवर वदान्य रविमकुट माथ
आत्मिक-भौतिक में साथ-साथ थे शोभित (84 वाँ बन्द से)

यहाँ तक आते-आते विवेकानंद को यह लगने लगता कि भारत की आत्मा में कोई बहुत गहरा घाव है जिसे भरकर उन्हें अपने गुरु के आदेश को पूरा करना है। ध्यानलीन विवेकानंद को यह आभास होता है कि भारतमाता जो उनके लिए ललित त्रिपुरा है, वह उन्हें आंतरिक प्रेरणा से भर रही है। उनके भीतर यह आत्मविश्वास जगा रही है कि वह अपने गुरु का कार्य करने में समर्थ है। उनकों अपने गुरु की वह बात भी याद आती है जो उन्होंने विवेकानंद को बताई थी कि जब वह साधना के उच्च स्तर में एक बार पहुँचे थे, तब उस स्थिति में (साधना स्तर में ही) एक बच्चे की तरह एक ऋषि से लिपट गए थे जब ऋषि से उनके आने के संबंध में पूछा तो उन्होंने कहा था तुम चलो मैं आता हूँ -

पीछे जा कर शिशु गले लिपट / पूछा 'आओगे कब?' संकट
ऋषिवर पर था, बोले झटपट-'जाओ तुम / आ रहा पीछे से मैं'- वापस
आया नीचे देखा नीरस / जीवन, धीरज धारे बेबस था गुमसुम।

(93 वाँ बन्द)

जब रामकृष्ण ने नरेंद्र को देखा तो बोले-अरे यह तो वही ऋषि है। विवेकानंद को अपनी माता भुवनेश्वरी देवी और उनकी वह बात भी याद आई जो उन्होंने बताया था कि वह बाबा विश्वनाथ से माँगे जाने के बाद पैदा हुए थे -

माँ भुवनेश्वरी ने विरेश्वर को माँगा (97 वाँ बन्द से)

जब विवेकानंद की माँ गुस्सा होती तब वह यह कहती भी थी कि लगता है भगवान शिव ने अपना ही कोई भूत भेज दिया है। इन सभी स्थितियों से गुजरने के बाद विवेकानंद को यह लगा कि वह भारत रूपी हंस के टूटे हुए पंजों को जोड़ सकते हैं, उसे नवजीवन दे सकते हैं-**कन्या कुमारिका के तट पर / नव भारत की विद्या नवतर**
परिव्राजक को कर गयी मुखर मन ही मन। (100 वाँ बन्द से)

विवेकानंद के एकासन में बैठने पर उन्हें अपने प्रश्नों के उत्तर मिल गए और वह असमंजस की स्थिति से बाहर आ गए और सागर के तट में अब निस्संशय की स्थिति में है और भविष्य में कार्य को मूर्त रूप देने के लिए तत्पर है -

ऐकासन के थे तीन दिवस / वे त्रितल चेतना के साहस
उद्यम के थे जो असमंजस से बाहर / कर गए क्लांत मन को, निर्भय
सागर की लहरों से दुर्जय / थे अंतरीप पर निस्संशय योगीवर!

(101 वाँ बन्द)

विवेकानंद की दृष्टि अत्यंत संतुलित और सधी हुई थी। वे धर्म के पक्ष में थे क्योंकि उनका कहना था 'इस देश का प्राण धर्म है, भाव धर्म है और भाषा धर्म है।' **(नंदकिशोर नवल, निराला कृति से साक्षात्कार, पृ. 98)** लेकिन वे आडंबर के समर्थक नहीं थे। विवेकानंद ने इतिहास का सिंहावलोकन और अपना अंतरावलोकन किया जिससे वह आत्मनिर्भर बन सके। स्वतंत्रता के बाद हम वानप्रस्थ अवस्था को पार चुके हैं। भारत आज आत्मनिर्भर बनने की ओर अग्रसर है जिसकी शुरुआत सोच में आत्मनिर्भर से शुरू होती है। यदि हमारी सोच ही औपनिवेशिक मानसिकता के तहत होगी तो उसका प्रभाव शासन और समाज की व्यवस्था पर पड़ेगा ही। विवेकानंद का दर्शन और आनंद जी की यह कृति विचारों की आत्मनिर्भरता के लिए पथ प्रदर्शक का कार्य करेगी।

वार्ड क्रमांक 43, उत्तम नगर,
चिरहुला मंदिर के पीछे,
रीवा, 486001 (म.प्र.)
मो. - 6263610187

डम्फू उपन्यास में युद्ध और अधिवास से संबंधित समस्याएँ

- बिभा कुमारी

जन्म – 29 अप्रैल 1976।
शिक्षा – एम.ए., एम.फिल., पीएच.डी.।
रचनाएँ – दस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – मिथिला रत्न सम्मान सहित अनेक संस्थाओं से सम्मानित।

उपन्यास में वर्णित नेपालियों का असम में आकर बसने से संबंधित परिस्थितियाँ। उनके सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ, रीति-रिवाज, परंपरागत मान्यताएँ, कृषि-पशुपालन, खान-पान, पर्व-त्यौहार इत्यादि का असम की सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के साथ आदान-प्रदान। यह विषय सिर्फ साहित्यिक नहीं है अपितु इसमें नेपाली, बर्मीज, असमिया, हिंदी आदि भाषाओं सहित नृविज्ञान, भूगोल, इतिहास और समाज शास्त्रीय विषयों का समावेश है। यह एक बहुआयामी विषय है।

लगभग प्रतिदिन इतनी बड़ी दुनिया के किसी न किसी कोने में प्रेम की एक नई परिभाषा गढ़ने की ललक हृदय में लिए कोई न कोई आतुर हो उठता है पर ये परिभाषा फिर भी पूरी तरह से नहीं गढ़ी जा पाती है। लाख जतन करने पर भी हृदय का हाल ठीक से बयाँ नहीं हो पाता है, ये बात और है कि बताने और छुपाने की जद्दोजहद के मध्य प्रेम कुछ व्यक्त कुछ अव्यक्त रहकर स्वयं ही आकार लेने लगता है और प्रेमी हृदय उन स्थितियों-परिस्थितियों को भी स्वीकार करना और सहन करना आरंभ कर देता है जिनमें जीने की उसने कल्पना भी न की हो। 'रूमी लस्कर बोरा' द्वारा मूलतः असमिया में लिखित और 'विजय कुमार यादव' द्वारा हिंदी में अनूदित उपन्यास 'डम्फू' एक वृहद फलक का बहुआयामी उपन्यास है। उपन्यास के आरंभ में एक सैनिक अपने उस साक्षात्कार को याद कर रहा है जो उसके पंचान्नबे वर्ष पूरे होने पर संवाददाता द्वारा लिया गया है। उसे तो विश्वास ही नहीं हो रहा था कि उसके जन्मदिन पर उसके जीवन के बारे में बात हो रही थी। वह तो एक सामान्य नवयुवक था, उसकी आँखों में कुछ स्वप्न थे, हृदय में उमंग की नदी तरंगित हो रही थी। घर का सबसे छोटा व माता-पिता का लाडला लड़का था वह। पशु पालन और खेती-गृहस्थी ही उसकी दुनिया थी। थोड़ी बहुत पढ़ाई-लिखाई उसने किसी तरह कर ली थी पर उसके लिए या उसके माता-पिता के लिए न तो यह प्राथमिकता थी और न ही अनिवार्यता।

'बहुत लंबा रास्ता तय कर स्कूल जाना पड़ता उसे। छोटे बच्चे को कष्ट होगा, यह सोचकर माँ उसे अपनी छाती से चिपकाए रहतीं। लेकिन भेड़ चराने जाने देतीं। स्कूल में पढ़ना ही होगा, नरबहादुर को भी इसका कोई आग्रह नहीं था।' **(डम्फू, पृ. 2)**

उपन्यास सिर्फ एक व्यक्ति पर केंद्रित नहीं है, बल्कि वह व्यक्ति जिसे उपन्यास का नायक कह सकते हैं, वह उपन्यास के केंद्र में है, पर इतने मात्र से उपन्यास सिर्फ उसकी कथा नहीं कह रहा है। उपन्यास का नायक नरबहादुर उर्फ जंगबहादुर एक माध्यम बनकर उभरा है, उसके माध्यम से उपन्यासकार ने नेपाल और असम के संबंध, नेपाल, असम और पूरे भारत से वर्मा के संबंध। विश्वयुद्ध में भारत समेत नेपाल, वर्मा आदि देशों के सैनिकों की स्थिति। उनके संघर्ष और शोषण के हृदयविदारक दृश्य। नेपाल से असम में आ बसने वाले विभिन्न जातियों-जनजातियों की सभ्यता-संस्कृति इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों पर लेखक ने विस्तार से प्रकाश डाला है। डम्फू बाँस की कमचियों से बना एक वाद्य है जिसकी स्वर-लहरी बहुत मधुर होती है। नायक जीवन भर डम्फू की मधुर स्वर-लहरी के साथ अपनी प्रथम प्रेयसी को याद करता है तामाङ जनजाति की उसकी प्रेयसी डम्फू नामक वाद्य यंत्र की ताल पर तामाङ सेलू या भोटे सेलू गीत गाती और नाचती थी। पहाड़ पर वह कई बार डम्फू के बिना भी सुरीले गीत गाया करती थी। उन गीतों के साथ किशोर नरबहादुर का हृदय डम्फू बनकर संगत करता था। किशोर वय के प्रथम प्रेम का वर्णन उपन्यासकार ने जिस कोमलता और सहृदयता से किया है, उसकी अनुभूति पाठक के हृदय में सजीव हो उठती है। प्रेम में मिलन की जितनी आतुरता होती है, विछोह का उतना ही भय होता है। कोई भी प्रेमी हृदय मनुष्य अपने प्रिय के विछोह की कल्पना मात्र से ही काँप उठता है। उपन्यास का नायक नरबहादुर कालांतर में जंगबहादुर उच्च मानवीय मूल्यों से प्रेरित है, यहाँ नायक की परिकल्पना महाकाव्यों में निर्धारित नायक की छवि के निकट है। वह प्रेमिका के आग्रह के बावजूद न तो उसे भगाकर ले जाना स्वीकार करता है और न ही उसकी प्रेमिका की संस्कृति के अनुरूप उस रस्म को अदा करता है,

जिसके पश्चात् एक युवती और युवक के विवाह को सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है। नरबहादुर की प्रेमिका तामाङ जनजाति की है, तामाङ जनजाति में अविवाहित युवती जिस वस्त्र को कमर के पीछे की ओर बाँधती हैं उसे पङ्गदेन कहा जाता है। विवाह के समय उसी वस्त्र को वर अपनी वधू की कमर के सामने की ओर बाँध देता है और इस रस्म के साथ ही दोनों जीवनसाथी हो जाते हैं। अब उस वस्त्र का नाम बदल जाता है, उसे पंगदेन के स्थान पर 'गैपदेल' कहा जाता है। वह जितना अपनी प्रेमिका से प्रेम करता है उतना ही उसकी भावनाओं का सम्मान भी करता है। सिर्फ औपचारिकतावश या क्षणिक खुशी के लिए वह ऐसा कुछ भी नहीं करता है जिससे उसकी प्रेमिका की भावना को थोड़ी सी भी ठेस लगे।

'जंग का संवेदनशील मन विचलित हो गया था। उसने राधा के धर्म का सम्मान किया था। जंग के धर्म में ऐसी रीति-नीति न होने के कारण उस गैपदेल को साधारण वस्त्र मानकर अकेले में राधा की कमर में पहना सकता था। लेकिन उस काम को करने के साथ-साथ क्या राधा के विश्वास, राधा की अंतरात्मा, उसके धर्म का अपमान नहीं होता?' **(वही, पृ. 202)**

युद्ध और प्रेम जीवन के दो ध्रुव की तरह माने जाते रहे हैं। किशोर नरबहादुर अपनी प्रेमिका के विछोह को सहने में स्वयं को सक्षम नहीं पा रहा था और न ही उसकी इच्छा के विरुद्ध हो रहे उसके विवाह को रोक पा रहा था। उसे राधा का भाई बीरेंद्र शत्रु प्रतीत हो रहा था। हाँ उसी ने तो उसे देख लिया था राधा के साथ। क्रोध उसपर हावी होता जाता है और वह उसकी हत्या करने की तैयारी कर लेता है। पाठक नरबहादुर के इस निर्णय पर अचंभित रह जाता है। इतना भोला-भला किशोरवय नरबहादुर किसी की हत्या कैसे कर सकता है? उपन्यासकार ने पाठकों की भावना को बखूबी समझते हुए राधा को मौके पर ला खड़ा किया और नरबहादुर के इस निर्णय को विराम लगा दिया। उस प्रेमभीगे हृदय वाले नायक के हृदय से हत्या के विचार को समूल नष्ट कर दिया।

'उसके शरीर को झिंझोड़ते हुए जैसे कुछ भीतर से निकल आया। अरे, वह क्या करने जा रहा था? एक जघन्य अपराध करने से वह किसी तरह बच गया। यह सोचकर नर की पूरी देह में अभी भी सिहरन हो रही है।' **(वही, पृ. 31)**

उसे जब अपना जीवन प्रेमविहीन, रिक्त, निरुद्देश्य लगने लगता है तब वह सेना में शामिल होने की सोचता है। उसने गाँव के एक युवक के सेना में भर्ती होने की बात सुनी थी। अपने आप को जब वह मन ही मन सेना में भर्ती होने के लिए तैयार कर लेता है तब उसे अपने घर, माँ, भेड़-बकरियों, डामन पहाड़ को छोड़कर जाने का दुख होता है। वह कजली और अन्य भेड़ों से गले मिलकर उनसे तो अपने सेना में भर्ती होने की बात तो बता देता है, परंतु माँ को यह खबर सुना पाना उसे अत्यंत कठिन प्रतीत होता है। अपने सबसे छोटे लाडले बेटे के सेना में भर्ती होने की बात वह कैसे सहन कर पाएगी। यद्यपि उसने स्वयं ही निर्णय ले लिया है पर माँ का ख्याल कर नरबहादुर का कोमल मन अंतर्द्वंद्व में जूझने लगता है। वह राधा के बिना डामन की कल्पना भी नहीं कर पा रहा है और स्वयं के जाने के बाद माँ के हृदय पर जो बीतेगी उसकी कल्पना से भी वह काँप रहा था। उसके भीतर जैसे आँसुओं की नदी उमड़ रही थी। वह जोर-जोर से बुक्का फाड़कर रोना चाहता था। राधा के बाद उसके जीवन में जैसे कुछ शेष ही नहीं था। उसके वियोग को न सह पाने की पीड़ा का उपाय तो उसने युद्ध में जाना तय कर लिया था, पर माँ को वह जो तकलीफ देने जा रहा था उसका कोई समाधान उसके पास नहीं था। वह माँ को दुनिया भर की खुशियाँ देना चाह रहा था, पर न जाने कैसे क्या परिस्थितियाँ बन गईं कि अब इस अवस्था में उसे माँ को अकेली छोड़कर जाना पड़ रहा है। वह माँ को जब अपने सेना में भर्ती होने की बात बताएगा तब पता नहीं कैसे इस पुत्र-वियोग के दुख को वह सहन कर पाएगी।

'सेना में भर्ती होने की बात नर माँ को कैसे बताए? जिस माँ ने दूसरी कक्षा की पढ़ाई करने के बाद अपने बेटे का विद्यालय जाना इसलिए बंद करवा दिया कि विद्यालय दूर होने के कारण उसके बेटे को बड़ी तकलीफ होती है, वही माँ इस उम्र में उसे ब्रिटिश सेना में भर्ती होने की अनुमति देगी? और अब तो विश्वयुद्ध भी शुरू हो गया है।' **(वही, पृ. 33)**

बेटे के सेना में भर्ती होने पर माँ के हृदय पर जो बीतेगी इसका अनुमान उसे था, परंतु उसने निर्णय ले लिया था। अब वह अपने निर्णय से हटने वाला नहीं था। माँ उसे रोकने के प्रयास कर रही थी और वह बार-बार जाने की बात दुहरा रहा था ऐसी स्थिति में पिता ने भी उसके सेना में भर्ती होने की इच्छा पर सहमति जताते हुए उसके निर्णय का समर्थन कर दिया था। पिता के समर्थन के पश्चात् माँ के पास कहने के लिए जैसे कुछ बचा ही नहीं।

'उसे जाने दो नर की माँ। क्या मेरे पिता जी ब्रिटिश सिपाही नहीं थे? छुटपन में अपनी गोद में बैठाकर पिताजी ने न जाने सिपाहियों के कितने किस्से सुनाए हैं इसे। इसकी देह में मेरे पिता की आत्मा का ही वास हो गया है शायद, नहीं तो बाकी दो लड़के सेना में जाने की बात क्यों नहीं करते हैं।' **(वही, पृ.36)**

भले ही नरबहादुर के युद्ध में जाने के निर्णय की वजह कुछ और हो लेकिन पिता ने जो वजह बताई उससे भी नरबहादुर प्रभावित और प्रेरित हुआ। उसकी माँ जो अब तक दिल कमजोर किए हुए बेटे को जाने से रोक रही थी उसे भी बेटे के सेना में शामिल होने की एक ठोस वजह समझा दी गई थी। पर माँ तो माँ ठहरीं।

'अपनी दोनों भीगी आँखें लिए उसने पिता के पैर छुए, लेकिन उनकी आँखों में आँखें डालने का साहस नहीं जुटा पाया। माँ ने आँचल से अपनी आँखें पोंछीं और नर का सिर सहलाते हुए फफक-फफक कर रोने लगीं।' **(वही, पृ. वही)**

प्रेम में स्वयं को पराजित महसूस करता, एक किशोर बहुत बड़े दुख से अपने आप को बाहर निकालने की जद्दोजहद में युद्ध के मार्ग को अपनाने को आतुर हो चल पड़ा है। जीवन में कोई इच्छा शेष नहीं रह गई है और जब इच्छा ही शेष नहीं रही तो जीकर क्या करेगा और जब जीने की इच्छा ही नहीं रह गई तो तिल-तिल घुट-घुट कर मरने से कहीं अच्छा है सेना में ही भर्ती हो जाना।

'माँ को क्या पता कि किस सर्वग्रासी शोक से परित्राण पाने के लिए उसने यह रास्ता चुना है। उस मरणान्तक स्मृति की तुलना में आर्मी में शामिल होकर युद्ध में जाने का उसका फैसला भयंकर है, वह ऐसा नहीं मानता।' **(वही, पृ. वही)**

एक कष्ट का निदान दूसरे कष्ट में खोजने की मंशा से नरबहादुर सेना में शामिल हो गया। उसे न जीवन से मोह रह गया था न मृत्यु से भय। ऐसे में विश्वयुद्ध में जा डटना उसके लिए कठिन नहीं था। चारों ओर से आक्रमण-प्रत्याक्रमण हो रहे थे। अंग्रेज यह समझ रहे थे कि भारत के सहयोग के बिना जापान से मुकाबला कठिन है। नेपाल के पड़ोसी देश में स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई चल रही थी तो उधर ब्रिटिश नेपाल, भारत और बर्मा के सैनिकों के सहारे विश्वविजय करने की आशा लगाए हुए है। माता-पिता से येन-केन प्रकारेण विदा लेकर वह सेना में भर्ती होने को आ ही गया। सेना में शामिल होकर जैसे जीवन का एक नया ही अध्याय खुल गया।

'नरबहादुर, धनबहादुर वर्मा रेजिडेंट में भर्ती हुए। उनके साथ नेपाल के और भी बहुत युवक एक साथ बर्मा और गोर्खा रेजीमेंट में भर्ती किए गए। उन्होंने सेना के जवानों वाली वर्दी पहनी।' **(वही, पृ. 37)**

वही किशोर प्रेमी जीवन से निराश होकर ब्रिटिश सेना में भर्ती हुआ, युद्ध की विषम परिस्थितियों ने उसे जीवन के अत्यंत निकट ला खड़ा किया इतना कि द्वेष जैसी कोई भावना उसके हृदय में बची ही नहीं। प्रेमिका का भाई बीरेंद्र कभी उसे अपना शत्रु लगा था लेकिन यहाँ आकर धीरे-धीरे शत्रुता का भाव पूर्णतः समाप्त हो गया। बीरेंद्र के हृदय में भी उसके लिए कोई द्वेष नहीं रहा। नायक जीवन के आरंभिक वर्षों में विशुद्ध प्रेमी रहा। वह घर के कामकाज करता अवश्य था, भेड़-बकरी को चराता और उनकी देखभाल भी करता था पर उसकी दुनिया जैसे प्रेमिका के इर्द-गिर्द ही थी। उसके जीवन के केंद्र में अपनी प्रेमिका के संग-साथ के सुंदर स्वप्न थे। उन सपनों के अचानक टूटकर बिखर जाने से वह स्वयं भी बिखर गया था। अपने आगे के दिनों में वह पहले जवान बना और बाद में किसान भी परंतु उसके भीतर का प्रेमी वैसे का वैसा रहा। आगे चलकर दो युवतियाँ उसे अच्छी लगीं। आश्चर्य कि उसने जानकी को पसंद किया, प्रेम किया, खुशी-खुशी धूमधाम से विवाह किया, यहाँ तक कि तीन-तीन संतानें हुईं। बेटे-बेटी का ब्याह भी कर चुका, नाती-पोते हो गए पर उसका हृदय किशोर ही बना रहा। वह डामन पहाड़ी पर मिली अपनी प्रथम प्रेमिका उस किशोरी राधा को सदैव याद करता रहा। उसका हाल-चाल जानने को व्यग्र होता रहा फिर एक ऐसा समय भी आया जहाँ इंतजार की सीमा समाप्त हुई और वह अपनी राधा की खोज में निकल पड़ा। बिना किसी पता-ठिकाने के उसने अपनी प्रेमिका को ढूँढ़ तो निकाला पर उसकी हालत देखकर उसे झटका सा लगा।

उसकी स्मृति में तो राधा वैसी की वैसी थी पर वास्तविकता की कठोर धरती पर रगड़ खाती हुई राधा सचमुच घिस गई थी। बीमारी ने उसे इतना कमजोर कर दिया था कि मेमनों के संग कुलाँचे भरने वाली किशोरी अब उठकर बैठना तो दूर करवट लेने तक के लिए किसी अन्य का आश्रय लेने को विवश थी। जिन होंठों पर सदैव मुस्कुराहट रहती थी उनपर अब बस बेबसी की गहरी चुप्पी है, जिस कंठ से मधुर गीत झरते रहते थे, उसमें अब लगातार खाँसी की जिद है। बलगम भरी छाती की घरघराहट से टूटकर निकला कफ गले में जाकर फँस जाता है और उस भूतपूर्व सुंदरी की जान मुसीबत में डाल देता है। जिस प्रेमी ने बरसों पहले उसके कोमल हाथ से खिलाए गए कौर स्वयं को धन्य माना था, ने उसके गले में अँगुलिया डालकर कर निकालकर पलभर के लिए उसके दुख को थोड़ा कम कर पाया है। अबतक उसने जो संकोच मन में रखा था कि लोगों द्वारा पूछे जाने पर वह राधा से अपना क्या संबंध बताएगा जैसे भाव से भी बाहर निकाल आया था। उसने ड्राइवर अरुण और सेविका यूथिका की उपस्थिति में राधा के साथ के क्षणों को महसूस कर लिया था। कौन क्या सोचेगा जैसे प्रश्न अब उसे परेशान नहीं कर रहे थे। आखिर

उसने अपनी राधा को देख तो लिया था भले ही उसका स्वास्थ्य बेहद खराब था पर उसके हृदय को एक तसल्ली तो मिल ही गई कि उसका प्रेमी उसे आज भी भूला नहीं है। नरबहादुर और राधा का प्रेम समय और दूरी की बाधाओं से हारा नहीं, उनकी स्मृतियों में प्रेम जीवित रहा। अलग होते समय उन दोनों ने एक-दूसरे को कोई उपहार नहीं दिया था, परिस्थितियाँ प्रतिकूल थीं परंतु दोनों ने एक-दूसरे को खूब सारी दुआएँ दी थीं और शायद उन्हीं दुआओं के परिणाम से उन दोनों का मिलना संभव हो पाया था। राधा ने भेंट में टागी भेजकर उपहार की कमी भी पूरी कर दी थी।

'राधा ने जंग की मंगलकामना की है-यह उसका प्रमाण है। जंग ने टागी को उलट-पुलटकर देखा फिर उसे यत्नपूर्वक बैग में रख दिया। कागज का खाली लिफाफा रखते समय उसमें से कागज का एक टुकड़ा गिर पड़ा।' **(वही, पृ. 234)**

युद्ध और प्रेम जीवन के दो विपरीत ध्रुव हैं। इन दोनों ही ध्रुवों पर मनुष्य का विवेक पर नियंत्रण कम हो जाता है। उसे अपने लक्ष्य के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई-सुनाई नहीं देता। कोई भी दूसरी बात समझ में नहीं आ पाती हाई। शायद इन्हीं कारणों से कहावत बनी होगी कि प्रेम और युद्ध में सब कुछ उचित है। योद्धा के सामने एक ही लक्ष्य होता है युद्ध में विजयी होने का और प्रेमी के सामने लक्ष्य होता है जीवन भर अपने प्रिय के साथ बने रहने का। उपन्यास का नायक प्रेमी भी है और योद्धा भी। वह उपर्युक्त दोनों लक्ष्य नहीं प्राप्त कर सका पर उसने हिम्मत नहीं हारी। वह किसान बना गृहस्थ बना पर उसके भीतर का प्रेमी और सैनिक भी बीच-बीच में प्रकट होता रहा। भीतर के सैनिक के प्रभाव से ही वह लालची-स्वार्थी सेठ को मुँहतोड़ जबाव दे पाया-'यह मेरी बात है, महाजन मालिक। जैसे भी हो, सूद-मूल सहित आपका धन देने का अनुबंध था मेरे साथ और मैं ने उसकी मर्यादा रखी।' **(वही, पृ.153)**

उसके भीतर का प्रेमी आज भी बिल्कुल वैसा ही है। आज भी वह प्रेम की बात प्रकट करने में झिझक महसूस करता है जबकि जिंदगी संध्या बेला में पहुँच चुकी है। उसे प्रेमिका की तलाश में एक-एक घर घूमकर नाम पता पूछने के दौरान भी खुलकर अपने मुँह से यह बताना नहीं आया कि हाँ वह राधा से प्रेम करता है और बस उसे एक नजर देखने भर के लिए इतनी दूर से आया है।

'जंग राधा के बारे में बताते-बताते रह गया। अरुण को वह बात कैसे बताई जाए? वह भी क्या सोचेगा?' **(वही, पृ. 213)**

भारत के पड़ोसी देश वर्मा के जवान भी भारतीय जवानों के साथ थे। उनके अपने देश में ही उनके साथ अत्याचार हुआ था। अपनी गृहभूमि ही उन लोगों के लिए यातना शिविर बन चुकी थी। जापान का साथ देने के लिए भारतीयों को तो वर्मा से हटाया ही वर्मा के मूल निवासियों को भी अकारण ही पूरे-पूरे परिवार की जघन्य हत्या तक कर दी। नरसंहार तो जैसे कहीं थमने का नाम नहीं ले रहा था। जीवित बच गए लोग अपने जीवन को जैसे किसी बोझ की तरह ढो रहे थे। मुंरी भी ऐसा ही युवक था। ब्रिटिश सेना में शामिल होकर दिन रात युद्ध की भयावहता में दिन बिताने के बाद भी वह पुराने दिनों के जख्मों से उबर नहीं पाया था।

'मेरे दो छोटे-छोटे भाई कुछ भी नहीं समझ पाए थे कि उनका दोष क्या था। और बहन माता-पिता उफ्! हृदय फट जाता है नर। यह मेरा अपना देश है, लेकिन यहाँ रहनेवाले लोगों पर मैं कैसे विश्वास करूँ, बोलो?' **(वही, पृ. 49)**

नेपाल, बर्मा भारत के आपसी सम्बन्धों और तनावों पर कथा के माध्यम से कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाश डाला जाता रहा है। नेपाल से आकर असम में बसे लोगों की बदहाली को उपन्यास में जिस सजीवता से चित्रित किया गया है वह पाठकों को हिला देता है। उनके मन में जुगुप्सा का भाव भी पैदा होता है और यह भी समझ आता है कि किसी भी विधा का लेखक सिर्फ चमत्कार उत्पन्न करने के लिए वीभत्स रस को साहित्य में स्थान नहीं देता है बल्कि जीवन की पुस्तक के कुछ वीभत्स पन्नों को भी खोल कर रख देता है क्योंकि जीवन सिर्फ आदर्श के मार्ग पर नहीं चलता बल्कि उसे यथार्थ के कटु अनुभवों को भी सहन करने को विवश होना पड़ता है।

'आह सहा नहीं जाता। क्या मनुष्य इस तरह भी रह सकता है? जंग का मन मेघाच्छन्न आकाश की नाईं हो गया। जिन दिनों जंग युद्ध के लिए गया था, उस समय भी उसने यह नहीं सुना था कि नेपाल के जापा जिले के किसी स्थान पर ऐसे सुकुम्बवासी लोग रहते हैं।' **(वही, पृ. 204)**

युद्ध के दौरान हर प्रकार के संघर्ष को जीने के बाद चरवाहे की नौकरी से लेकर एक स्थापित कृषक गृहस्थ बनने की कथा जितनी रोचक है उतनी ही प्रेरणादायी भी। उपन्यास की कथा में फ्लैशबैक का सुंदर प्रयोग हुआ है। स्मृति में डूबे नायक के साथ पाठक भी तन्मय हो जाते हैं और अतीत वर्तमान सा प्रतीत होने लगता है। कहानी का विस्तार नायक के दादा से पोते तक बनाकर भी फलक को विस्तृत

रूप प्रदान किया गया है। इस प्रकार पाँच पीढ़ी को एकसूत्र में पिरोकर भी उपन्यास के शिल्प को आकर्षक बनाया गया है। भारत, वर्मा, नेपाल चीन की स्थितियों का जो जीवंत चित्रण उपन्यासकार ने किया है वह ऐतिहासिक स्रोतों और समाजशास्त्रीय अध्ययन के बिना संभव नहीं है। उपन्यासकार रूमी लस्कर बोरा उस भ्रम को तोड़ पाने में सफल हुई हैं जिसके मुताबिक उपन्यास को सिर्फ और सिर्फ काल्पनिक कथा मान लिया जाता है या फिर प्रेम कथा को जीवन-जगत से परे किसी अन्य लोक की कथा बताकर उसके आकार और प्रभाव को सीमित कर दिया जाता है। उपन्यास में प्रेम, कर्तव्य, समाज, देश, जातीयता, गृहस्थ धर्म, कृषि व पशु पालन, पर्व-त्योहार, रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा इत्यादि को जिस रूप में शब्द दिया गया है वह अद्भुत है। सभ्यता-संस्कृति के सूत्र मानव समाज के भीतर गहरे तक पैठे हुए हैं। सभी संस्कृतियों के मूल में लोककल्याण का भाव है। विध्वंसकारी शक्तियाँ सदैव मानवता की हत्या करती है वह बहुतों की हत्या करने के बावजूद भी मानवता, प्रेम और जनकल्याण के भाव की हत्या नहीं कर सकती है।

पड़ोसी देश होने के कारण भारत और नेपाल के संबंध सदैव ही जुड़े रहे हैं। सम्बन्धों में कभी मधुरता तो कभी खटास आना भी सामान्य सी बात रही है। नेपाल से सटे भारतीय राज्यों में इनका आकर बस जाना, काम-रोजगार से लग जाना भी सहज बात रही है। धीरे-धीरे नेपालियों की संख्या असम में बढ़ती ही चली गई। भारतीय सेना में गोर्खा रेजीमेंट के रूप में नेपाली सैनिकों का प्रवेश होता रहा है। ब्रिटिश ने विश्ववयुद्ध के समय जो नेपालियों को भारतीयों के साथ सेना में शामिल करना शुरू किया तो आजतक उन्हें भारतीय सेना में शामिल रखा गया है। शिक्षा, चिकित्सा और रोजगार के लिए भी नेपालियों का भारत में आगमन और अधिवास होता चला आ रहा है। इस उपन्यास का वितान अत्यंत विस्तृत है, भले ही केंद्र में एक नायक है परंतु विषय-वस्तु की व्यापकता उपन्यास के स्तर को सिर्फ एक व्यक्ति के जीवन तक सीमित नहीं रहने देती है।

यह उपन्यास अट्ठारहवीं से बीसवीं शताब्दी के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्तर का अध्ययन करते हुए तत्कालीन वैश्विक परिदृश्य का जीवंत दस्तावेज है। नरबहादुर के दादा से उसके पोते तक कथा के विस्तार को चित्रित कर काल बोध को गहराई से वर्णित करने का सांकेतिक रूप पाठकों के पहचानने हेतु उपन्यासकार ने रख छोड़ा है। द्वितीय विश्वयुद्ध की परिस्थितियों को वर्तमान में दिखाते हुए उससे पूर्व और पश्चात् की परिस्थितियों की ओर भी संकेत कर दिया गया है। डम्फू का प्रतीकात्मक चित्रण पाठकों के मन-मस्तिष्क में मधुर स्वर लहरी उत्पन्न करता है। गौर करने की बात है कि उपन्यास मूलत: असमिया में लिखा गया है, जिसे अनुवाद के बिना पढ़ या समझ पाना हिंदी पाठकों के लिए संभव नहीं था। इस उपन्यास को हिंदी पाठकों तक पहुँचाने का श्रेय निश्चित रूप से उपन्यासकार विजय कुमार यादव को जाता है, जिन्होंने दोनों भाषाओं पर अपनी मजबूत पकड़ का उदाहरण इस उपन्यास के अनुवाद के माध्यम से दिया है। उपन्यास को पढ़ते हुए यदि पाठक को बताया न जाए कि यह अनूदित उपन्यास है तो उसे कदापि उसे समझ ही नहीं आएगा कि वह मूल उपन्यास नहीं पढ़ रहा है। उपन्यास में आए सांस्कृतिक पक्षों को बेहतरीन रूप से समझाने के लिए अनेक स्थानों पर उन्होंने मूल शब्दों को रहने दिया है जिससे उपन्यास में मिट्टी की सुगंध कायम रह सकी है। पाठक के सामान्य ज्ञान को बढ़ाने और मूल भाषा की ध्वनि को पहचान पाने के ख्याल से गीतों को मूल रूप में रखकर फिर उनका अर्थ बता दिया है। तामाङ सेलू, भोटे सेलू इत्यादि गीत के प्रकार बताए गए हैं। सेल रोटी का सिर्फ जिक्र ही नहीं हुआ है बल्कि पूरी प्रविधि इतनी सरल हिंदी में है कि पाठक चाहें तो अपने घर में उसे बना भी सकते हैं। अनुवाद सिर्फ भाषाओं को नहीं जोड़ती बल्कि दो संस्कृतियों को भी जोड़ती है, अनुवादक ने इस कथन को भी चरितार्थ कर दिया है। चेंगवा और माइचांग जैसे शब्दों का प्रयोग तो पाठक कभी भूल ही नहीं सकते हैं।

युद्ध के साथ अधिवास की समस्या सदैव बनी रहती है। आसपास के देशों की भाषाई-सांस्कृतिक अस्मिता आपस में टकराती है, उनके मध्य संघर्ष की स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं किंतु किसी तीसरे शक्तिशाली देश द्वारा उनका एकसाथ शोषण किया जाता है। भारत, नेपाल, वर्मा जैसे देश विश्वयुद्ध के दौरान जिस भीषण त्रासदी और शोषण से त्रस्त होते हैं, वह उन्हें भीतर तक खोखला कर देता है परंतु इसके बावजूद भी अपने अस्तित्व की स्थापना के लिए ये बार-बार उठ खड़े होते हैं। नेपाल से असम में आ बसे लोग अपनी भाषाई और सांस्कृतिक अस्मिता के लिए निरंतर संघर्ष करते हैं और जाने-अनजाने एक दूसरे की भाषाई-सांस्कृतिक अनुभूतियों को भीतर ही भीतर अंगीकार और स्वीकार भी कर लेते हैं। एक ओर अस्तित्व के लिए संघर्ष तो दूसरी ओर इंसानियत के नाते जुड़ने वाले सम्बन्ध युद्ध और अधिवास की स्थितियों-परिस्थितियों को बार-बार चुनौती देकर लोगों के मन मे यह विश्वास मजबूत करता चलता है कि मनुष्य की जिजीविषा, उसकी इच्छा-आकांक्षा उसे हर परिस्थिति में आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है।

सहायक प्राध्यापक, वीसजे महाविद्यालय,
राजनगर, मधुबनी-847212 (बिहार)
मो.- 8800270718

साहित्य की अनुपम दीपशिखा : अमृता प्रीतम

- कृष्ण कुमार यादव

जन्म – 10 अगस्त 1977।
जन्म स्थान – तहबरपुर, आजमगढ़ (उ.प्र.)।
शिक्षा – एम.ए.।
रचनाएँ – सात पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय सम्मानों से सम्मानि।

हिंदी और पंजाबी की जानीमानी साहित्यकार अमृता प्रीतम ने अपनी कविताओं, कहानियों और उपन्यासों के ज़रिए जीवन के रंगों को दुनिया के सामने भावात्मक तरीक़े से प्रस्तुत किया। पंजाब (भारत) के गुजराँवाला जिले में पैदा हुईं अमृता प्रीतम को पंजाबी भाषा की पहली कवयित्री माना जाता है। विभाजन ने पंजाबी संस्कृति को बाँटने की जो कोशिश की थी, वे उसके खिलाफ सदैव संघर्ष करती रहीं और उसे कभी भी विभाजित नहीं होने दिया। अमृता जी की रचनाओं में साझी संस्कृति की विरासत को आगे बढ़ाने और समृद्ध करने का पुट शामिल था। अमृता जिंदगी भर जिद और बगावत के साथ अपने भीतर की औरत के जानिब से दुनिया की औरतों के दर्द को बयान करती रहीं। लगभग सौ पुस्तकों की रचनाकार के रूप में उन्होंने तत्कालीन समाज के विभिन्न पहलुओं से लेकर वर्तमान में चल रहे तमाम आयामों को भी मुखरता से स्थान दिया। इनमें उनकी चर्चित आत्मकथा 'रसीदी टिकट' भी शामिल है। अमृता प्रीतम उन साहित्यकारों में थीं जिनकी कृतियों का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ और विदेशों में भी बड़े मनोयोग से पढ़ी गईं। एक समय में तो राजकपूर की फिल्में देखना और अमृता प्रीतम की कविताएँ पढ़ना सोवियत संघ के लोगों का शगल बन गया था। साहित्य अकादमी पुरस्कार पाने वाली वह प्रथम महिला रचनाकार थीं तो ज्ञानपीठ पुरस्कार से लेकर भारत के दूसरे सबसे बड़े नागरिक सम्मान पद्मविभूषण से भी वे अलंकृत हुईं।

अमृता प्रीतम का जन्म 31 अगस्त, 1919 को पंजाब के गुजराँवाला (अब पाकिस्तान में) में हुआ था। मात्र 11 वर्ष की अल्पायु में, जबकि उन्होंने दुनिया को अपनी नजरों से समझा भी नहीं था माँ का देहावसान हो गया। कड़क स्वभाव के लेखक पिता के सान्निध्य में अमृता का बचपन लाहौर में बीता और शिक्षा-दीक्षा भी वहीं हुई। लेखन के प्रति तो उनका आकर्षण बचपन से ही था पर माँ की असमय मौत ने इसमें और भी धार ला दी। अपनी आत्मकथा रसीदी टिकट में उन्होंने माँ के अभाव को जिया है-'सोलहवाँ साल आया-एक अजनबी की तरह। घर में पिताजी के सिवाय कोई नहीं था-वह भी लेखक जो सारी रात जागते थे, लिखते थे और सारे दिन सोते थे। माँ जीवित होतीं तो शायद सोलहवाँ साल और तरह से आता-परिचितों की तरह, सहेलियों-दोस्तों की तरह, सगे-संबंधियों की तरह, पर माँ की गैरहाजिरी के कारण जिंदगी में से बहुत कुछ गैरहाजिर हो गया था। आस-पास के अच्छे-बुरे प्रभावों से बचाने के लिए पिताजी को इसी में सुरक्षा समझ में आई कि मेरा कोई परिचित न हो। न स्कूल की कोई लड़की, न पड़ोस का कोई लड़का।'

अमृता प्रीतम की प्रथम कविता इंडिया किरण में छपी तो प्रथम कहानी 1943 में कुंजियाँ में। मोहन सिंह द्वारा प्रकाशित पत्रिका 'पंज दरया' ने अमृता की प्रारम्भिक पहचान बनाई। सन् 1936 में अमृता की प्रथम किताब छपी। इससे प्रभावित होकर महाराजा कपूरथला ने बुजुर्गाना प्यार देते हुए दो सौ रुपये भेजे तो महारानी ने प्रेमवश पार्सल से एक साड़ी भिजवायी। इस बीच जीवन यापन हेतु 1937 में उन्होंने लाहौर रेडियो ज्वाइन कर लिया। जब देश आजाद हुआ तो उनकी उम्र मात्र 28 वर्ष थी। वक्त के हाथों मजबूर हो वो उस पार से इस पार आई और देहरादून में पनाह ली। इस बीच 1948 में वे उद्घोषिका के रूप में आल इण्डिया रेडियो से जुड़ गईं। पर विभाजन के जिस दर्द को अमृता जी ने इतने करीब से देखा था, उसकी टीस सदैव स्मृति पटल पर बनी रही और रचनाओं में भी प्रतिबिम्बित हुई। बँटवारे पर उन्होंने लिखा-'पुराने इतिहास के भीषण अत्याचारी काण्ड हम लोगों ने भले ही पढ़े हुये थे, पर फिर तब भी हमारे देश के बँटवारे के समय जो कुछ हुआ, किसी की कल्पना में भी उस जैसा खूनी काण्ड नहीं आ सकता मैंने लाशें देखी थीं लाशों जैसे लोग देखे थे।' बँटवारे की टीस और क्रंदन को वे कभी भी भुला नहीं पायीं। जिस प्रकार प्रणय-क्रीड़ा में रत क्रौंच पक्षी को व्याध द्वारा बाण से बाँधने पर क्रौंची के करुण शब्द सुन विचलित वाल्मीकि अपने को रोक न पाये थे और बहेलिये को शाप दे दिया था, जो कि भारतीय संस्कृति का आदि श्लोक बना, ठीक वैसे ही पंजाब की इस बेटी की आत्मा लाखों बेटियों की क्रंदन सुनकर बार-बार द्रवित होती जाती थी। और फिर यूँ ही ट्रेन-यात्रा के दौरान उनके जेहन में वारिस शाह की ये पंक्तियाँ गूँज उठीं-'भला मोए ते, बिछड़े कौन मेले।' अमृता को लगा

कि वारिस शाह ने तो हीर के दु:ख को गा दिया पर बँटवारे के समय लाखों बेटियों के साथ जो हुआ, उसे कौन गायेगा। फिर उसी रात चलती हुयी ट्रेन में उन्होंने यह कविता लिखी–

अज्ज आख्या वारिस शाह नूँ, किते कबरां बिच्चों बोल
ते अज्ज किताबे-इश्क दा कोई अगला वरका खोल।
इक रोई-सी धी पंजाब दी, तूँ लिख-लिख मारे बैन
अज्ज लक्खां धीयां रोंदियाँ, तैनूं वारिस शाह नूँ कहन।

यह कविता जब छपी तो पाकिस्तान में भी पढ़ी गयी। उस दौर में इसका इतना मार्मिक असर पड़ा कि लोग इस कविता को अपनी जेबों में रखकर चलते और एकांत मिलते ही निकालकर पढ़ते व रोते मानो यह उन पर गुजरी दास्तां को सहलाकर उन्हें हल्का करने की कोशिश करती। विभाजन के दर्द पर उन्होंने 'पिंजर' नामक एक उपन्यास भी लिखा, जिस पर कालान्तर में फिल्म बनी।

अमृता प्रीतम ने करीब 100 पुस्तकें लिखीं, जिनमें कविता, कहानी, उपन्यास, यात्रा संस्मरण और आत्मकथा शामिल हैं। उनकी रचनाओं में पाँच बरस लम्बी सड़क, उन्चास दिन, कोरे कागज, सागर और सीपियाँ, रंग का पत्ता, अदालत, डॉक्टर देव, दिल्ली की गलियाँ, हरदत्त का जिन्दगीनामा, पिंजर (उपन्यास), कहानियाँ जो कहानियाँ नहीं हैं, कहानियों के आँगन में, एक शहर की मौत, अंतिम पत्र, दो खिड़कियाँ, लाल मिर्च (कहानी संग्रह), कागज और कैनवस, धूप का टुकड़ा, सुनहरे (कविता संग्रह), एक थी सारा, कच्चा आँगन (संस्मरण), रसीदी टिकट, अक्षरों के साये में, दस्तावेज (आत्मकथा) प्रमुख हैं। अन्य रचनाओं में एक सवाल, एक थी अनीता, एरियल, आक के पत्ते, यह सच है, एक लड़की : एक जाम, तेरहवाँ सूरज, नागमणि, न राधा-न रुक्मिणी, खामोशी के आँचल में, रात भारी है, जलते-बुझते लोग, यह कलम-यह कागज-यह अक्षर, लाल धागे का रिश्ता इत्यादि प्रमुख हैं। पंजाबी साहित्य को समृद्ध करने हेतु वे 'नागमणि' नामक एक साहित्यिक मासिक पत्रिका भी निकालती थीं। उन्होंने पंजाबी कविता की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक अलग पहचान कायम की पर इसके बावजूद वे पंजाबी से ज्यादा हिन्दी की लेखिका रूप में जानी जाती थीं। यहाँ तक कि विदेशों में भी उनकी रचनाएँ उतने ही मनोयोग से पढ़ी जाती थीं। पचास के दशक में नागार्जुन ने अमृता की कई पंजाबी कविताओं के हिन्दी अनुवाद किए। सन् 1957 में साहित्य अकादमी पुरस्कार ('सुनहुड़े' कविता संकलन पर) पाने वाली वह प्रथम महिला रचनाकार बनीं तो 1958 में उन्हें पंजाब सरकार ने पंजाब अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया। 1982 में 'कागज़ ते कैनवस' के लिए ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया तो पद्मश्री और पद्मविभूषण जैसे सम्मान भी उनके आँचल में आए। 1973 में दिल्ली विश्वविद्यालय ने अमृता को डी. लिट. की आनरी डिग्री दी तो पिंजर उपन्यास के फ्रेंच अनुवाद को फ्रांस का सर्वश्रेष्ठ साहित्य सम्मान भी प्राप्त हुआ। 1975 में अमृता के लिखे उपन्यास 'धरती सागर और सीपियाँ' पर कादम्बरी फिल्म बनी और कालान्तर में उनके उपन्यास 'पिंजर' पर चन्द्रप्रकाश द्विवेदी ने एक फिल्म का निर्माण किया। अमृता प्रीतम राज्यसभा की भी सदस्य रहीं।

विवाद और अवसाद अमृता के साथ बचपन से ही जुड़े रहे। माँ की असमय मौत ने उनके जीवन को अंदर तक झकझोर दिया था। इस घटना ने उनका ईश्वर पर से विश्वास उठा दिया। जिन्दगी के अवसादों के बीच जूझते हुए उन्होंने कई महीनों तक मनोवैज्ञानिक इलाज भी कराया। डॉक्टर के ही कहने पर उन्होंने अपनी परेशानियों और सपनों को कागज पर उकेरना आरम्भ किया। इस बीच अमृता ने फोटोग्राफी, नृत्य, सितार वादन, टेनिस न जाने कितने शौकों को अपना राहगीर बनाया। उनका विवाह लाहौर के अनारकली बाजार में एक बड़ी दुकान के मालिक सरदार प्रीतम सिंह से हुआ पर वो भी बहुत दिन तक नहीं निभ सका। इस बीच 'शमा' पत्रिका हेतु उनके उपन्यास डॉ. देव के इलस्ट्रेशन बना रहे चित्रकार इमरोज से 1957 में मुलाकात हुयी और 1960 से वे साथ रहने लगे। इमरोज के बारे में अमृता ने लिखा कि-'मैंने अपने सपने को कभी उसके साथ जोड़कर नहीं देखा था, लेकिन यह एक हकीकत है कि उससे मिलने के बाद फिर कभी मैंने सपना नहीं देखा।' अपने उपन्यास 'दिल्ली की गलियाँ' में नासिर के रूप में उन्होंने इमरोज को ही जिया था। अगर इमरोज के साथ उनका सम्बंध विवादों में रहा तो 'हरदत्त का जिन्दगी नामा' नाम के कारण 'जिन्दगीनामा' की लेखिका कृष्णा सोबती ने उनके विरुद्ध अदालत का दरवाजा भी खटखटाया। अपने अन्तिम दिनों में अमृता अतिशय आध्यात्मिकता, ओशो प्रेम, मिस्टिसिज्म का शिकार हो गई थीं पर अन्तिम समय तक वे आशावान और ऊर्जावान बनी रहीं। अपने अन्तिम दिनों में उन्होंने इमरोज को समर्पित एक कविता 'फिर मिलूँगी' लिखी–

मैं तुम्हें फिर मिलूँगी
कहाँ? किस तरह? पता नहीं।
शायद तुम्हारी कल्पनाओं का चिह्न बनकर
तुम्हारे कैनवस पर उतरूँगी
सर फिर तुम्हारे कैनवस के ऊपर
एक रहस्यमयी लकीर बनकर
खामोश तुम्हें ताकती रहूँगी।

ठेठ पंजाबियत के साथ रोमांटिसिज्म का नया मुहावरा गढ़कर दर्द को भी दिलचस्प बना देने वाली अमृता कहीं न कहीं सूफी कवियों की कतार में खड़ी नजर आती हैं। आज स्त्री विमर्श, महिला सशक्तीकरण, नारी स्वातंत्र्य और लिव-इन-रिलेशनशिप जैसी जिन बातों को नारे बनाकर उछाला जा रहा है, अमृता प्रीतम की रचनाओं में वे काफी

पहले ही स्थान पा चुकी थीं। शायद भारतीय भाषाओं में वह प्रथम ऐसी जनप्रिय लेखिका थीं, जिन्होंने पिंजरे में कैद छटपटाहट की कलात्मक अभिव्यक्तियों को मुखर किया। ज्वलंत मुद्दों पर जबरदस्त पकड़ के साथ-साथ उनके लेखन में विद्रोह का भी स्वर था। उनकी कहानी 'दिल्ली की गलियाँ' में जब कामिनी नासिर की पेंटिंग देखने जाती है तो कहती है-'तुमने वूमेन विद फ्लॉवर, वूमेन विद ब्यूटी या वूमेन विद मिरर को तो बड़ी खूबसूरती से बनाया पर वूमेन विद माइंड बनाने से क्यों रह गए।' निश्चितत: यह वाक्य पितृसत्तात्मक समाज की उस मानसिकता को दर्शाता है जो नारी को सिर्फ भावों का पुंज समझता है, एक समग्र व्यक्तित्व नहीं। सिमोन डी बुआवार ने भी अपनी पुस्तक 'सेकेण्ड सेक्स' में इसी प्रश्न को उठाया है।

ऐसा नहीं है कि इन सबके पीछे मात्र लिखने का जुनून था बल्कि बँटवारे के दर्द के साथ-साथ अपने व्यक्तिगत जीवन की रुसवाइयों और तन्हाइयों को भी अमृता ने इन रचनाओं में जिया। 'अमृता प्रीतम' शीर्षक से लिखी एक कविता में उन्होंने अपने दर्द को यूँ उकेरा-'एक दर्द था-/ जो सिगरेट की तरह/मैंने चुपचाप पिया है/ सिर्फ कुछ नज्में हैं-जो सिगरेट से मैंने राख की तरह झाड़ी हैं।' कभी-कभी तो उनकी रचनाओं को पढ़कर समझ में ही नहीं आता कि वे किसी पात्र को जी रही हैं या खुद को। उन्होंने खुद के बहाने औरत को जिया और उसे परिवर्तित भी किया। अपनी रचना 'नागमणि' में अलका व कुमार के बहाने उन्होंने खुद को ही जिया है, जो बिना विवाह के एक अनजान गाँव में साथ रहते हैं और वह भी बिना किसी अतिरिक्त हक व अपराध-बोध के। स्वयं अमृता प्रीतम का जीवन भी ऐसी ही दास्ताँ थी। वे प्रेम के मर्म को जीना चाहती थीं, उसके बाहरी रूप को नहीं। इसीलिए तमाम आलोचनाओं की परवाह किए बिना उन्होंने अपने परम्परागत पति प्रीतम सिंह को तिलांजलि देकर चित्रकार इमरोज (असली नाम इंद्रजीत) को अपना हमसफर बनाया और आलोचनाओं का जवाब अपने लेखन को और भी धारदार बनाके दिया। अपनी आत्मकथा में उन्होंने लिखा कि-'मरी हुई मिट्टी के पास, किसी जमाने में, लोग पानी के घड़े या सोने-चाँदी की वस्तुं रखा करते थे। ऐसी किसी आवश्यकता में मेरी कोई आस्था नहीं है- पर हर चीज के पीछे आस्था का होना आवश्यक नहीं होता, चाहती हूँ इमरोज मेरी मिट्टी के पास मेरा कलम रख दे।'

अमृता प्रीतम एक साथ ही मानवतावादी, अस्तित्ववादी, स्त्रीवादी और आधुनिकतावादी थीं। जब विभाजन के दर्द को वे जीती हैं तो मानवतावादी, जब तमाम दुख-दर्दों और आलोचनाओं से परे स्वत:स्फूर्त वे स्व में से उद्भूत होती हैं तो अस्तित्ववादी, जब पुरुष की दकियानूसी मानसिकता पर चोट कर उसे स्त्री को समग्र व्यक्तित्व रूप में अपनाने की बात कहती हैं तो स्त्रीवादी एवं जब समय से आगे परम्पराओं के विपरीत अपने हमसफर को बिना किसी बंधन के समाज में स्वीकारती हैं तो आधुनिकतावादी रूप में उनका व्यक्तित्व सामने आता है। अमृता प्रीतम ने परम्पराओं को जिया तो दकियानूसी से उन्हें निजात भी दिलायी। आधुनिकता उनके लिए फैशन नहीं जरूरत थी। यही कारण था कि वे समय से पूर्व ही आधुनिक समाज को रच पाईं।

पोस्टमास्टर जनरल, वाराणसी परिक्षेत्र,
वाराणसी-221002 (उ.प्र.)
मो.- 09413666599

प्रो. रवेल सिंह
उत्तर क्षेत्रीय युवा लेखक सम्मिलन

श्री गोविन्द मिश्र
उत्तर क्षेत्रीय युवा लेखक सम्मिलन

यात्रा अमरनाथ की

- गोवर्धन यादव

जन्म - 17 जुलाई 1944।
जन्मस्थान - मुलताई, बैतूल (म.प्र.)।
शिक्षा - स्नातक।
रचनाएँ - पच्चीस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - म.प्र. साहित्य सम्मेलन छिन्दवाड़ा द्वारा सारस्वत सम्मान।

आपने अब तक अपने जीवन मे अनगिनत यात्राएँ की होगी, लेकिन किन्हीं कारणवश आप अमरनाथ की यात्रा नहीं कर पाए हैं, तो आपको एक बार बर्फानी बाबा के दर्शनों के लिए अवश्य जाना चाहिए। दम निकाल देने वाली खड़ी चढ़ाइयाँ, आसमान से बातें करती, बर्फ की चादर में लिपटी-ढँकी पर्वत श्रेणियाँ, शोर मचाते झरने, बर्फ की ठंडी आग को अपने में दबाये उद्दण्ड हवाएँ, जो आपके जिस्म को ठिठुरा देने का माद्दा रखती हैं, कभी बारिश आपका रास्ता रोककर खड़ी हो जाती है, तो कहीं नियति नटि अपने पूरे यौवन के साथ आपको सम्मोहन में उलझा कर आपका रास्ता भ्रमित कर देती है, वहीं असंख्य शिव-भक्त बाबा अमरनाथ के जयघोष के साथ, पूरे जोश एवं उत्साह के साथ आगे बढ़ते दिखाई देते हैं और आपको अपने साथ भक्ति की चाशनी में सराबोर करते हुए आगे, निरन्तर आगे बढ़ते रहने का मंत्र आपके कानों में फूँक देते हैं। कुछ थोड़े से लोग जो शारीरिक रूप से अपने आपको इस यात्रा के लिए अक्षम पाते हैं, घोड़े की पीठ पर सवार होकर बाबा का जयघोष करते हुए खुली प्रकृति का आनन्द उठाते हुए, अपनी यात्राएँ संपन्न करते हैं। सारी कठिनाइयों के बावजूद न तो वे हिम्मत हारते हैं और न ही जिनका मनोबल डिगता है, आपको निरन्तर आगे बढ़ते रहने के लिए प्रेरित करते हैं।

रास्ते में जगह-जगह भंडारे वाले आपका रास्ता, बड़ी मनुहार के साथ रोकते हुए, हाथ जोड़कर विनती करते है कि बाबा की प्रसादी खाकर ही जाइये। भंडारे में आपके मन पसंद चीजें खाने को मिलेंगी। कहीं कड़ाहे में केसर डला दूध औट रहा है, तो कहीं इमरती सिंक रही होती है, बरफी, पेड़ा, बूंदी, कचौड़ियाँ, न जाने कितने ही व्यंजन आपको खाने के मिलेंगे, वो भी बिना कोई रकम चुकाए। ऐसा नहीं है कि यह नजारा आपके एकाध जगह देखने को मिले, आप अपनी यात्रा के प्रथम बिन्दु से चलते हुए अन्तिम पड़ाव तक, शिवभक्तों की इस निष्काम सेवा को अपनी आँखों से देख सकते हैं। हमारी बस को जब एक भंडारे वाले (अब नाम याद नहीं आ रहा है) ने रोकते हुए हमसे प्रसादी ग्रहण करने हेतु विनती की, तो भला हममें इतनी हिम्मत कहाँ थी कि हम उनका अनुरोध ठुकरा सकते थे। काफी आतिथ्य-सतकार एवं सुस्वादू प्रसाद ग्रहण कर ही हम आगे बढ़ पाए थे।

मन की आदत बात-बात में शंका करने की तो होती है। मेरे मन में एक शंका बलवती होने लगी थी कि ये भंडारे वाले, अगम्य ऊँचाइयों पर जहाँ आदमी का पैदल चलना दूभर हो जाता है, यात्रा के शुरुआत से पहले अपने लोगों को साथ लेकर अपने-अपने पंडाल तान देते हैं। रसोई पकाने में क्या कुछ नहीं लगता, वे हर छोटी-बड़ी सामग्री ले कर इन ऊँचाइयों पर अपने पंडाल डाले यात्रियों की राह तकते हैं और पूरी निष्ठा और श्रद्धा के साथ सभी की खातिरदारी करते हैं। वे इस यात्रा के दौरान लाखों रुपया खर्च करते हैं, भला इन्हें क्या हासिल होता होगा? क्यों ये अपना परिवार छोड़कर, काम-धंधा छोड़कर यात्रा की समाप्ति तक यहाँ रुकते हैं? भगवान भोले नाथ इन्हें भला क्या देते होंगे? मन में उठ रहे प्रश्न का उत्तर जानना मेरे लिए आवश्यक था। मैंने एक भक्त से इस प्रश्न का उत्तर जानना चाहा तो वह चुप्पी लगा गया। शायद वह अपने आपको अन्दर ही अन्दर तौल रहा था कि क्या कहे। काफी देर तक चुप रहने के बाद उसने हौले से मुँह खोला और बतलाया कि वह एक अत्यन्त ही गरीब परिवार से है। रोजी-रोटी की तलाश में दिल्ली आ गया। छोटा-मोटा काम शुरू किया। सफलता रूठी बैठी रही। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाए? किसी शिव-भक्त ने मुझसे कहा-भोले भंडारी से माँगो। वो सभी को मनचाही वस्तु प्रदान करते हैं। बस, उसके प्रति सच्ची लगन और श्रद्धा होनी चाहिए। मैंने अपने व्यापार को फलने-फूलने का वरदान माँगा और कहा कि उससे होने वाली आय का एक बड़ा हिस्सा वह शिव-भक्तों के बीच खर्च करेगा। बस क्या था, देखते-

देखते मेरी किस्मत चमक उठी और मैं यहाँ आने लगा। मेरी कोई संतान नहीं थी। मैंने शिव जी से प्रार्थना की और आने वाले साल पर मेरी मनोकामना पूरी हुई।

इतना बतलाते हुए उसके शरीर में रोमांच हो आया था और उसकी आँखों से अविरल अश्रुधारा बह निकली थी। इससे ज्ञात होता है कि यहाँ आने वाले सभी शिव भक्तों को भोलेभंडारी खाली हाथ नहीं लौटाते। शायद यह एक प्रमुख वजह है कि यहाँ प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में शिवभक्त आते हैं। यह संख्या निरन्तर बढ़ती ही जा रही है। दूसरा कारण तो यह भी है कि बर्फ का शिवलिंग केवल इन्हीं दिनों बनता है और हर कोई इस अद्भुत लिंग के दर्शन कर अपने जीवन को कृतार्थ करना चाहता है। और तीसरी खास वजह यह भी है कि लोग अपने नंगी आँखों से प्रकृति का अद्भुत सौंदर्य देखना चाहते हैं। जो शिवभक्त हिम से बने शिवलिंग के दर्शन कर अपने जीवन को धन्य बनाना चाहते हैं, उन्हें जम्मु पहुँचना होता है। जम्मु रेलमार्ग-सड़कमार्ग तथा हवाई मार्ग से देश के हर हिस्से से जुड़ा हुआ है।

1-जम्मु से पहलगाम (297 कि.मी)

पहलगाम :- जम्मु से पहला पड़ाव पहलगाम है। यात्री टैक्सी द्वारा नगरोटा-दोमल-उधमपुर-कुद-पटनीटाप-बटट-रामबन-बनिहाल-तीथर-तथा जवाहर सुरंग होते हुए पहलगाम पहुँच है। पहलगाम नूनवन के नाम से भी जाना जाता है। यह एक अत्यन्त सुन्दर-रमणीय स्थान है। जनश्रुति के अनुसार भगवान शिव ने माँ पार्वती को अमरकथा का रहस्य सुनाने के लिए एक ऐसे स्थान का चयन करना चाहते थे, जहाँ अन्य कोई प्राणी उसे न सुन सके। ऐसे स्थान की तलाश करते-करते शिव पहलगाम पहुँचे थे। यह वह स्थान है, जहाँ उन्होंने अपने वाहन नदी का परित्याग किया था। इस स्थान प्राचीन नाम बैलगाम था, जो क्षेत्रीय भाषा में बदलकर पहलगाम हो गया। यात्री यहाँ भण्डारे में भोजन कर रात्रि विश्राम करते हैं -

2-पहलगाम से चन्दनवाड़ी-(16 कि.मी.)

चंदनवाड़ी :- यात्री सुबह चाय-पानी कर टैक्सी द्वारा चन्दनवाड़ी पहुँचता है। चन्दनवाड़ी के बारे में मान्यता है कि भोलेनाथ ने अपने माथे का चन्दन यहाँ छोड़ा था। यहाँ से कुछ दूरि पर प्रकृति द्वारा निर्मित 100मीटर लंबा पुल है, जो लिद्दर नदी के ऊपर बना है। पर्वत श्रृंखलाएँ यहाँ अपना रूप-रंग बदलती जाती है। आगे की यात्रा थोड़ी कठिन है, जिसे घोड़े द्वारा तय की जा सकती है।

3- चन्दनवाड़ी से शेषनाग-(13कि.मी.)

शेषनाग झील :- चन्दनवाड़ी से शेषनाग के लिए यह रास्ता काफी कठिन तथा सीधी चढ़ाई वाला है। पिस्सु घाटी होते हुए लिद्दर नदी के किनारे-किनारे मनोहर दृश्यों को निहरते हुए यात्री शेषनाग पहुँचता है। यह स्थल झेलम नदी का उदगम स्थल है, जिसे शेषनाग सरोवर भी कहते हैं। पहली झलक में यूँ प्रतीत होता है कि कोई विशाल फणीधर (शेषनाग) कुण्डली मारे बैठा हो। झील के पार्श्व में खड़ी ब्रह्मा-विष्णु-महेश नाम की तीम चोटियाँ प्रकृति का एक महान चमत्कार ही है। इस झील का पानी नीला है। ऐसी मान्यता है कि भगवान शिव ने अपने गले का शेषनाग का यहाँ परित्याग किया था। इसी कारण इसका नाम शेषनाग झील पड़ा। चारों ओर बर्फ से ढँकी पहाड़ियाँ को निहार कर यात्री धन्य हो जाता है। झील से थोड़ा आगे यात्रियों को रात्रि विश्राम करना होता है। यहाँ जगह-जगह भण्डारे लगे होते हैं, जहाँ यात्री अपनी पसंद के सुस्वादु भोजन से तृप्त हो जाता है।

4- शेषनाग से पंचतरणी-(12.6कि.मी.)-

पंचतरणी :-सुबह होते ही यात्री चाय-पानी-नाश्ता कर पंचतरणी की ओर प्रस्थान करता है। मार्ग में महागुनस पर्वत है जिसकी ऊँचाई 14500 फीट है। महागुनस पर्वत अपने आप में एक आश्चर्य है। हरे-भूरे, कभी-कभी सिन्दूरी रंग में दिखाई देने वाले इस विशाल पर्वत तथा उस पर जमी बर्फ की परतों से सूरज की किरणें परावर्तित होकर लौटती है तो यह किसी बड़े हीरे की तरह जगमगाता दिखता है। ऊँचाई पर होने की वजह से आक्सीजन की मात्रा में कमी होने लगती है, जिससे यात्री को साँस लेने में कठिनाई होती है। एक कदम आगे बढ़ाना भी दुश्वार सा लगाने लगता है। अत: यात्री को चाहिए कि वह यहाँ बैठकर थोड़ा सुस्ता ले और अपने आप को सामान्य स्थिति में ले आए। कपूर की डली भी उसे पास में रखनी चाहिए। उसे सूँघने में राहत मिलती है। यहाँ जोर आजमाइश करने की जरूरत नहीं है।

भगवान भोलेनाथ ने यहाँ अपने पुत्र श्री गणेश को छोड़ दिया था। तभी से इसका नाम महागणेश जो कालान्तर में महगुनस हो गया। थोड़ा आगे चलने पर पंचतरणी नामक स्थान आता है। आइसा कहा जाता है कि जब शिव माँ पार्वती को अमरकथा सुनाने के लिए यहाँ से गुजर रहे थे, तब उन्होंने नटराज का रूप धारण कर नृत्य किया था। नृत्य करते समय उनकी जटा खुल गई थी जिसमें से गंगा प्रवाहित होते हुए पाँच दिशाओं में बह निकली। ऐसी मान्यता है कि भोले ने यहाँ पंच महाभूतों का यहाँ परित्याग कर दिया था -

यात्री यहाँ रात्रि विश्राम करता है तथा जगह-जगह लगे भण्डारों में भोजन करता है।

5-पंचतरणी से पवित्र गुफा (6 कि.मी)

पवित्र गुफा :-पंचतरणी से 3कि.मी सर्पाकार पहाड़ियाँ चढ़कर 3कि.मी बर्फीली चट्टान पर चलकर यात्री बर्फ से अठखेलियाँ करता, उत्साह के साथ आगे बढ़ता है, क्योकि यहीं से वह दिव्य गुफा के दर्शन होने लगते है। गुफा को देखते ही यात्री की अब तक की सारी थकान काफूर हो जाती है।

समुद्र सतह से 12730 फीट की ऊँचाई पर 60 फीट चौड़ी, 25 फीट लंबी तथा 15 फीट ऊँची गुफा में यात्री की आँखें प्रकृति द्वारा निर्मित शिवलिंग को निहारकर धन्य हो उठती हैं। यहीं हिम से निर्मित माँ पार्वती के भी दर्शन होते हैं। गुफा के ऊपर रामकुण्ड है, जिसका अमृत समान जल गुफा में प्रवेश करने वाले यात्रियों पर बूँद-बूँद टपकता है।

हजारों फीट ऊपर से प्रकृति का अद्भुत नजारा देखकर काफी प्रसन्नता का अनुभव होता है। गुफा के पास ही हेलीपैड भी बना हुआ है, जहाँ से आप हेलिकाप्टर को पास से उतरता तथा आसमान में उड़ान भरते देख सकते हैं। वे यात्री जिनके पास समय कम है अथवा जो शारीरिक रूप से कमजोर हैं, इस सेवा का लाभ उठा सकते हैं। आपकी यात्रा के शुरुआती बिन्दु से लेकर यात्रा के अन्तिम पड़ाव तक भारतीय फौज के जवान दिन-रात आपकी सुरक्षा में तल्लीन रहते हैं। कभी-कभी घुसपैठिये इस यात्रा में विघ्न उत्पन्न करने से बाज नहीं आते। फौज के रहने से आपको चिन्ता करने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है।

भगवान अमरनाथ के दर्शन-पूजा-पाठ आदि के बाद यात्री अपनी यात्रा से वापिस लौटने लगता है। यहाँ से एक छोटा रास्ता नीचे उतरने के लिए बालटाल होकर भी जाता है। यदि आप इस काफी उतार वाले रास्ते का चयन करते हैं तो आपको रास्ते में लेह-लद्दाख-कारगिल-सोनमर्ग-गुलमर्ग होते हुए श्रीनगर आया जा सकता है। यहाँ आकर आप शिकारे का आनन्द उठा सकते हैं। कश्मीर का यह पिछला हिस्सा सौंदर्य से भरपूर है। प्रकृति नटी का अनुपम नजारा आपको यहाँ देखने को मिलता है।

अमरनाथ की यात्रा यद्यपि कठिन अवश्य है, लेकिन मन में यदि उत्साह और उमंग है तो नि:सन्देह इसमें आपको भरपूर मजा आएगा। यदि आपने प्रकृति के इस अद्भुत नजारे तो नहीं देखा तो सब बेकार है। अत: एकबार पक्का मन बनाइये और बर्फानी बाबा के दर्शनों का लाभ उठाइये। यात्रा करने से पहले हमें क्या-क्या करना चाहिए और कौन-कौन सी सावधानियाँ बरतनी चाहिए, उस पर थोड़ा ध्यान दिए जाने की जरूरत है। 1-यात्री अपना नाम-पता-टेलीफोन नम्बर-मोबाइल नम्बर आदि को अपनी जेब में अवश्य रखें और साथ ही अपने साथियों के नाम पते भी रखें, जो जरूरत पड़ने पर बड़ा काम आएगा। (2) अपने साथ सूखे मेवे, नमकीन अथवा भुने चने तथा गुड़ अवश्य रख लें। (3) सर्द हवा से चेहरे को बचाने के लिए वेसलीन, मफलर, ऊनी दास्ताने, बरसाती, मोजे, कोल्ड क्रीम साथ रखें, क्योंकि यहाँ कभी भी बारिश अथवा बर्फ पड़ सकती है। खुला आसमान और खुली धरती के बीच आपको यहाँ रहना होता है। फिर यहाँ टैंट के अलावा कोई शैड-वैड आपको देखने को भी नहीं मिलेंगे (4) यदि आप पिट्ठू या घोड़े वाले को साथ लेते हैं तो उनका रजिस्ट्रेशन-कार्ड अपने पास रख लें और यात्रा की वापसी में लौटा दें। (5) रास्ता उबड़-खाबड़ अथवा फिसलन भरा मिलेगा ही, अत: जूते वाटरप्रूफ तथा ग्रिप वाले ही पहनें। (6) चढ़ाई करते समय थक जाएँ तो बीच-बीच में आराम करते चलें। अपने आपको ज्यादा थका देने का प्रयास न करे। (7) आवश्यक दवाएँ अपने पास रखें। हालाँकि यहाँ पर पूरी व्यवस्था सरकार बना कर चलती है, फिर भी अपने पास दवाओं का किट रख लें। (8) मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं हो रहा है कि हम भारतियों में यहाँ-वहाँ कचरा फेंक देने की बुरी आदत है। कृपया इससे बचें। अपनी खाली प्लास्टिक की बोतलें अथवा प्लास्टिक की थैलियाँ यहाँ-वहाँ न फेंके। जब गाँव-शहर में ही समुचित सफाई की व्यवस्था हम नहीं बना पाते तो पहाड़ के दुर्गम स्थान पर कौन सफाई करने की हिम्मत जुटा पाएगा। कई सज्जन लोग बोतल को आधी भरकर उसे नदी में बहा देते हैं। पता नहीं, अनजाने में ही हम पर्यावरण का कितना नुकसान कर बैठते हैं। (9) मेडिकल फिटनेस का सर्टिफिकेट यात्रा से पूर्व अवश्य बनवा लें। (10) भारत सरकार ने चप्पे-चप्पे पर सुरक्षा के कड़े बन्दोबस्त किए हैं। इसके अलावा आपकी निगरानी के लिए हेलीकाप्टर से भी नजर रखी जाती है। अत: सैनिकों के द्वारा दिए गए निर्देशों का कड़ाई से पालन करें।

103, कावेरी नगर,
छिन्दवाड़ा-480001 (म.प्र.)
मो.-09424356400

बाढ़

- संतोष श्रीवास्तव

जन्म – 23 नवंबर।
जन्म स्थान – मँडला (म. प्र.)।
शिक्षा – एम.ए., बी.एड।
रचनाएँ – विभिन्न विधाओं में बाइस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – महाराष्ट्र साहित्य अकादमी पुरस्कार सहित अनेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सम्मानों से अलंकृत।

नदी की बाढ़ के अब कोई मायने नहीं रहे। नदी में बाढ़ आती है, खेत खलिहान डूब जाते हैं, अनाज बह जाता है, बाढ़ पीड़ित कुछ दम तोड़ देते हैं, जो बचते हैं वे मुआवजे की आस में पेट की कुलबुलाती आँतों को दबोचे माई-बाप की चौखट पर सिर पटकते हैं। अब आपदा तो प्राकृतिक है। इसमें सरकार क्या करेगी? कानून क्या करेगा? रखवाले क्या करेंगे? कुछ समय की हाय तौबा के बाद सब कुछ सामान्य हो जाता है। थोड़ी बहुत जनसंख्या कम होती है तो दोगुनी रफ्तार से बढ़ भी जाती है।

लेकिन इन दिनों जैसी बाढ़ हिंदी साहित्य में आई है उसका तो कोई किनारा नजर ही नहीं आ रहा। अथाह साहित्य की हिलोरें ही हिलोरें। हर हिलोर पर ढेरों पुस्तकें सवार। प्रकाशित धड़ल्ले से हो रही हैं। प्रकाशकों की जेबें छोटी पड़ रही हैं। कहाँ रुपया ठूँसें। और लेखक हैं कि लुटाए जा रहे हैं, अपना धन छपास भूख को शांत करने में। लेकिन समस्या उनके पास भी कि सैकड़ों की संख्या में छपी अपनी किताबों को रखें कहाँ? प्रकाशक तो भारी रकम वसूल लेखक की डिमांड पर किताबें छाप उसके घर के पते पर ठेल देता है। अब कहाँ रहा प्रकाशकों को मार्केटिंग से मतलब? अब तो उनकी दसों अँगुलियाँ घी में और सिर कड़ाही में है। अब तो छापेखाने से निवृत्त हो लंबी तान लो। लेखक खुद जगाएगा आकर-'भैया पांडुलिपि तैयार है। 100 किताबें कितने की पड़ेंगी?'

'हार्ड बाउंड कि पेपर बैक? पुस्तक का कवर तो आप बनवा कर दोगे न? प्रूफ आप पढ़ोगे न?'

'जी जी सब करेंगे। आप बस छाप दो।'

कवर मिलते ही व्हाट्सएप पर, इंस्टाग्राम पर, फेसबुक पर जैसे आज की ताजा खबर हो वैसे ही। 'माँ सरस्वती की असीम कृपा और आप सब की शुभकामनाओं से यह बीसवीं पुस्तक शीघ्र ही आपके हाथों में होगी।'

फिर बार-बार पोस्ट खोल कर कमेंट्स पढ़ना, लाइक गिनना और अपने आप में गद्गद रहना।

अब इतने कवि, कथाकार, उपन्यासकार, लघुकथाकार, संस्मरणकार साहित्य के अखाड़े में उतर आए हैं कि गिनती करना मुश्किल है। साहित्य बेचारा हाँफता, बिसूरता एक ओर खड़ा है और अखाड़े में धूल के गुबार हैं।

कैसे समेटे, कैसे बचाए खुद को साहित्य। इतने सारे गुट। फलां साहित्यकारों का गुट जनवादी, फलां का वामपंथी, फलां का निर्दलीय। सबके अपने-अपने मंच हैं, संस्थाएँ हैं। मंचों पर साहित्यिक चर्चा कम एक-दूसरे की टाँग खिंचाई ज्यादा है। होड़ लगी है। प्रतिस्पर्धाओं का बोलबाला है। हर एक संस्था से सौ डेढ़ सौ की संख्या में पुरस्कार बाँटे जा रहे हैं। पुरस्कार न हुए

रेवड़ियाँ हो गईं। इन पुरस्कारों को पाने के लिए (जिसमें पुरस्कार राशि तो है ही नहीं, बस एक मोमेंटो और शॉल है और पुरस्कार ग्रहण करते हुए कैमरे की तरफ मुस्कुराते हुए देखने का अवसर भी) लेखकों ने 'चैन वैन सब उजड़ा जालिम नजर हटा ले बर्बाद हो रहे हैं।' की तर्ज पर पुरस्कार आयोजक आकाओं की शरण गही। आकाओं ने भी उनसे मोटी रकम ले उनके ऊल-जलूल लेखन को पुरस्कृत कर उन्हें महान साहित्यकारों की कतार में ला खड़ा किया।

'बरस गई किरपा' उन पर। साहित्यिक मापदंड से परे संपादन और किसी की सलाह को ठेंगे पर रखे जंगली झाड़ियों से उगे ये लेखक आह! लेखक!

अपने पुरस्कृत होने का समाचार खुद बनाकर फोटोग्राफर को रुपए देकर फोटो खिंचवाने के पहले ही चेता कर कि भैया अखबार के हिसाब से खींचना फोटो और यह रहा हमारा व्हाट्सएप नंबर इस पर फोटो भेज देना रात को ही। बासी न्यूज़ पेपरवाले नहीं छापते न।

चाक चौबंद होकर लेखक पत्रकार की चरण वंदना यानी मुद्रा अर्पित कर अपने पुरस्कृत होने का समाचार फोटो सहित छपवाकर, फिर गद्‌गद आत्ममुग्ध होने की पराकाष्ठा को पार करता उन समस्याओं पर विचार करने लायक नहीं रह जाता जो उसकी कलम से सृजित होने को तड़प रही हैं। जिंदगी के अवसाद, परेशानी, गरीबी, बेरोजगारी, भूख, कुपोषण, दवाओं का अभाव, सरकारी अस्पतालों की दुर्दशा और प्राइवेट अस्पतालों की लूट, नैतिक मूल्यों में गिरावट, बुनियादी अधिकारों की अवहेलना सारी समस्याएँ मुँह बिसूरती तकती हैं, उस कलम को जो तलवार से भी ज्यादा गहरी चोट करती है पर लेखक तो साहित्यिक उपलब्धि के नशे में आकंठ निमग्न है।

फ्लैट नं. 221, ऐक्या फाउंडेशन,
ए 163, महाकाली सोसाइटी, त्रिलंगा,
भोपाल - 462016 (म.प्र.)
मो.- 9760023188

श्री सुखदेव प्रसाद दुबे
उत्तर क्षेत्रीय युवा लेखक सम्मिलन

श्री देवन्द्र कुमार देवेश
उत्तर क्षेत्रीय युवा लेखक सम्मिलन

जीवन की आपाधापी में क्या भूला क्या याद रहा

– ओम उपाध्याय

जन्म – 11 जुलाई 1949।
शिक्षा – बी.एससी.।
रचनाएँ – सात पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – राष्ट्रीय साहित्य सृजन शिखर सम्मान सहित अनेक सम्मान।

विन्ध्य की सुरम्य उपत्यकाओं पतित पावनी देवी नर्मदा नदी के उत्तरीतट तथा कभी पुण्य श्लोका देवी अहल्याबाई की राजधानी रही महिष्मती नगरी जो वर्तमान में महेश्वर के नाम से ख्यात है और पश्चिमी निमाड़ जिले का तहसील मुख्यालय है जिसके अंतर्गत कई छोटे-छोटे गाँव हैं, उन्हीं में से एक छोटा सा गाँव झापड़ी है। इसी गाँव के एक निर्धन ब्राह्मण परिवार में देश के स्वतंत्र होने के दो वर्ष पश्चात् श्रीमती अंबिका देवी उपाध्याय और श्री बाबू लाल जी उपाध्याय के घर में 11 जुलाई 1949 को तीसरे पुत्र के रूप में मेरा जन्म हुआ।

मेरे जन्म के बाद दो भाइयों और एक बहन का जन्म हुआ और छः भाई बहन हो गए। पिता जी, सातवीं कक्षा तक पढ़े थे और शासकीय सेवा में प्राथमिक स्कूल में अध्यापक के पद पर पदस्थ थे। घर में कमाई और नौकरी करने वाले केवल पिता जी थे, जमीन-जायदाद बहुत थोड़ी थी, माँ और दादी दोनों अनपढ़ थे। हाँ अलबत्ता दादा जी थोड़े-बहुत पढ़ लिखे थे और पंडिताई करते थे। पिता जी शिक्षा की महत्ता पढ़ाई-लिखाई के गुण और पठन-पाठन की आवश्यकता को भलीभाँति जानते-समझते थे। वे चाहते थे कि उनके बच्चे अच्छी और ऊँची शिक्षा प्राप्त करें। ताकि ऊँचे पदों पर पहुँच कर अपना जीवन सार्थक करें तथा निर्धनता से निजात पाएँ। झापड़ी गाँव में पाठशाला तो थी किंतु पढ़ाई सिर्फ दूसरी कक्षा तक की ही होती थी। इसलिए पिता जी ने मेरे से बड़े दोनों भाइयों को कक्षा पाँच तक की शिक्षा प्राप्त करने हेतु अपने मामा जी के गाँव सोमाखेड़ी भेज दिया। बाद में कक्षा छठवीं से ग्यारहवीं तक की पढ़ाई के लिए कस्बे मण्डलेखर में किराए का मकान लेकर दादी जी के संरक्षण में पढ़ने के लिए भिजवा दिया।

आज, आत्मकथ्य लिखते हुए मुझे याद आ रहा है, झापड़ी गाँव का वह शारदेय उत्सव जो त्रयोदशी से आरंभ होता और शरद पूर्णिमा के अगले दिन समापन होता। इन तीन दिनों के इस उत्सव में रात्रि में धार्मिक नाटकों का मंचन होता जिसमें सभी कलाकार झापड़ी के ही होते और सब पुरुष होते। वे ही महिला पात्रों का अभिनय भी करते। शारदेय नाट्योत्सव में जो नाटक खेले जाते थे वे निश्चित थे जिन्हें कई पीढ़ियों से खेलते आ रहे थे। पूरी पोषाक, अस्त्र-शस्त्र मुखौटे, मुकुट वगैरह पूर्व से ही बने हुए थे और अत्याकर्षक अद्‌भुत थे। उस उत्सव में जब मैं तीन-चार वर्ष का था मुझे बाल गोपाल बना, सिर पर मोरमुकुट पहनाकर हाथ में वंशी देकर आरतीकर एक कुर्सी पर बिठा दिया जाता। बालकृष्ण को तब तक बैठना पड़ता जब तक कि नाटक का समापन नहीं हो जाता फिर आरती होती और अगले दिन तक के लिए फुर्सत हो जाती। बाल श्रीकृष्ण के इस पात्र को मैंने तीन वर्षों तक जिया और बाल उम्र के विदा होते ही उक्त पात्र को छोटे भाई तथा अन्य ब्राह्मणों के बच्चे जीने लगे। किशोरावस्था में मैंने रामायण और रामचरित मानस के महानायक (श्रीराम) के चरित्र का भी अभिनय किया। मेरे अवचेतन मन में ईश्वरीयता सत्ता, धार्मिक चेतना सनातनता पैठ गई थी। जब मैं लेखन के क्षेत्र में आया तो वह सब मुखर हो गया। मैंने कई धार्मिक लेख, रचनाएँ, भक्तिगीत, आरतियाँ तथा एक 'अथ आद्यदेव ऊँ अगस्त्येश्वर माहात्म्य महाव्रत कथा' का भी लेखन किया जिसकी पोथी प्रकाशनाधीन है। नाटकों के बीच में एकरसता तोड़ने के लिए हास्य के छोटे-छोटे टुकड़े भी प्रस्तुत किए जाते थे जो पूरी तरह से गँवई, ग्रामीण क्रिया कलापों तथा ग्रामीण परिवेश को हास्य में पिरोकर खेले जाते थे। उक्त हास्य के प्रहसन भी मेरे दिमाग में कहीं थे और जब मैंने हास्य एकांकी लिखना प्रारंभ किया तो शायद आधार उन्हीं का रहा हो। हालाँकि पृष्ठ भूमि नितांत भिन्न और ऐकिक रही। मेरे वे हास्य के प्रहसन आकाशवाणी इंदौर तथा भोपाल से कई वर्षों तक प्रसारित होते रहे और अब भी यदाकदा प्रसारित हो जाते हैं। उक्त प्रहसनों की मेरी एकनाट्य कृति प्रश्नचिह्न भी प्रकाशित हुई जिसमें सारे एकांकियों का समावेश है।

आज जब अपने बाल्यकाल और किशोरवय पर दृष्टि डाल रहा हूँ तो याद आ रहा है 'कतर गाँव' का वह शासकीय प्राथमिक विद्यालय जहाँ से मैंने चौथी और पाँचवीं की कक्षाएँ प्रथम श्रेणी में पास कीं। उक्त प्राथमिक विद्यालय में पिता जी प्रधानाध्यापक थे। मुझे याद है, उस स्कूल के जिस कक्ष में मैं और पिता जी रहते थे, वहाँ एक टीन का बहुत बड़ा बक्सा था। उस बक्से में कई पत्रिकाएँ जो उस समय प्रकाशित होती रही थीं, उनके साथ कुछ बाल पत्रिकाएँ भी थीं जिसमें से मुख्य रूप से 'चंदा मामा' के कई अंक थे। मुझे पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने की आदत, वहीं से लगी। उन पत्र-पत्रिकाओं को मैंने अपनी पढ़ाई के दो वर्षों में कई-कई बार पढ़ा। विशेषकर 'चंदा मामा' की कहानियों को और कई कहानियाँ तो मुझे कंठस्थ हो गई थीं। पिता जी ने मुझे मण्डलेश्वर जहाँ उच्चत्तर माध्यमिक विद्यालय था और वहाँ पर मेरे से बड़े नाना भाई पढ़ रहे थे के पास छठवीं से आगे की पढ़ाई के लिए भेज दिया। चूँकि मुझे पाठ्य पुस्तकों के पढ़ने के साथ पत्र-पत्रिकाओं के पढ़ने का चस्का लग चुका था और मण्डलेकर में इन सबकी विपुलता थी।

हमारा स्कूल जो महात्मा गाँधी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के नाम से जाना जाता था में एक बड़ा सा वाचनालय था। जिसमें ढेर सारी पत्रिकाएँ जिनमें 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', कादम्बिनी 'सरिता' 'मुक्ता' आदि के अलावा बाल पत्रिकाएँ 'पराग, नंदन, चंदामामा, बालभारती, चंपक, सुमन सौरभ' तथा अनेक समाचार पत्र आते थे। मैं स्कूल की छुट्टी तथा बीच में मध्यांतर के समय पढ़ता था। स्कूल के वाचनालय के अलावा मण्डलेखर नगर पालिका का बहुत बड़ा सार्वजनिक वाचनालय था उसमें भी अनेक नामचीन पत्रिकाएँ एवं नित्य के अखबार आते थे। उक्त वाचनालय में मैं बिना नागा जाता था। पढ़ने की आदत घर में सिर्फ मेरी ही नहीं थी सभी भाइयों को पढ़ने का शौक था और आज भी है। इधर मैंने छठी कक्षा उत्तीर्ण की, उधर बड़े भाई (नाना भाई) साहब ने ग्यारहवीं पास की और महाविलयीन शिक्षा प्राप्त करने के लिए बड़वानी चले गए फिर मुझे पिता जी ने सातवीं और आठवीं कक्षा की पढ़ाई हेतु मण्डलेश्वर में बुआजी के यहाँ रखवा दिया। जब मैं नवमीं कक्षा में पहुँचा तब तक सबसे बड़े भाई साहब (मोटा भाई) स्नातक की उपाधि लेकर मण्डलेश्वर आ गए थे और उसी स्कूल जिसमें वे पढ़े थे, उच्च श्रेणी शिक्षक के पद पर शासकीय आदेश मिलने तक पदस्थ हो गए। चूँकि वे गणित विज्ञान के स्नातक थे और ऐसे शिक्षक की मण्डलेश्वर के स्कूल में बहुत कमी थी। भाई साहब (मोटा भाई) के उ. श्रे. शिक्षक के पद पर पदस्थीकरण के आदेश तब आए जब मैं कक्षा दसवीं में पहुँच गया और आदेश भी खरगोन जिला मुख्यालय की एक सरकारी स्कूल के थे। फिर मुझे तथा मेरे से छोटे भाई को उनके साथ खरगोन जाना पड़ा। अभी खरगोन में सबसे बड़े भाई साहब को पढ़ाते-पढ़ाते एक वर्ष ही हुआ था कि उनका स्थानांतरण पुन: मण्डलेश्वर हो गया और मुझे ग्यारहवीं कक्षा की पढ़ाई मण्डलेश्वर में करना पड़ी। पढ़ाई की इस आवाजाही ने मेरे ग्यारहवीं कक्षा के बोर्ड के परिणाम पर बहुत गहरा असर डाला और मैं अपने परिजनों, गुरुजनों और साथियों की अपेक्षा के अनुरूप नतीजा नहीं दे पाया। सबको बहुत निराश किया, और स्वयं भी दु:खी हुआ।

जब परिवार जनों की अपेक्षाओं पर खरा नहीं उतरा तो मुझे विज्ञान और गणित में स्नातक की उपाधि (डिग्री) प्राप्त करने हेतु शासकीय महाविद्यालय बड़वानी भेज दिया किंतु वहाँ भी वही ढाक के तीन पात . . . संसर्गजा दोष गुणा। जब बुरे दिन आते हैं तो सब चीजें जो भी करो बुरा ही होता है। इधर घर वाले नाराज उधर लगा कि भविष्य चौपट हो गया। हर तरफ अँधेरा ही अँधेरा नजर आने लगा। इस तरह छ: वर्ष बीत गए इन वर्षों में कई बार अवसाद से गुजरा, जीवन निरर्थक लगने लगा अंतत: जैसे-तैसे स्नातक की डिग्री हासिल करली। बड़े भाइयों को लगा कि इसे स्नातकोत्तर की डिग्री दिलवाना व्यर्थ है इसलिए उन्होंने मुझे ग्यारहवीं बोर्ड की अंक सूची में प्राप्त अंकों के आधार पर नागरिक अभियंता की पत्रोपाधि (सिविल इंजी. मेडिप्लोमा) के तीन वर्षीय पाठ्यक्रम में पंडित जवाहरलाल नेहरू पॉलिटेकनीक सनावद में प्रवेश दिलवा दिया।

सनावद पॉलिटेकनिक कॉलेज में प्रवेश लेते ही मेरी किस्मत एकदम से चमक गई, कुहासा छँट गया, अचानक सब विपरीत चीजें पक्ष में हो गईं। सर्वप्रथम जो उपलब्धि हुई वह थी छात्रवृत्ति का मिलना। प्रथम वर्ष उत्तीर्ण कर दूसरे वर्ष में प्रवेश किया तो कॉलेज का अध्यक्ष चुन लिया गया। चुनाव में स्थानीय राजनीति का दखल भी रहा और अध्यक्ष बनते ही नामांकित पार्षद (एल्डरसन) का पद मिल गया। अपने अध्यक्षीय कार्यकाल में कॉलेज में पहचान पत्र (आइडेन्टिटी कार्ड) बनवाने का शुभारंभ किया, खेल गतिविधियों को आगे बढ़ाया। सनावद नगर में चलाए गए अनाज आंदोलन में सक्रिय भाग लिया, भूख हड़ताल पर भी बैठा इन सबके साथ कुछ तुक बंदी भी करता रहा।

जलुद से इंदौर नर्मदा जल पहुँचाने वाले ठेकेदारों में सबसे बड़े ठेकेदार थे ई.सी.सी. (इंजीनियरिंग कन्स्ट्रक्शन कार्पोरेशन लि.) वे अपनी इंजीनियरों की टीम में स्थानीय इंजीनियरों को भी शामिल कर रहे थे। उक्त कंपनी में तकनीकी सहायक के पद हेतु मैंने भी आवेदन किया और मुझे उक्त पद हेतु पदस्थ कर 'लोड टेस्ट' का कार्य दे दिया। बाद में सरकारी नौकरी में सिंचाई विभाग में उपयंत्री के पद पर पदस्थ हो गया। मण्डलेश्वर में कई हिंदी-निमाड़ी के साहित्यकारों के संपर्क में आया। इसी बीच मण्डलेश्वर में सचिन साहित्य परिषद का गठन हुआ तथा प्रथम पुष्प के रूप में हिंदी-निमाड़ी रचनाओं का पहला साझा संकलन 'रेवार्चन' का प्रकाशन किया। उक्त संग्रह में मेरी भी दो हिंदी की कविताएँ प्रकाशित की गईं जो किसी भी संकलन में प्रकाशित होने वाली मेरी पहली रचनाएँ थी। यद्यपि उससे पहले धर्मयुग की सह-पत्रिका 'माधुरी' में मेरी दो तीन हास्य-व्यंग्य की रचनाएँ छप चुकी थीं। मेरी किसी भी पत्र-पत्रिका में प्रकाशित होने वाली हली रचना थी 'रोटी, कपड़ा और मकान' और वह पत्रिका थी 'माधुरी' इसी में मेरी पहली छायाचित्र वाली रचना भी छपी थी जिसका शीर्षक था 'रचना नहीं फोटो।' मैंने कुछ कवि-सम्मेलनों में कविता पाठ भी किया।

मुझे याद है 19 दिसंबर 1977 को मैंने ग्वालियर में सिंचाई विभाग के चंबल-बेतवा मण्डल क्र-2 में उपयंत्री के पद पर सरकारी नौकरी ज्वाइन की तथा 20 मई सन् 1978 को परिणय सूत्र में बँधा। लगभग दो वर्ष तक मैं चंबल की नहरों के आसपास श्योपुरकलां, बड़ौदा तथा मुरैना में पदस्थ रहा। तत्पश्चात् चंबल-बेतवा का मास्टर प्लान बनाने में सहयोग करने हेतु मुझे भोपाल के प्रमुख अभियंता कार्यालय में संलग्न (अटैच्ड) कर दिया।

भोपाल में आने के बाद लेखन के क्षेत्र में मैंने अपना दायरा बढ़ाया। और आकाशवाणी केन्द्र से प्रसारण हेतु कविताएँ प्रेषित की मेरी कविताएँ केन्द्र से प्रसारित हुई फिर मैंने हास्य की झलकियाँ लिखीं और उनका भी प्रसारण हुआ फिर तो आकाशवाणी केन्द्र से मेरी विविध रचना सामग्री का नियमित प्रसारण होने लगा। आकाशवाणी भोपाल में मेरी पहचान बनते ही मुझे केन्द्र से समीक्षार्थ पुस्तकें मिलने लगी। आकाशवाणी केन्द्रों इंदौर, भोपाल से प्रसारित मेरी हास्य एकांकियों का संग्रह 'प्रश्न चिह्न' करवट कला प्रकाशन भोपाल ने प्रकाशित किया जिसे जबलपुर की साहित्यिक-सांस्कृतिक संस्था 'कादम्बरी' ने सन् 2010 में स्व. मन मोहन लाल दुबे स्मृति एकांकी सम्मान से तथा 2016 में स्व. बेनी प्रसाद त्रिवेदी स्मृति पुरस्कार से पुरस्कृत और सम्मानित किया।

यह समय तब का है जब दूरदर्शन नहीं आया था और रेडियो का बोलबाला था तथा रेडिया पर कई प्रायोजित कार्यक्रमों का प्रसारण होता था। उन कार्यक्रमों में मैं शिद्दत के साथ भाग लेता था और प्रत्येक माह में कम से कम एक पुरस्कार अवश्य जीत लेता था। मुझे याद है 'सीबा गॉयगी' ऑफ इंडिया, मुंबई का एक प्रायोजित कार्यक्रम 'बिनाका गीत माला' जो प्रत्येक बुधवार को रात्रि में आठ से नौ बजे तक प्रसारित होता था। उक्त कार्यक्रम में उन्होंने एक अ. भा. प्रतियोगिता रखी थी। उक्त प्रतियोगिता में मुझे अखिल भारतीय द्वितीय पुरस्कार मिला था। मुझे पुरस्कार की राशि के साथ तीन वर्ष तक हर छः माह में एक गिफ्ट हैंपर मिलता था। जिसमें छः टूथ पेस्ट और छः टूथ ब्रुश होते थे। जिन्हें पास-पड़ोसियों में बाँट देते थे। भोपाल में हम कस्तूरबा नगर में किराए के मकान में रहते थे जो भेल क्षेत्र से सटा था। एम.पी. नगर का पुल हमारे सामने बना था। कस्तूरबा नगर में एक शिवालय का निर्माण करवाया तथा उसमें शिवलिंग की स्थापना नदी के साथ की तथा प्रथम पूज्य देव श्री गणेश जी स्थापना करना, श्री गणेशोत्सव मनाना तथा श्री गणेश जी की मूर्ति का विसर्जन करना इस परम्परा का श्री गणेश (शुभारंभ) भी किया। गैस त्रासदी (गैसकांड) को भी भुगता। इन सब के साथ लेखन कार्य भी चलता रहा।

जैसा कि मुझे पठन-पाठन का शौक रहा, घर में कुछ पत्रिकाएँ लेखकीय प्रति के रूप में आ जातीं कुछ बाहर बाजार से क्रय कर लाता। घर में 'नई दुनिया' इंदौर जो उस समय का जाना-माना हिंदी दैनिक अखबार था, उसका नियमित ग्राहक था। उक्त समाचार पत्र नई दुनिया के तीन स्तंभ 'अधबीच' (हास्य-व्यंग्य लेख) 'पत्र संपादक के नाम' और 'बच्चों की दुनिया' (रविवारीय) प्रमुख थे। मैंने तीनों विधाओं पर लेखनी चलाई और प्रकाशित व्यंग्यों तथा बाल कविताओं की संख्या इतनी हो गई कि तीन व्यंग्य संग्रह 'अमर उठवाटे लेने चल' 'हम स्वतंत्र' और 'कद्दू खाओ देश बचाओ' तथा तीन बाल काव्य संग्रह क्रमशः 'कौतूहल' भोपाल सन् 1999 'बंदर मामा बूम बड़ाम' तथा 'तितली के पंख' का प्रकाशन हो गया। उक्त व्यंग्य संग्रहों के कुछ व्यंग्य 'दैनिक ट्रिब्यून' (चण्डीगढ़) नवभारत टाइम्स, जनसत्ता में भी प्रकाशित हुई थे। इसी तरह तीनों बाल काव्य संग्रहों की बाल रचनाएँ उपरोक्त समाचार पत्रों के साथ 'बाल भारती'

देव पुत्र, 'चंपक', सुमन सौरभ, 'बालहंस, नंदन, पराग, चंदामामा, बालवाणी, बाल भास्कर, बालवाटिका' आदि इनमें से कोई बालपत्रिकाओं में अभी भी बाल रचनाओं का प्रकाशन जारी है। उक्त तीनों बालकाव्य संग्रह बाल कल्याण एवं बाल साहित्य शोध केन्द्र भोपाल द्वारा स्व. रामसेवक सक्सेना स्मृति बाल साहित्य सम्मान से सम्मानित एवं पुरस्कृत हुए। अलावा इनके वे अन्यत्र भी सम्मानित हुए। उक्त तीनों संग्रह की बाल रचनाओं पर शोध भी हुए। जैसा कि मैंने ऊपर कहा मैंने तीनों स्तंभों 'व्यंग्य' बाल साहित्य और पत्र, सम्पादक के नाम पर अपनी कलम चलाई है मैंने संपादक के नाम स्व. री कोमल चंद-श्रीमती आशालता जैन की स्मृति में साहित्य सागर और रोटरी क्लब ऑफ भोपाल, शाहपुरा के संयुक्त आयोजन में पत्र लेखन प्रतियोगिता हुई जिसमें मुझे प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। चूँकि मेरा रुझान हर विधा में था इसलिए मैंने हर विधा में लिखा मसलन कहानियाँ, समीक्षाएँ, आलेख, लघुकथाएँ, निबंध, यात्रा वृत्तांत, रिपोर्ताज, ग़जलें, मात्रिक छंदों में दोहे, उपन्यास आदि। निबंध लेखक की बात निकली तो मुझे याद आता है म.प्र. वन विभाग का वाइल्ड लाइफविंग का वह आयोजन जिसमें उन्होंने एक निबंध प्रतियोगिता रखी थी जिसके निबंध का विषय था 'वन विहारों का विकास कैसा हो?' इस प्रतियोगिता में मुझे प्रथम पुरस्कार मिला।

आज जब जीवन के पिछले पन्नों को पलट रहा हूँ तो याद आ रही वे पत्रिकाएँ जिनमें कभी मेरी रचनाओं का प्रकाश हुआ था और अब वे बंद हो चुकी हैं, वे हैं धर्मयुग, 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान, माधुरी' आदि और कुछ वे पत्रिकाएँ जिनमें आज भी विविध विधाओं की सामग्री प्रकाशित हो रही हैं, वे हैं 'कादम्बिनी, नवनीत, राष्ट्र धर्म पाञ्चजन्य, प्रेरणा, मधुमती, वीणा, अक्षरा, सखी, जागरण, ताना-बाना गोंडवाना भारती, साहित्य अमृत, जाह्नवी, सरिता मुक्ता, सरस सलिल, साक्षात्कार, गृहलक्ष्मी, मनोरमा' इत्यादि।

जैसा कि होता है, जब आप किसी अजनबी शहर में जाते हो, तब वहाँ सब अपरिचित्त होते हैं और आपको उनसे परिचित होना पड़ता है। मैंने भोपाल में होने वाली काव्य गोष्ठियों में जाना प्रारंभ किया। धीरे-धीरे मैं उनसे परिचित हो होता गया जो गोष्ठियों में आते थे और वे मुझसे। इसी बीच मेरा स्थानांतर नर्मदाघाटी विकास प्राधिकरण में हो गया चूँकि उसका कार्यालय भोपाल में ही था इसलिए बाहर कहीं जाना नहीं पड़ा।

भोपाल में रहते हुए मुझे लगा कि हिंदी मेरी मातृभाषा है और मैं देश के सभी हिंदी पत्र-पत्रिकाओं में अपनी विविध रचनाएँ प्रेषित करता हूँ और प्राय: वे सभी प्रकाशित होती हैं तो मुझे यहाँ के हिंदी भवन से म.प्र. राष्ट्र भाषा प्रचार समिति से तथा अक्षरा से जुड़ना चाहिए मैं म.प्र.रा.भा.प्र.स. का सदस्य बना। 'हिंदी भवन' में आयोजित कार्यक्रमों में अपनी उपस्थिति दर्ज कराने लगा ओर 'अक्षरा' में विविध रचना सामग्री प्रेषित करने लगा, जिनका निरंतर प्रकाशन होने लगा, यह ताजा आत्मकथ्य भी उसी की कड़ी है, उसी की शृंखला है। हिंदी भवन के साथ ही मैं भारत भवन से भी जुड़ा और उसका मानद सदस्य बना। इसी भाँति भोपाल के अन्य संस्थानों से भी जुड़ा।

आत्मकथ्य के उपसंहार और समापन के पूर्व मैं कहना चाहूँगा कि मैं परिवार सहित भोपाल में लगभग तीस-पैंतीस वर्ष रहा। पूरे परिवार की मंशा थी कि भोपाल को ही स्थायी निवास बनाएँ और उसकी पूरी तैयारी भी करली थी अपना निजी आवास भी बनवा लिया था किंतु ईश्वर को कुछ और ही मंजूर था। अर्थात् आगे का दाना-पानी इंदौर का था क्योंकि पुत्र की नौकरी इंदौर में थी सो हमें सब कुछ छोड़ कर बेटा-बहू और पोते-पोतियों के पास आना पड़ा। इंदौर आने के बाद मैं यहाँ के साहित्यिक परिवेश से जुड़ा। इंदौर में आने के बाद मुझे कई सम्मान मिले। इंदौर में रहकर मैंने अभी-अभी अपना पहला उपन्यास 'वृद्धाश्रम' पूरा किया जो अब प्रकाशकाधीन है। जबकि उसकी पुस्तकाकार पांडुलिपि श्री अहिल्या केन्द्रीय वाचनालय ने पाठकों के पढ़ने के लिए रख ली।

प्रिय पाठकों, आज जब आत्मकथ्य का लेखन कर रह हूँ तो आत्ममंथन, आत्मविवेचन और आत्म मनन भी हो रहा है। मेरा स्वभाव अंतर्मुखी है, मैं अधिक मुखर नहीं होता, भाषण कला मुझे नहीं आती, जग-गण में भी मैं अधिक नहीं घुल-मिल पाता, यद्यपि मैं पूरी कोशिश करता हूँ कि उपरोक्त से छुटकारा पा जाऊँ किंतु सफल नहीं हो पाता। अब तो बोलना कम, लिखना ज्यादा स्वभाव ही बन गया है, आदत ही बन गई है। अपने लेख के विषय में मेरा मानना है कि-'अभी तो मैं अक्षर ही एकत्रित कर रहा हूँ। अब कब उनके शब्द बनेंगे और कब वाक्य बनेंगे जबकि सुबह का धुँधलका, सुबह और दोपहर सब पीछे छूट गए हैं और शाम का धुँधलका छाने लगा है।'

बी-107, प्रथत तल,
स्टर्लिंग स्काय लाइन,
इंदौर-452016 (म.प्र.)
मो.-9407515174

➤ कहानी

लेन-देन

- रेनू श्रीवास्तव

जन्म - 22 जुलाई 1977।
जन्म स्थान - रीवा (म.प्र.)।
शिक्षा - एम.एस.सी.।
रचनाएँ - दो पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - क्षेत्रीय सम्मान।

जाने कितने वर्षों से नित एक सी शुरू होने वाली ताजगी भरी सुबह आज अनमनी थी।

अल-सुबह मॉर्निंग वॉक के बाद गरमा-गरम चाय, समाचार पत्र की ताजा-तरीन खबरों की जगह दूर बैठी बिटिया, बेटे के फोन ले रहे थे।

शर्मा जी, बेटा, बिटिया सब कॉन्फ्रेंस पर साथ। यूँ उन्हें कभी फोन पर बात करना रुचता नहीं था।

हमेशा पत्नी ही बच्चों से बात करती थी, उन सबके बीच का पुल थीं वो, बात करके अच्छी-बुरी सब बातें उन्हें बता देती थीं किंतु आज कुछ ऐसी जरूरत पड़ी कि उन्हें खुद फोन लगाना पड़ा। चार दिन पहले से ही ये उथल-पुथल शुरू हो गई थी।

जब वर्षों बाद पिता का नम्बर स्क्रीन पर उभरा होगा तो बच्चे चौंके जरूर होंगे-'हाँ पापा' के साथ वार्तालाप शुरू हुआ होगा, उधर से रुँधी सी आवाज 'बेटा तुम्हारी माँ का दिमाग खराब हो गया।'

'क्या'

'वो मुझे छोड़कर जा रही है।'

बिटिया का पहला निर्णयात्मक कथन-'आप जरूर लड़े होंगे, माँ में भी अब वो शक्ति नहीं रही, पर आप कुछ समझो तब तो, खैर परेशान मत हो, मैं अभी बात करती हूँ।

पत्नी के फोन पर रिंगटोन सुनने के बाद कान जैसे उधर ही चस्पा कर दिये, उधर से वार्तालाप शुरू था-'तो तुम्हें भी खबर पहुँच गई।'

'आप एक काम करो, मेरे पास आ जाओ।'

'मुझे किसी के पास नहीं जाना, जहाँ मेरा मन होगा वहाँ जाऊँगी।'

'यार क्या बचपना है? कुछ ज्यादा कह दिया पापा ने।'

'नहीं बेटा कुछ भी नहीं बोला तुम्हारे पापा ने, बस मुझे नहीं रहना साथ।' काफी देर तक बिटिया और बाद में कॉन्फ्रेंस में जुड़े बेटे ने बहुत प्रयास किये मनाने के-'माँ आप जानती हो पापा आपके बिना नहीं रह पाएँगे, प्लीज गुस्सा थूक दो।'

बेटा कोई नाराजगी नहीं है, ये कदम बरसों पहले उठाना था, पर कहीं तू, कहीं बिट्टू मेरे पैरों की जंजीर बनते रहे, पर अब नहीं, मुझे जाना है।

'प्लीज माँ इस तरह मत करो।'

अन्ततः बच्चे अनुनय-विनय पर उतर आये, पर माँ जो हमेशा सबकी हाँ में हाँ मिलाती रही, आज ऐसी जिद्दाई बैठी थी कि जैसे कसम खाई हो-कुछ नहीं सुनेगी।

बाप, बेटे, बेटी में तय हुआ सब आकर मनाएँगे तो माँ मान ही जाएँगी। कुछ दिनों बाद अल सुबह जब दोनों ने साथ आकर दरवाजे पर दस्तक दी तो पिता चौकन्ने हो गए, माँ ने अलसाई सी आँखें खोलीं। सामने बच्चों को देखकर बाँहें फैला दीं-'मुझे मालूम था तुम लोग आओगे।'

'ये क्या बचपना है माँ, हम दोनों कितनी मुश्किल से आए हैं।' बेटे का खीज भरा स्वर।

'आ ही गए हो तो आराम से बात करते हैं।' उठकर माँ नित की व्यवस्थाओं में लग गई। बच्चे पिता के साथ कानाफूसी में लग गए।

'बेटा मैंने हर तरीके से मना कर देख लिया, वो कुछ सुनती ही नहीं, उसकी हर शर्त मानने को तैयार हूँ, फिर भी अड़ी है तो अड़ी है। ये भी कोई उमर है, खुद साठ की होने जा रही, मैं तो हूँ ही रिटायरमेंट के बाद बीमार, ऐसे समय में ये हरकत, जाने कौन सा भूत सवार है।' आप लोग रुक जाओ मैं बात करती हूँ।, माँ के सर्वाधिक निकट बिटिया ने घोषणा कर दी। दिन भर सामान्य सा गुजरा, हाँ माँ की वो पहले सी खातिरतवज्जो वाला सीन नजर नहीं आया।

एकांत पाते ही बिटिया माँ की कमर में हाथ डाल लड़ियाने लगी, वही प्रेम पगा स्पर्श, वही मृदुल स्नेहिल थाप, मौका देख उसने शुरुआत करी-'माँ ऐसा क्या हुआ कि आप ने इतना बड़ा निर्णय ले लिया।'

'बेटा ये कोई एक दिन की घटना नहीं कि मैं बता दूँ कि आहत हुई और सब छोड़कर जा रही, ये तो वर्षों बरस पहले की घटना है। जब मैं तेईस साल की उम्र में पढ़ते-पढ़ाते ब्याह दी गई। एक खाते-कमाते इन्सान से, ठीक है उन दिनों चलन ही ये था। एक नवयुवती जिसके हजारो-हजार सपने थे जिसने माँग में सिंदूर भरने वाले अपरिचित को सर्वस्व समर्पण का वचन बिन बोले दे दिया था। वो अपने साथ दान-दहेज के अलावा ढेरों-ढेर स्वप्न लेकर आई थी। सपनों का कद कोई बहुत ऊँचा तो नहीं था कि कोई नाप न सके, बस इतना ही चाहा। एक नि:स्वार्थ, पारदर्शी, सामन्जस्य उस बड़े से संयुक्त परिवार का एक छोटा सा सदस्य इतना छोटा कि जिसकी कोई अहमियत रसोई घर में खाना बनाने से ज्यादा थी ही नहीं। वो भी अपनी पसंद का नहीं, रोज सुबह तुम्हारी दादी बताती क्या, बनेगा? खैर वो तो ठीक था, घर की मालकिन थीं वो।

पर रसोईघर से इतर एक और कमरा था, जहाँ अपना संसार था। अपने प्रेम के, मान के मुद्दे थे, पर उन्हें पूरा करना तो दूर किसी ने नजर भर देखा ही नहीं। कभी नहीं समझा उस प्यास को जो आज तक 35 साल साथ रहने के बाद भी ज्यों की त्यों धरी है। जैसे मेरे अन्दर एक भावों की भरी गागरी हो, बिल्कुल अनछुई। बहुत प्रयास किये उनके अनुसार ढलने का, सचमुच ही सर्वस्व समर्पण किया। तन, मन, विचार, मत सब उनके भृकुटि संचालन से संचालित रहा, पर देखा मुझे मिला क्या? पहले-पहल सिर्फ देने वाली प्रक्रिया रही, हाथ खोल कर, दिल खोलकर, तुम बच्चों का जन्म, पालन-पोषण सब में मशीन बनती गईं तुम्हें पिता इस मशीन को चलाने वाले ऑपरेटर बिना भाव, बिना संवेदना के सिर्फ मुझे जरूरतों के लिए इस्तेमाल करते गए।

मैंने माँगा क्या उनसे? क्या इतना मुश्किल था देना, प्यार के दो शब्द थक कर हारने पर पीठ पर एक अपनत्व की थपथपाहट, 'मैं हूँ ना!' वाला आश्वस्त भार। किसी भी जगह पर टूटने पर साथ खड़े होने का एहसास, कुछ भी नहीं मिला। एकदम रिक्त था मेरा हृदय कोष, बिल्कुल अनछुआ हाल। मुझे ये अजनबियत खलती है, मैं इसके साथ नहीं जी पा रही। मैं कहाँ जाऊँगी, क्या, करूँगी कुछ तय नहीं है। बस ये है इस घर में नहीं रहूँ जिसे 'मेरा-मेरा' करते तुम्हारे पापा नहीं थकते। कभी घर 'हमारा' नहीं हुआ, इस घर की नींव में मैंने अपने सुख, ख्वाहिशें सब दफन की हैं, तब घरौंदा बना। दस-दस रुपये के पीछे खींचतान करके घर बनाने के लिये 'लोन' को भरते रहे। जब घर बनकर तैयार हुआ तो ढूँढ़ा खूब खोजा पर अपना कोई कोना तो मिला ही नहीं। कितनी इच्छा थी, एक कमरा मेरा अपना हो जहाँ मैं वर्षों-बरस देखे स्वप्न को बुन लूँ। एक कमरा जहाँ सब मेरे अनुसार हो, फर्श पर गद्दे, किनारे से मेरा सितार, खूब बड़ी पुस्तकों से सजी अल्मारी। उस कमरे की साज-सज्जा सब मेरे अनुसार हो, पर कहाँ कुछ नहीं हो पाया। सब तुम लोगों और पापा के अनुसार होता चला गया। घर की दीवारों पर स्याह, सफेद रंग पुतते गए। कोई दीवार उजली हुई तो किसी ने हल्के रंगों को उभारने के लिये गाढ़ा रंग फैलाया। सब कुछ अनुपातिक, किस रंग से कौन सा रंग चटक बन उभरेगा, सब तुम्हारे निर्णय। मैं जो चकरधन्नी बनी इन दीवारों को गढ़ने में लगी थी, उसकी राय, उसकी पसंद, कहीं कोई मूल्य नहीं और मैंने इतना बड़ा कोई परिवर्तन तो नहीं चाहा था, बस एक कमरे की दीवारें सफेद निर्विकार शांत हों, जहाँ मैं अपनी सोच की हल्की-गाढ़ी रेखाओं से चित्र बना सकूँ, पर नहीं हो पाया। ऐसी प्रतिदिन की हजार बातें थीं, चाय में अदरक कम-ज्यादा से लेकर तुलसी, काली मिर्च की उपस्थिति-अनुपस्थिति से शुरू होकर खाने में मिर्च-मसालों की मात्रा तक। मैंने कभी नहीं चाहा, सिर्फ मेरे अनुसार सब कुछ हो, पर कुछ मेरे अनुसार भी हो। तुम्हारे पापा से जब कहना चाहा तो पहले तो उन्होंने सुनकर अनसुना किया फिर कभी बार-बार दोहराया तो खीजा स्वर-'सबकुछ तुम्हारे हाथ है तो करो अपने मन का। कौन रोकने वाला है।' इस बात का तो उत्तर मैं खुद आज तक नहीं खोज सकी कि मेरे हाथ में 'सबकुछ' क्या है?

भौतिक बातों से होते हुये ये सब तन और मन दोनों पर पैबस्त होता

गया, ऐसा कि अब निकालना असंभव है।

हर समय हर मोड़ पर जीवन के मैंने पूरी निष्ठा और समर्पण के साथ तुम्हारे पापा का साथ निभाया, आर्थिक परेशानी, घर में बुर्जुगों की साज-सँभाल, वांछित-अवांछित रिश्तों को निभाने की सामाजिक औपचारिकता, सब में पूरी ऊर्जा और जोश के साथ खड़ी रही। जब मुझे आवश्यकता थी तब तो मैं अपनी जरूरतों, कशमकश, उहापोह के बीच नितान्त अकेली थी, जिसे मैंने उम्र भर जीवन के महत्त्वपूर्ण 35 साल दिये, क्या उनका कोई मानसिक कर्तव्य नहीं था कि मेरी जरूरतों के समय मेरे साथ खड़े होने का। मेरे माता-पिता की बीमारी, मृत्यु सब उसी प्रकार हुई जैसे उनके इस काम में 'सेवा' मेरा कर्तव्य था, जो मैंने पूरी शिद्दत से किया तो मेरे माँ-बाप के समय उनका मेरे साथ खड़ा होना क्यों जरूरी नहीं था। मैं तो अपने माँ-बाप की सेवा में चौतरफा पिसी, वहाँ जाकर उनका करना, आकर एक-एक चीज यहाँ व्यवस्थित करना ताकि कोई कमी न निकाल सके कि मैंने उस काम के कारण यहाँ कमी की।

एक यही मुद्दा नहीं था। हर जगह, हर समय मुझे अपराधी के कटघरे में रखा। कभी प्रेम अपनत्व की कोई मजबूत डोर नहीं रही कि मेरे द्वारा किए गए जाने-अनजाने अपराधों की माफी दिलवा सकती। बच्चों की संवेदना की कमियाँ, औपचारिकाताओं का अभाव, सबका ठीकरा मेरे सिर ही फूटा। हर माँ बच्चों को गढ़ने में अपनी ऊर्जा, समझ, शक्ति लगाती है, वे बच्चों को एक ऐसा इन्सान बनाना चाहती है जो सबसे अच्छा हो पर चूक हो जाती है या जमाने की हवा ऐसी होती है कि उड़ा ले जाती है तिनके की तरह। सीख, संस्कार सबको या समय के बदलते जीवन शैली सब बदलती है। ऐसा नहीं इस बदलाव में सुख या जीत नहीं, बहुत सारी बातें हैं, जिनको हम महसूस करते हैं कि 'ये परिवर्तन अच्छे हैं' पर कहीं कमी भी होती है जो सालती है, टीसती है जिसकी पीड़ा एक फाँस की तरह, तब जब हम दर्द से छटपटाते हैं तो पिता के लिए कितना सहज होता है-एक वाक्य उछाल कर खुद को सांत्वना देना कि 'तुमने बचपन से सिखाया ही नहीं या कुछ सिखाया होता तो यूँ न होता'
आह! फिर भरता रिक्त कोष, अपराधों के भार से।

पता बेटा उन दिनों ये ख्याल भी नहीं आता था कि हम छोड़ दें-अपने बच्चों की चिन्ता उनका ध्यान, सामाजिक दबाव। युवावस्था में आपके कर्म को समाज बड़ी पैनी दृष्टि से तौलता है। उठना-बैठना, पहनावा, रिश्ते सब पे कड़ी नजर और युवावस्था की गल्तियों का तो बड़ा भारी पोथन्ना तैयार हो जाता है।

उम्र बीतते-बीतते ये एहसास होता है, वर्जनाओं को बरतते हमने जिन्दगी गुजार दी उनका कोई मूल्य था ही नहीं।

'अभी कुछ दिनों पहले मुझे पुरजोर तरीके से ये एहसास होने लगा कि आज भी मैं इनके लिए सिर्फ जरूरत पूरी करने का साधन मात्र हूँ और मेरा स्वाभिमान अब मुझे इस्तेमाल होने नहीं दे रहा। जाने क्यों जो बातें उम्र भर सहीं वो असहनीय हो रहीं, तुझे याद है मैं पिछली सर्दियों में अपने घर गई थी, वहाँ अपना पूरा जीवन जिआ। वो घर जो मेरे माँ-बाप का था, जिसे उन्होंने मेरे लिये रख छोड़ा था। माँ ने कहा था किसी को मत बताना तुझे दिया है। आज समझ आ रहा क्यों ऐसा बोलीं-यदि पता चल जाता तो वो भी तुम लोगों की जरूरतों की भेंट चढ़ जाता। उस घर को आधा मैंने किराये पर उठा दिया, दो कमरे खुद के लिए रख लिए, मैंने अपनी रोटी का इंतजाम कर लिया, तब तुम लोगों को बताया है। पता है बेटा पापा ही नहीं, तुम सबने मुझे छला। अपनी-अपनी दुनिया में खोने के बाद, तुम दोनों कब आए मेरा सुख-दुख पूछने। मैं तो तुम्हारी हर जरूरत पे साथ रही, जब कुछ मैंने मन की कहनी चाही तो तुम में से किसी के पास समय नहीं। बेटा इतने दिनों की मेहनत, समर्पण के बाद बिलकुल खाली है मेरे खाते में कोई रिश्ता ऐसा नहीं जो मुझे अपना लगे, उम्र के इस पहर में ये अकेलापन मुझे घर छोड़ने पर विवश कर रहा।

'माँ, पापा की उम्र हो चली यदि आपके जाते कुछ हो गया तो' बिटिया ने पिता के लिए चिन्तित स्वर में धीरे से पूछा-जन्म और मृत्यु का समय नियति ने लिख रखा है। यदि यही होना होगा तो यही सही पर मैं रुक नहीं सकती, हो सकता है मैं ही महीने भर में मर जाऊँ, पर इस महीने भर में मैं अपना जीवन अपने अनुसार जी लूँगी। मुझे कब उठना है, क्या करना है, क्या खाना है, कहाँ जाना है, सब-सब अपने हिसाब से। वो सुख जो हमेशा से ध्रुव तारा बना रह गया, छूकर देखूँ तो सही, क्या पता अगला जन्म किस योनि में मिले, इस मनुष्य जीवन को एक बार तो जी लूँ। रही बात तुम्हारे पापा की तो उन्होंने कभी ये स्वीकारा ही नहीं कि मैं उनके लिये जरूरी हूँ, तो अब देख लें मेरे बिना क्या कुछ बिखरता है? यूँ भी मैंने पूरा जीवन एक निष्ठ भाव से जिआ है। वो मेरे बच्चों के पिता हैं, उन्हें यूँ असहाय नहीं कर सकती, हर बात की व्यवस्था कर दी है। खाना वाली, बर्तन वाली, कपड़े वाली घर के बाकी काम के लिये हर व्यवस्था कर दी। उन्हें सारी सुविधाएँ उपलब्ध होंगी, बस मैं नहीं, वो भी तो एकांत का सुख भोगें जो मैं पूरी उम्र भोगती रही।

कहते हुए माँ सहज भाव से मुस्कुरा दीं।

बिटिया की पलकें भीग गईं, 'एक बात और बता दो कभी लौटना चाहोगी आप।'

'हाँ बेटा जरूर कोई जल लेकर कसम थोड़ी खा ली कि तुम्हारा त्याग किया। अरे जब उन्हें वास्तविक जरूरत होगी या मुझे अन्दर से लगेगा कि मैं उनके बिना नहीं जी पा रही, लौट आऊँगी। पर अभी नहीं रुकूँगी, तू तो मेरे सबसे करीब है, बता क्या मुझे खुद को समय देने का हक नहीं।'

'जरूर है माँ बल्कि अनिवार्य है, आप जाओ खुशी से जाओ। हम लोगों ने जो अनदेखी करी है, अपने कर्तव्यों की उनका खामियाजा तो हमें ही भुगतना है, पर ये लेन-देन यहीं निपटा लेंगे।'

'हाँ बेटा तेरे इस तरह के आश्वासन से मैं जी गई, मुझे यूँ लग रहा जैसे इस निपट मशीनी युग में भी मैं कहीं संवेदना बोने में सफल रही।'

हमेशा बात-बात पर भर आने वाली आँखें आज शुष्क थीं। उनके नए सपने नई उम्मीदें झलक रही थीं। शर्मा जी बिटिया से इस निर्णय पर स्वीकृत की मोहर के बाद खीजे स्वर में बोले-'बता दो उसे मैं दो जगह के खर्च नहीं सँभाल पाऊँगा।'

'पापा वो आपसे माँग भी नहीं रहीं।'

'मुझे भी तो पता चले अचानक कौन पैदा हो गया, उसका खर्च उठाने वाला।' तिक्त स्वर की कड़वाहट फैल रही थी।

'उन्हें पैदा करने वालों ने ही उनकी व्यवस्था कर दी है और बाकी के लिए उन्होंने दो-दो औलाद पैदा करीं उन्हें इस योग्य बनाया कि वो उनका खर्च उठा सकें, तो आप निश्चिंत रहो। आपकी भी पूरी व्यवस्था वो करके जा रहीं, वैसे यदि आप चाहो तो मेरे या विपुल के साथ चल सकते हो'।

अपनी जरूरतों को सबसे ऊपर रखने वाले शर्मा जी हतप्रभ बदलते मौसम का रुख भाँप, लुटे-पिटे सोच रहे थे-प्रकृति, वो लौटाती जरूर है जो आप उसे देते हो।

लता टायपिंग सेंटर, जयस्तम्भ चौक,
शहडोल, नया कलेक्ट्रेट के सामने,
सोहागपुर, जिला शहडोल-484001 (म.प्र.)
मो. 6265356016

श्री अरुणाभ सौरभ
उत्तर क्षेत्रीय युवा लेखक सम्मिलन

श्री सुभाष पाठक जिया
उत्तर क्षेत्रीय युवा लेखक सम्मिलन

झूमर-बाती

- देवांशु पाल

जन्म - 4 नवंबर 1960।
शिक्षा - स्नातक।
रचनाएँ - एक पुस्तक प्रकाशित।
सम्मान - पंजाब साहित्य कला अकादमी द्वारा सम्मानित।

आज दूसरा दिन है। कल शाम संतोषी कुंदन शादी भवन में थी और आज मंगलम शादी भवन में आई है। उन्नीस साल की संतोषी साँवली, दुबली-पतली, थोड़ी सी लंबी उसकी अम्मा की तरह। इस वक्त वह शादी भवन के मुख्य द्वार पर बैंड-बाजे और लाइट वाले साथियों के साथ सिर पर झूमर-बाती लिए दस-पन्द्रह औरतों के बीच खड़ी है। वे सभी औरतें सिर पर झूमर-बाती लिए बारात निकलने की प्रतीक्षा में हैं।

कल की अपेक्षा में संतोषी के मन में आज झिझक व डर थोड़ी कम है। आज उसके हाथ-पाँव ढीले नहीं पड़ रहे हैं और न ही शादी भवन की चकाचौंध रोशनी से उसकी आँखें मिचमिचा रही हैं। लोगों की भीड़ में उसे घबराहट भी महसूस नहीं हो रही है। थोड़ा सा संकोच हो रहा है, इसलिये वह अकेली चुपचाप खड़ी है। कल कल्लू की अम्मा ने उसकी काफी मदद की थी। वैसे संतोषी की अम्मा ने कल्लू की अम्मा से कह दिया था कि-'देखना इस लड़की को यह तो बस्ती से बाहर निकलती नहीं है, आज पहली बार तेरे साथ जा रही है'। कल्लू की अम्मा संतोषी की अम्मा की तरफ देखकर बोली-'तू चिंता मत कर मैं इसे सँभाल लूँगी। वैसे पहली-पहली बार सभी के मन में डर व घबराहट होती है। हम लोगों को भी हुई थी, बाद में सब ठीक हो जाता है। तू बस अपनी तबीयत को देख'।

संतोषी का कल का दिन ठीक ठाक से निपट गया था। रात को जब वह शादी भवन से झुग्गी लौटी थी, तब उसने अम्मा से पूछने पर बताया था कि वह सभी काम ठीक से कर लिया है उसे कोई असुविधा नहीं हुई यह सुनकर उसकी अम्मा निश्चिंत हुई थी। बस आज का दिन और निकल जाए, फिर अगले सप्ताह से उसकी अम्मा जाएगी संतोषी यही सोच रही थी, तभी कल्लू की अम्मा उसके पास आकर खड़ी हुई, वह अपने साथ संतोषी के उम्र की लड़की को ले आई थी। कल्लू की अम्मा बोली-'यह सरिता है, तेरी उम्र की, बस्ती में रहती है। शादी नहीं हुई है। आज इसकी अम्मा काम पर नहीं आई हैं, इसलिए यह काम पर आई है। वैसे तो आते रहती है जब उसकी अम्मा नहीं आती, सरिता तेरे साथ रहेगी।' यह कहकर कल्लू की अम्मा चली गईं।

संतोषी को अच्छा लगा सरिता को साथ पाकर, वह सरिता की तरफ देखकर बोली-'अम्मा कल से खाट पर बीमार पड़ी है। उसे तेज बुखार और हाथ-पाँव में दर्द है। आज भी तबीयत वैसे ही है। मैं पहली बार बस्ती से निकली हूँ, कल भी आई थी और आज मेरा दूसरा दिन है'। सरिता बोली-'मैं तो दो साल से आ रही हूँ जब अम्मा नहीं आ सकतीं तो मुझे ही भेज देती हैं।'

पिछले दिनों शहर में अच्छी बारिश हुई थी। दिसंबर की ठंड के महीने में बारिश होने की वजह से शहर का तापमान काफी गिर चुका था। संतोषी की अम्मा को इसी हफ्ते दो दिन शादी घर पर काम पर जाना था। तबीयत ठीक न होने से वह काम पर जा नहीं सकी। कल जब वह सुबह सोकर उठी थी तभी उसे तबीयत बिगड़ने का आभास हो गया था। वह यह समझ गई थी शाम को काम पर नहीं जा पाएगी, उसे इस बात का डर होने लगा था कि कहीं उसके न जाने से बैंड-बाजे टीम वाले उसकी जगह किसी दूसरी औरत को काम पर रख लेंगे और फिर उसके हाथों से यह काम निकल जाएगा। यही सोचकर उसने संतोषी को काम पर भेजने के बारे में सोचा। वैसे बस्ती की सभी औरतें जब स्वयं काम पर जा नहीं सकती हैं तब वे अपनी बेटी या परिवार के अन्य महिला सदस्यों को अपनी जगह काम पर भेज देती हैं।

कल सुबह जब संतोषी को उसकी अम्मा ने अपनी तबीयत के बारे में बताया और उसे शाम को शादी भवन में काम पर जाने को कहा तब अम्मा की बाते सुनकर संतोषी बौखला उठी थी। वह कहने लगी थी-'मुझे नहीं जाना है कहीं भी' यह सुनकर उसकी अम्मा काफी गुस्से से बोली-'बीमार पड़ी हूँ खाट से उठ नहीं पा रही हूँ, तभी तो तुझे जाने को कह रही हूँ। वैसे मुझे कोई शौक नहीं है, तुझे शादी घर

काम पर भेजने का।'

संतोषी मुँह फुलाए खड़ी रही। उसकी अम्मा उसकी इस हरकत पर काफी नाराज होकर बोली–'बस्ती में जाकर देख तेरी उम्र की लड़कियाँ शहर जाकर काम कर रही हैं और तू बस्ती से बाहर निकलना नहीं चाहती। दिन भर झुग्गी में रहेगी। दो दिन की बात है आज और कल, अगले हफ्ते तक मैं ठीक हो जाऊँगी तब तुझे जाने के लिये नहीं कहूँगी, कल मुँही कहीं की।' अम्मा की झिड़की सुनकर संतोषी द्वार पर जाकर खड़ी रही। फिर थोड़ी देर के बाद अम्मा की तरफ देखकर कुछ उखड़े स्वर में बोली–'मैं तो किसी को जानती–पहचानती नहीं, शादी घर भी देखी नहीं हूँ। काम के बारे में कुछ पता नहीं'। तभी उसकी अम्मा धीमे स्वर में बोली–'तुझे कुछ जानने–समझने की जरूरत नहीं है। मैं बस्ती के कल्लू की अम्मा को फोन कर दूँगी वह तुझे शाम को लेने आ जाएगी। घबराने की कोई बात नहीं। कल्लू की अम्मा तुझे काम के बारे में समझा देंगी। रात में तेरे बापू तुझे लेने शादी घर पहुँच जाएँगे'। अम्मा के गुस्से के आगे संतोषी हार गई थी और उसने अम्मा से 'हाँ' कह दिया था।

सरिता से मिलकर उसे अम्मा की बात याद आने लगी। अम्मा सच ही कह रही थी, बस्ती की महिलाएँ जब काम पर नहीं जातीं तब उनकी बेटियाँ काम पर जाती हैं। वैसे तो संतोषी दिनभर अपनी झुग्गी में छोटे दो भाइयों के साथ रहती है। दो बार सरकारी स्कूल में दसवीं परीक्षा में फेल होने के बाद, उसकी अम्मा ने उसे स्कूल जाने से मना कर दिया था, तब से वह घर पर ही रहती है और घर का काम सँभालती है। उसकी अम्मा सुबह नौ बजे निकल जाती है। पास की कॉलोनी के दो घरों में वह झाड़ू–पोंछा व जूठे बर्तन साफ करने का काम करती है। महीने में सोलह सौ रुपये मिलते हैं। दोपहर खाना खाने आती है फिर तीन बजे चली जाती है और शाम को लौटती है। जिस घर में संतोषी की अम्मा काम पर जाती है, उस घर में मालकिन ने उसकी अम्मा को बटन वाली पुरानी मोबाइल रखने को दिया है। जिससे कि वह जब काम पर नहीं आ सकेगी तब उनको फोन पर इत्तला कर सकती है। संतोषी के बापू शहर के अग्रवाल हार्डवेयर की दुकान में पिछले आठ सालों से मजदूरी करते हैं। उन्हें महीने में छः हजार रुपये मिलते हैं। इतने कम पैसों में परिवार का खर्च न चला पाने का दुखड़ा उन्होंने कई बार सेठ अग्रवाल जी को कहा है पर वे नहीं सुनते और कहते है कि दो साल पहले ही दीपावली के समय पाँच सौ रुपये बढ़ायें है। अब और नहीं, 'ज्यादा कुछ कहने पर सेठ उस पर बिगड़ कर कहता है–क्या तुझे तनख्वाह के पैसे कम पड़ रहे हैं अरे तो तेरी उम्र भी बढ़ रही है। अब पहले जैसा मजदूरी का काम भी कर नहीं पाता। थोड़े में ही थक कर हाँफने लगता है। बीस किलो का पेंट का ड्रम अकेले उठा नहीं पाता फिर कहता है पैसे बढ़ाने को। अगर तुझे मेरे पैसे कम लग रहे हैं तो तू दूसरी जगह काम ढूँढ़ सकता है'। यह सुनकर संतोषी के बापू चुप हो गए। सोचने लगे कि इस उम्र में और कहाँ जाए काम ढूँढ़ने। सेठ ने सच ही कहा है कि अब उसके शरीर में पहले जैसी ताकत नहीं है। थोड़े में ही हाँफने लगता है। अभी तो कम से कम इतनी ताकत शरीर में बची है कि वह साइकिल के कैरियर के पीछे संतोषी की अम्मा को बिठाकर चला सकता है। यह तो सेठ की उसके प्रति दया दृष्टि है कि उसे काम से छुड़ाया नहीं। चाय–पानी लाने और दुकान की झाड़ू–पोंछा व साफ–सफाई के लिये रखा है।

एकाएक बैंड बजने की आवाज से संतोषी का ध्यान टूटता है। उसने एक–दो बार बस्ती से सड़क पर जाते शादी व बारातियों को बैंड वालों के साथ झूमते–नाचते देखा है, पर वह काफी दूर से। आज वह इतने नजदीक से इन सारी चीजों को देख पा रही है और मन ही मन खुश हो रही है। बस्ती में कई बार संतोषी ने शादियाँ देखीं तो हैं पर शहर की शादियों की बात कुछ और है। शहर में लोगों के पास पैसे बहुत होते है, इसलिए यह लोग शादी में ढेर सारा पैसा खर्च करते हैं। बस्ती में लोग सेठ–साहूकर से पैसे उधार लेकर अपने बच्चों की शादी कराते हैं। बस्ती की शादियों में दूल्हा रिक्शे में बैठकर आता है, कोई दूल्हा सफेद शर्ट–पेन्ट में तो कोई धोती–कुर्ते में। सिर पर रंगीन चमकीले कागज की टोपी पहनते हैं, गले में गेंदे के फूल की माला और शहर के दूल्हे कीमती कपड़े और चमचमाती हुई मोटर कार में बैठ कर शादी करने जाते हैं। बारातियों में महिलाएँ व पुरुष एवं बच्चे भी कीमती कपड़े व शरीर में खुशबूदार परफ्यूम लगाते हैं। बस्ती में दूल्हे के साथ चार–पाँच साथी होते हैं, ढोल बाजे बजाने वाले, एक बाँसुरी वाला होता है, जो फिल्मी धुन में गाना बजाते हैं, बस्ती की शादी में महिलाएँ कम ही नाचती हैं, लेकिन शहर की शादी में महिलाएँ पुरुषों के साथ मिलकर खूब डांस करती हैं। संतोषी महिलाओं को इस तरह डाँस करते देख मन ही मन हँसती रहती है। बस्ती में शादी वाली झुग्गी में सुबह से ही लाउड स्पीकर में हिन्दी व छत्तीसगढ़ी गाना बजते रहते हैं। झोपड़ी को रंग–बिरंगी झालरों से सजाया जाता है। शादी की रस्म सारी रात चलती है और सुबह होने से पहले ही कन्या को ससुराल विदा करना होता है। शहर में भी ऐसा ही है। दूसरे दिन शादी भवन को खाली कर वे लोग भी चले जाते हैं। बस्ती में खाने–पीने में भी लोग खूब मजे लेते हैं। ज्यादातर बस्ती में शादी घरों में पूड़ी, सब्जी, हलवा के अलावा बूँदी के लड्डू भी खिलाये जाते हैं, पर शहर के शादी भवनों में खाने–पीने की विशेष व्यवस्था रहती है। नए–नए पकवान के साथ स्वादिष्ट मिठाइयाँ, शरबत, आइसक्रीम भी लोगों को खिलाई जाती है। कल संतोषी

पहली बार शादी भवन में भोजन के स्टॉल पर सजे नए-नए पकवान को देखकर आश्चर्य चकित रह गई थी। उसने ऐसे स्वादिष्ट पकवान पहले कभी देखे नहीं थे। उसने मन भर के खाना खाया, कल्लू की अम्मा उसके पास ही थी।

सरिता को देखकर संतोषी को अम्मा की बात सच लगने लगी थी। उसकी अम्मा सही कहती हैं कि बस्ती की उसकी उम्र की लड़कियाँ शहर जाकर काम करती हैं, पैसे कमाती हैं। सरिता भी शहर जाकर दो साल से काम कर रही है। संतोषी ने बस्ती में कई लड़कियों को देखा है, जो शहर जाती हैं काम करने। वे लड़कियाँ नए-नए सलवार सूट व हाथ में मोबाइल फोन लिए चलती हैं। ये सारी चीजें उन लड़कियों ने अपनी तनख्वाह के पैसों से ही तो खरीदी हैं। संतोषी के बापू को इसी बात पर गुस्सा आता है कि जो लड़कियाँ शहर जाती हैं कमाने, वे लड़कियाँ फिर माँ-बाप की बातों को नहीं सुनतीं। वे लड़कियाँ अपनी मर्जी की मालिक होती हैं। कहीं संतोषी भी शहर जाकर ऐसी हो जाएगी, फिर माँ-बाप की बातें नहीं सुनेगी और कहीं किसी दिन कोई उल्टी-सीधी बात हो गई, फिर उस बदनामी का क्या होगा, संतोषी के बापू को इसी बात का डर है। एक ही बेटी है। अगर उसकी शादी अच्छे रिश्ते में नहीं कराई तो फिर जिंदगी भर बेटी की तकलीफ देखकर वह खुद भी चैन से जी नहीं सकेगा। यही सोचकर वह बेटी संतोषी को शहर काम पर भेजना नहीं चाहता, पर उसकी अम्मा उसके बापू की बातों से बिल्कुल भी सहमत नहीं है। वह कहती है कि सभी लड़कियाँ शहर जाकर बदनाम थोड़ी होती हैं, यह तो उसका भाग्य ही बताएगा।

कल शाम जब उसने पहली बार शादी घर जाने के लिये अम्मा की पीली रंग की साड़ी और लाल ब्लाउज अम्मा के टीन के बक्से से निकाला था तभी उसकी अम्मा खाट पर लेटे-लेटे बोली-'आ मेरे पास आ, आज तुझे मैं साड़ी पहनना सिखा देती हूँ कल तेरा ब्याह होगा तब तो तुझे साड़ी ही तो पहनना होगा ससुराल में। कोई शादी-शुदा लड़की सूट पहनकर थोड़ी रहती है'। संतोषी अम्मा के खाट के पास जाकर खड़ी हो गई, उसकी अम्मा संतोषी को साड़ी पहनाने लगी। संतोषी ने पहले लाल रंग का ब्लाउज पहना फिर साड़ी। जगह-जगह पर सेफ्टी पिन जड़ दी, जिससे पैदल चलने पर साड़ी इधर-उधर न खिसके। फिर उसने अम्मा की सफेद कपड़े की जूती भी पहन ली। अब उसकी अम्मा बोली-'शीशे में देखकर थोड़ा चेहरा और बाल को भी सँवार ले, वरना देखने वाले क्या कहेंगे'।

शाम होते ही संतोषी तैयार होकर, कल्लू की अम्मा के आने के इंतजार में बैठी रही। अँधेरा होने से पहले कल्लू की अम्मा झुग्गी पहुँच गई थी, फिर दोनों शादी घर की तरफ पैदल निकल पड़े। निकलते समय संतोषी की अम्मा बोली-'देखना सँभल कर जाना। मौसी के साथ ही रहना, कोई गड़बड़ मत करना'। कल्लू की अम्मा संतोषी की अम्मा की तरफ देख हँसकर बोली-'तेरी बिटिया ससुराल थोड़ी जा रही है, तू इतना परेशान हो रही है।'

शादी घर पहुँचकर संतोषी का मन घबरा रहा था। उसने इससे पहले कभी इतनी भीड़ नहीं देखी थी इतनी रंगीन लाइटों की मनमोहक सजावट, बैंड बाजे वाले के रंगीन-चमकीले कपड़े देखकर उसकी आँखें खुली रह गई थीं। वह काफी देर तक यह सब दृश्य अवाक होकर देखने लगी। जब कल्लू की अम्मा ने पास आकर बताया कि-'यह झूमर-बाती है, इसे ही सिर पर रखना है और पैदल सँभलकर चलना है। घबराने की कोई बात नहीं है, यह जितना वजनदार दिख रहा है, उतना नहीं है। इसे हमें ऐसे ही सिर पर कपड़े के गोले पर रखना है और घंटों पैदल चलना है। यह सुनकर संतोषी के मन के भीतर का डर कुछ कम हुआ। पहले तो वह झूमर-बाती को देखकर डर गई थी। उसे लगा था कि वह बहुत वजनदार होगा, थोड़ी देर के बाद कल्लू की अम्मा ने संतोषी को बताया 'बारात निकलने से पहले जनरेटर चालू होता है। तभी हमें झूमर-बाती को अपने सिर पर रखना है। संतोषी को कल्लू की अम्मा की बातें समझ में आ गई थीं।

शाम ढल चुकी थी, कुछ ही देर में बारात निकलने वाली है। बैंड बाजे वाले बीच-बीच में रुक-रुक कर सुरीली आवाज में हिन्दी फिल्मी गीत की धुन बजा रहे थे। ये लोग ट्रायल पर बजा रहे थे। कल्लू की अम्मा संतोषी को बता रही थी। आजकल बैंड बाजे वालों की शादी घर में बहुत माँग है। शहर में करीब आठ-दस बैंड-बाजे वाली टीम हैं। सभी टीमों के बैंड-बाजे वाले व लाईट वालों की खास कलर में ड्रेस लोगों के आकर्षण का कारण बनी रहती है। आजकल शादियों में लोग बहुत पैसे खर्च करते हैं। शादी घर का किराया, लाईट, साउंड व खाने-पीने में घर वाले कई लाख रुपये खर्च करते हैं। चाहे वह शादी लड़की की हो या लड़के की। आजकल यह देखने को मिलता है घराती व बाराती दोनों ही परिवार एक ही शादी भवन में ठहरते हैं और सारा कार्यक्रम करते हैं, लड़की वाले अलग रहते हैं तो लड़के वाले दूसरी मंजिल में ठहरते हैं। शाम के वक्त दूल्हा सजधज कर बारातियों के साथ शहर प्रदर्शन पर निकलता है। बैंड-बाजा, पटाखे, डांस पार्टी के साथ कभी घोड़े पर तो कभी कोई दूल्हा कीमती कार पर सवार होता है। एक दो घंटे शहर घूमकर फिर शादी भवन लौट आते हैं। संतोषी कल्लू की अम्मा की बातें बड़े ध्यान से सुन रही थी और शहर के लोगों के शादी-ब्याह के बारे में जान व समझ रही थी। कल्लू की अम्मा ने संतोषी को शहर की शादी के बारे में व बारातियों के बारे में बहुत कुछ बता दिया, अब संतोषी काफी कुछ जान गई थी, यह तो कल की बात थी। आज तो उसके साथ सरिता है। वे दोनों

बीच-बीच में आपस में बातें कर रही थीं। एकाएक बारातियों की भीड़ भवन के मुख्य द्वार की तरफ चमचमाती कार जिसे फूल-मालाओं से सजाया गया है, उसी तरफ जाने लगी। दूल्हा जैसे ही कार के भीतर जाकर बैठा, बैंड-बाजे वाले जोर शोर से फिल्मी गानों की धुन बजाने लगे। एकाएक सारे झूमर-बाती एकसाथ जल उठे। सामने पटाखे व फुलझड़ी भी जलने लगीं। चारों तरफ का माहौल खुशनुमा था। सभी के चेहरे पर खुशियाँ झलक रही थीं। संतोषी भी अपनी खुशी को रोक नहीं पा रही थी। वह सरिता की तरफ देखकर खिलखिलाकर हँस रही थी।

करीब दो घंटे के बाद रात के नौ बजे बारात शादी भवन लौट आई। संतोषी कल की अपेक्षा आज ज्यादा खुश नजर आ रही है। आज उसे थकान भी कुछ कम महसूस हो रही। रास्ते भर उसने झूमर-बाती को अपने दोनों हाथों से सँभाल कर पकड़ कर रखा था। मजे की बात यह है कि आज बारातियों ने बैंड-बाजे वालों के साथ खूब डांस किया। उनमें से कुछ बारातियों ने बैंड-बाजे वाले को खुश होकर बख्शीश भी दी, सिर्फ इतना ही नहीं उन्होंने झूमर-बाती वाली सभी औरतों को पाँच-पाँच सौ रुपये बख्शीश में दिए थे।

बारात शादी भवन पहुँचने के बाद करीब एक-डेढ़ घंटे तक लड़की वाले बारातियों के स्वागत सत्कार में लगे रहे फिर रात के भोजन का सिलसिला चलता रहा। उसके पश्चात् ही बैंड-बाजे वाले, लाईट व म्यूजिक वालों के साथ ये झूमर-बाती वाली सभी औरतें साथ मिलकर भोजन करने लगे। वे सभी खूब मजे लेकर घूम-घूमकर सभी स्टॉलों के स्वादिष्ट भोजन का आनंद लेते रहे। ऐसे पकवान इन लोगों के नसीब में कहाँ, जैसे इन शादी भवनों में मिलते हैं। संतोषी भी खूब मजे लेकर सरिता के साथ नए-नए पकवानों का मजा ले रही थी। सचमुच ऐसा स्वादिष्ट भोजन उसने पहले कभी नहीं खाया था। हालाँकि उसकी अम्मा, घर पर शादी भवनों के खाने के बारे में उसके बापू को कई बार बता चुकी हैं। उसके बापू ने एक दिन हँसकर कहा था-'हमेशा तुम शादी भवन के खाने की तारीफ करती हो कभी तो बच्चों के लिए ला सकते हो।' उस दिन संतोषी की अम्मा हँसकर बोली थीं-'सोचती हूँ कि एक दिन छिपाकर बच्चों के लिये मिठाई ले आऊँ पर वहाँ सब एक-दूसरे को देखते रहते हैं। शादी भवन में किसी को भी खाने में कोई मनाही नहीं है, पर घर ले जाने की इजाजत नहीं है'।

भोजन के बाद सभी मुख्य द्वार से बाहर निकलने लगे। बैंड-बाजे वालों को लेने के लिए अलग से गाड़ी आई थी। सब लोग उसमें बैठ गए और बाकी बचे लोग जनरेटर वाली गाड़ी में जाकर बैठ गए। कुछ लोग अपने टू-व्हीलर से चले गए। झूमर-बाती वाली औरतें अपने-अपने साधन से बस्ती लौटती हैं, कुछ लोगों के आदमी आते हैं लेने के लिए और कुछ लोग पैदल ही चले जाते हैं। संतोषी ने बाहर निकलकर देखा, उसके बापू थोड़ी दूर पर खड़े हैं, अपनी साइकिल के पास। आज कुछ ज्यादा ही देर हो गई है शादी भवन में, कल वह जल्दी झुग्गी लौट गई थी। संतोषी ने पास जाकर बापू से पूछा -

'तुम बहुत देर से खड़े हो बापू।' उसके बापू ने सिर हिलाया।

'आज थोड़ी देर हो गई।' संतोषी साइकिल के पीछे कैरियर पर बैठते हुए बोली।

'कैसी रही आज की शादी पार्टी।' साइकिल चलाते हुए उसके बापू ने पूछा।

'बहुत मजा आया आज तो सरिता मिल गई थी। वह भी हमारे साथ चल रही थी।' संतोषी कुछ उतावली होकर बोली।

'ये सरिता कौन है।' संतोषी के बापू ने पूछा।

'हमारी बस्ती में रहती है। कल्लू की अम्मा उसे जानती है। उसकी अम्मा आज काम पर नहीं आई। वह अम्मा की जगह काम पर आई थी। सरिता बहुत अच्छी लड़की है बापू।' संतोषी ने कहा।

'तुझे पसंद है।' संतोषी के बापू ने पूछा।

'हाँ बापू।' संतोषी खुश होकर बोली।

'सरिता कह रही थी कि उसके बापू की पहचान शहर के बैंड-बाजे वाले से है। सरिता बता रही थी कि उसके बापू ने ही उसकी अम्मा को काम पर लगाया है।' थोड़ी दूर चलने के बाद संतोषी बोली।

'उसके बापू क्या करते हैं?' संतोषी के बापू ने पूछा।

'दारू दुकान में काम करते हैं।' संतोषी बोली।

'अच्छा! तभी उसकी इन लोगों से पहचान है। सरिता और क्या क्या बोल रही थी उसके बापू के बारे में।' संतोषी के बापू ने पूछा।

संतोषी बोली-'सरिता कह रही थी कि उसके बापू शहर के दूसरे बैंड-बाजे वाले टीम में सरिता को काम पर लगाना चाहते हैं। पर उसकी अम्मा नहीं चाहती कि सरिता अकेले काम पर शहर जाये।' संतोषी के बापू धीरे-धीरे साइकिल चला रहे थे। बस्ती, मुख्य सड़क से काफी नीचे ढाल पर है। संतोषी के बापू ढाल पर उतर आए और कच्ची सड़क पर चलने लगे। थोड़ी देर रुककर संतोषी फिर बोलने लगी।

'क्या बापू मैं सरिता के साथ काम पर शहर जा सकती हूँ?'

इस बात पर संतोषी के बापू चुप ही रहे, कुछ नहीं कहा। तभी संतोषी ने बापू से पूछा।

'का बापू! तुमने कुछ कहा नहीं।'

'अभी तो तू घर चल थकी होगी कल अम्मा के साथ बैठकर फिर कोई फैसला लेंगे।' संतोषी के बापू ने संतोषी को समझाते हुए कहा। थोड़ी देर के बाद संतोषी बोली-'जानते हो बापू आज बारातियों ने हम सभी को 500 रुपये बख्शीश दी है।'

'अरे वाह! यह तो बहुत अच्छी बात है सभी को दिये हैं क्या?' बापू ने पूछा।

'हाँ बापू बारातियों ने आज बैंड-बाजे वालों के साथ मिलकर खूब डांस किया।'

'बख्शीश वाली बात तू अम्मा को जरूर बताना वह सुनकर बहुत खुश होगी, उसे आजतक किसी शादी पार्टी में बख्शीश नहीं मिली है।' संतोषी के बापू धीरे-धीरे साइकिल चला रहे थे। रात बहुत हो चुकी है। शहर में वाहनों का चलना भी कम हो गया है। संतोषी साइकिल पर बैठे-बैठे सोच रही थी कि आज उसका आखिरी दिन है। अगले सप्ताह से उसकी अम्मा काम पर जायेगी। तब संतोषी को झुग्गी में ही रहना होगा। सरिता की बात यदि बापू और अम्मा मान जाए तभी वह भी अगले सप्ताह बैंड-बाजे वाले के साथ झूमर-बाती वाले काम में जा सकती है। अब तो संतोषी के मन में पहले जैसा डर नहीं है। अब उसे शादी घर में भीड़-भाड़ और बारातियों को देखकर घबराहट नहीं होती न ही हाथ-पाँव काँपते।

बस्ती पहुँचने के थोड़ी दूर पहले ही संतोषी के बापू की साइकिल, चलते-चलते अचानक रुक गई। देखा तो पिछले चक्के में संतोषी के साड़ी का पल्लू फँस गया है। उसके बापू सायकिल से उतर गए, संतोषी भी नीचे उतर आई थी। उसका पल्लू बुरी तरह से चेन के साथ पिछले चक्के में फँस गया है। काफी मेहनत व मशक्कत के बाद उसके बापू ने पल्लू को चेन व चक्के से अलग किया। पल्लू बुरी तरह से फट गया था। यह देखकर संतोषी के बापू उसपर भड़क उठे और बोले-'ठीक से सँभलकर बैठ नहीं सकती। आखिर पल्लू फँस गया न चेन व चक्के के बीच तेरी अम्मा को इतने दिनों से सायकिल पर बिठाकर चला रहा हूँ कभी ऐसी घटना नहीं हुई। अब घर जाकर तेरी अम्मा तेरे साथ मेरे को भी मुँह भर गालियाँ देगी।' संतोषी ने घबराकर फटे पल्लू को अपनी मुट्ठी में कर लिया है। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था। ये क्या और कैसे हो गया। वह तो पल्लू को सँभालकर पीछे केरियर पर बैठी थी पता नहीं कब उसके हाथ से पल्लू छूट गया और चक्के व चेन में जाकर फँस गया। वह काफी डरी हुई थी। उसके बापू उसे समझाने लगे-'झुग्गी पहुँचकर तू अम्मा की नजर बचाकर साड़ी कहीं छिपा देना। सुबह अम्मा बिगड़ जाए तो चुप ही रहना'। संतोषी ने बापू की बातों को ध्यान से सुना। सचमुच यह बहुत बुरा हुआ। अम्मा पिछले साल यह साड़ी खुद बाजार जाकर 600 रुपये में खरीद कर लाई थी। साड़ी के पैसे बैंड-बाजे वाले टीम के मालिक ने वापिस तो कर दिए थे। पर क्या इतनी जल्दी साड़ी फटने से दूसरी नई साड़ी खरीदने पर अम्मा को मालिक पैसा देगा। नहीं देगा। संतोषी यह अच्छे से जानती है। साड़ी भी इस तरह से फटी है कि उसे सिला भी नहीं जा सकता। डरते-डरते के संतोषी झुग्गी पहुँची। झुग्गी के अंदर जाकर उसने सबसे पहले साड़ी को उतारकर उसे पुराने कपड़ों के बीच छिपा दिया, ताकि सुबह-सुबह अम्मा की नजर उस पर न पड़ सके।

संतोषी के झुग्गी पहुँचते ही उसकी अम्मा जाग गई। उसने खाट पर लेटे-लेटे बोली-'कोई गड़बड़ तो नहीं की न।' संतोषी पहले से ही डरी हुई थी एकाएक अम्मा की आवाज से वह काँप उठी फिर धीमी स्वर में बोली-'सब ठीक है अम्मा'। पास खड़े उसके बापू ने उसे इशारा कर बिस्तर पर जाने को कहा।

संतोषी अम्मा के बगल में जाकर लेट गई और बख्शीश के पाँच सौ रूपये के नोट को उसने अपने तकीये के नीचे रख लिया, सुबह अम्मा के गुस्से के कम होने पर वह यह पैसा अम्मा को नई साड़ी खरीदने के लिए देगी, पैसे मिलने पर अम्मा का गुस्सा कम होगा कि नहीं यह संतोषी नहीं जानती, संतोषी यह भी नहीं जानती कि जब वह देर सुबह अम्मा से सरिता के साथ शहर के शादी भवन में काम पर जाने की बात पर राजी होगी कि नहीं।

रॉयल टाउन अपोजिट,
गुलाब नगर मोपका
बिलासपुर-495006 (छत्तीसगढ़)
मो.-9907126350

बहुरूपिया

– रजनी शर्मा 'बस्तरिया'

जन्म – 15 मार्च 1967।
शिक्षा – बी.एस.सी., एम.ए., एम.एड.।
रचनाएँ – सत्ताईस पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – साहित्य अकादमी दिल्ली सहित अनेक संस्थाओं से सम्मानित।

गाँव का मेला भर चुका था। झूले की आवाज किरकोंय-कीरिच किरकोंय-कीरिच। गन्ने पेरनेवाली मशीन के आस-पास झूमते बच्चे। बाँस की टोकनी के ऊपर सजे देसी पकवान। एल्यूमिनियम की गंज में बिकती 'सल्फी।' दूर तेतर रुखयाती (इमली पेड़) पर पोंगा अटका दिया गया था। एक ओर मुर्गा लड़ाई के लिये पुरुषों का जमावड़ा हो चुका था।

लड़कियाँ मनपसंद रिबन और प्लास्टिक की चूड़ियों का मोल-भाव करती जा रही थीं और कनखियों से देखते लड़के।

'आहुक' ने अपने कदम जल्दी जल्दी मेले की ओर बढ़ा दिये। उसने पिछली बार से अलग रूप धरा था। अब की बार लड़की जैसा ही दिखने के लिए उसने नकली बाल का जूड़ा बाँयी ओर बनाया था। उसमें ककवा खोंच कर हाथों में बड़ी मुश्किल से ककनी यानी कंगन चढ़ाया। भला मर्दाना हाथों में ककनी सहजता से पेहरी जा सकती है? ककनी तो बड़ी नफ़ासत से पहनी जाने वाली चीज होती है। नाजुक, चिकनी त्वचा वाली मक्खन सी नरम कलाईयाँ बहुत नरमाई से धीरे-धीरे कंगन को आश्रय देती हैं। भला हड़बड़ी में जरा सी भी गुस्ताखी़ अगर इनके साथ हुई तो ये बिक कर छलंग जाती हैं। और वैसे भी इन्हें क्या जरूरत है कि किसी मर्दाना शरीर पर अपनी छवि लुटाएँ। अपना रुतबा मर्दाना शरीर पर बरकरार रखने की इनको कोई गरज नहीं है। जल्दबाजी में धबड़-धबड़ कंगन पहनने के चक्कर में आहुक के हाथ छिल गये। उसके मुँह से निकला, माँ रे!

चेहरे पर चमकीला, देहाती क्रीम पोत कर उसने अपनी साड़ी को घुटनों से ऊपर बाँधा। आज गाँव में मड़ई के बाद 'नाट परब' का आयोजन था। जिसमें उसे 'मिटकी' पात्र का मंचन करना था। वैसे तो पूरे बस्तरांचल में 'झिटकी-मिटकी' की प्रेम गाथा सदियों से गाई जाती रही है। पर आधुनिकता के पंजों ने बस्तर जैसे हजारों नन्हें गाँवों को दबोच लिया था। इनकी जकड़न इतनी कसी हुई है कि बस्तर के हजारों गाँवों का दम घुटता जा रहा है। ये बहुरूपिये ही झिटकी-मिटकी पात्रों का सजीव अभिनय करके इन्हें आज तक जिंदा रखे हुए हैं।

मंच पर दरी बिछाई जा चुकी थी। मंच के किनारे संगतकारों ने अपने-अपने आसन ग्रहण कर लिए थे। जय हो दंतेश्वरी मईया भीड़ ने भी जयकारा लगाया।

आहुक जब मिटकी का रूप धारण करता था। तो न जाने कहाँ से उसकी वाणी में मृदुलता, चाल में लचक, स्त्रियोचित गुण उसमें आ जाते थे। 'मिटकी' सात भाईयों की अकेली, दुलारी बहन जो थी। उसकी कथा का जीवंत प्रस्तुतिकरण इतना आसान तो नहीं हो सकता न!

नाट परब में मिटकी के पात्र का मंचन प्रारंभ हो चुका था।

संवाद कहे जा रहे थे-
तुम मुझे भुला दो!

ऐसा नहीं हो सकता!
मेरे भाई तुम्हें मार डालेंगे!
आंगा देव की कसम खाकर कहती हूँ-मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ सकती!

पर इसके बाद 'मिटकी' का रूप घरे आहुक का विलाप और झिटकी यानी प्रेमी की हत्या के बाद मिटकी का स्वमेव प्राण त्याग देना। बहुत ही कारुणिक प्रसंग था। महिलाएँ आँखें पोंछते दिखीं। तो किशोरियाँ हतप्रभ कि प्रेम का ऐसा भी रूप होता है क्या!

आहुक की रोजी-रोटी ऐसे ही विभिन्न स्वांगों से चलती थी। लोहार जाति का होने के कारण फ़क्क त्वचा पर कोई भी आवरण चढ़ जाता था। और फबता भी खूब था!

आहुक को आज दूसरे गाँव जाना था। उस गाँव की ओर जाने के लिए उसके कदम मानो सदैव तैयार ही रहते थे। उस गाँव के सरपंच की बेटी 'फूलो' से पिछली बार मड़ई में मुलाकात हुई थी।

'फूलो' का चेहरा बिल्कुल कनेर के फूल की तरह ही दमकता रहता था। जिस प्रकार कनेर का फूल केवल शिव पर चढ़ता है। वैसे ही 'शिव' की खोज उसके सरपंच पिता ने प्रारंभ कर दी थी। आहुक ने आज सोच ही लिया था। कि वह आज फूलो से अपने मन की बात कह ही देगा! पिछली बार के गाँव में जब नाट परब हुआ था, तो सबसे पहली पंक्ति में फूलो अपने पिता के साथ ही बैठी थी। आहुक ने जो वेश धारण किया था। उसे देख फूलो की खुशी देखते ही बनती थी। मंच पर बहुरूपिया का वेश धरे वह कभी मंच से नीचे भी कूद जाता था, तो कभी वह फिरकी की तरह फूलो के इर्द-गिर्द चक्कर भी लगा लेता था। यह सब सरपंच को भाँपते देर नहीं लगी! उसने झट से फूलो के आस-पास लठैतों का पहरा लगवा दिया। लठैत भी साधारण नहीं थे। माड़पाल गाँव के मड़िया जो अपनी स्वामी भक्ति के लिए दूर-दूर तक जाने जाते थे। ये पल में शत्रु का गला काट दें और फरसा के साथ थाने में सबके सामने खड़े हो जाएँ! उनकी ऐसी ही छवि बस्तर के जनमानस में बसी हुई थी।

फूलो के चेहरे पर कई तरह के भाव आ-जा रहे थे। जैसे कि आसमान में प्रेम वाले बादल उमड़ रहे हों। और अचानक कोई काली घटा उनका रास्ता रोक ले! सरपंच पिता का खौफ उसे खाये जा रहा था। पर आहुक को कैसे समझायें? मड़ई में सजी दुकान से जब वह लाल फीता ले रही थी, तभी उसकी नजर आहुक की नजरों से टकराई थी। संवादहीन संप्रेषण दोनों के बीच हो चुका था। आहुक ने लाड़ से फूलो से कहा -
क्या चीज खरीदना है खरीद ले!

फूलो का चेहरा प्रियतम के मनुहार से आरक्त हो उठा। उसने लजाते हुए स्थानीय लुंगी की ओट में अपना चेहरा छुपा लिया।

रात को साक्षात् जटाधारी, विल्वपत्र पहने आहुक ने रूप धरा था। चर्म धारण किये वह साक्षात् 'कृतिवासा', शंकर का रूप धर डमरू बजा रहा था। गले में सर्प, बदन पर भभूत। आज वह आशुतोष, कम में संतोष करने वाला लग रहा था। उसे सिर्फ और सिर्फ फूलो से मतलब था। किसी और के लिए उसके मन में जरा भी आसक्ति नहीं थी। मन में प्रेम का ज्वार उमड़ रहा था। कामहंता, कामारि का स्वांग रचने में जाने क्यों वह आज अपने आपको असमर्थ पा रहा था?

साक्षात् शिव जब रति नृत्य से अपने तीसरे नेत्र खोलने से विवश हो गए, तो उसकी भला क्या बिसात? नेह रंगे उत्सव के बीच कुछ अप्रत्याशित सा घटा।

नाट परब खत्म होते ही अमराई के पास घुप्प अँधियारे में उसे घसिट लिया गया, उसकी बेदम पिटाई हुई।

आवाज गूँजी।

बोल अब सरपंच की बेटी पर डोरे डालेगा?

मेहला गतर चो! (औरतों जैसा!) लाठियों की आवाज के साथ शब्द गूँज रहे थे।

न माँ का पता, न ही गोत्र का ठिकाना। रुपर से स्वांग रचने का काम! मेहला गतर का। लहूलुहान अर्धमूर्छित, बेहोशी की हालत में आहुक बुदबुदा रहा था। 'जीविका चलाने का यह सम्मानजनक कार्य निकृष्ट कैसे हो गया?'

आखिर नाट परब में उसने अनेक बार कई रूप धरे थे। कभी वन भैंसे का, तो कभी शिव, कभी अनेक देवी-देवताओं का।

उसकी छः फुटिया काठी पस्त हो चुकी थी। बाणहों की मंछलियाँ छटपटा रही थीं। वृषभस्कंधा आहुक अचेत हो चला था। पसलिया धौंकनी सी चल रही थीं। सारे दृश्य आँखों में झिलमिलाने लगे। कैसे उसके गाँव में पुरुष भी चूड़ियाँ बेचते आये हैं। सारे श्रृंगार के सामान भी वही सजाते हैं।

मड़ई-मड़ई वह काँच की पतली सी सुतवाँ पेटी लिए जिसमें श्रृंगार के सामान चूड़ी, फूंदरी, टिकली, बिंदी। सारे सामान या यूँ कहिए। सतरंगी सपनों की छाँव लिए गाँव-गाँव घूमता था। बस्तर के निछाट देहाती सपने इन बहुत साधारण सी श्रृंगार सामग्रियों में भी बसते थे। चाहे फिर वह लाल चटक चूड़ी हो, फीता हो या फिर कोई और श्रृंगार सामग्री। आजीवन साथ देने वाले अमिट गोदने के टप्पे बस्तर बालाओं के शरीर के सबसे शाश्वत, पारंपरिक नायाब गहने हुआ करते थे। पर इन श्रृंगार सामग्रियों की जुगलबंदी से उनका निश्चल देहाती सौंदर्य का जादू सिर चढ़कर बोलता था। आज भी सुदूर अंचलों में, गाँवों में निर्बाध रूप से पुरुष ये सामग्री बेचते आए हैं।
फिर वह भी तो पुरुष ही था!

फिर उसके काम में क्या बुराई है?

आहुक चालने की स्थिति में नहीं था। पिटाई के बाद वह बेसुध अमराई में सुबह तक पड़ा रहा। पूरा शरीर लहू-लुहान हो चला था।

आँखों को बड़ी मुश्किल से खोल पाया। कुछ ही दिनों में उसे पता चल गया कि सरपंच ने अपनी बेटी को कहीं और भेज दिया था।

आहुक की स्थिति अब प्रेम में भटकते मिटकी की तलाश करते-करते मरणासन्न सी हो गई थी। सारे पेड़ों से, कोयल से, गन्ने के खेतों से पूछ-पूछ कर हार गया था कि, फूलो कहाँ है?

क्या उसे जमीन निगल गई या आसमान खा गया?

ऐसे ही यायावरी में दिन बीतते गये। आज उसे नारायणपुर में अपनी प्रस्तुति देनी थी। फिर से बहुरूपिया बनना था। घोटुल में आज नाट मंडली के ठहरने की व्यवस्था की गई थी। (घोटुल बस्तर की समृद्ध संस्कृति का वह हिस्सा है वहां अविवाहित महिला, पुरुषों को स्वस्थ आदिवासी परंपरा के तहत मनपसंद जीवन साथी चुनने का अधिकार दिया गया है।)

अविवाहित विवाह योग्य कन्या 'चेलकीन' कहलाती है। चेलकीनों को बस्तर की आदवासी संस्कृति का घोर-प्रशिक्षण दिया जाता है और पुरुषों को भी। पुरुष 'घोटुल' के लिये, फल, अनाज, मदिरा, सल्फी की व्यास्था करते हैं। तो चेलकीनें घोटुल की साफ सफाई, भोजन पकाने जैसे कार्य।

नारायणपुर के इसी घोटुल में फूलो चेलकीन के रूप में नियुक्त कर दी गई थी। फूलो ने अपने सिर की बाँयी ओर बने जूड़े में ककवा, कंघे को खोंचा। तो उसकी आँखें नम हो गईं। आहुक ने ही उसे यह लकड़ी का कंघा दिया था।

कितने यत्न से सरई पेड़ के तने गोत्र सूचक बाना मछली, चिड़ियों के चित्र उकेर उसने फूलो को दिया था। यह नेह की चिन्हारी। अपनी मिट्टी, अपनी जमीन अपने गाँव अपनी बाड़ी और अपने आहुक से विलग होने का दुख असहनीय था।

घोटुल के पास के तालाब से पानी भरने जा रही फूलो को अचानक लगा कि एक जोड़ी परिचित आँखें उसका पीछा कर रही हैं! उसने पलट कर देखा तो कलेजा धक से रह गया! वो और कोई नहीं आहुक ही था!

फूलो ने किसी अनहोनी की आशंका से अपने कदम तेज कर दिए।

आखिर आज की रात उसे घोटुल में अपनी पसंद के साथी का चुनाव कर हमेशा-हमेशा के लिए घोटुल को छोड़ना होगा। सरपंच पिता की लठैतों की पूरी फौज उसकी निगरानी में मुस्तैद की जा चुकी थी।

रात को स्थानीय लोक नृत्य का आयोजन था। जहाँ लड़के-लड़कियाँ एक साथ आग के चारों ओर नृत्य करेंगे। बस्तर की इस स्वस्थ परंपरा ने आज के इस आधुनिक समाज को चुनौती दी थी। फलस्वरूप घोटुल को विकृत कर तथाकथित 'सभ्य समाज' ने घोटुल को विकृत स्वरूप के साथ दुनिया के समक्ष परोस दिया।

आज फूलो ने अपने आप को कमरे में बंद कर लिया था। अनमने ढंग से उसे तैयार होना, सजना-सँवरना था। रात में उसे भी अन्य चेलकीनों की तरह अपने नृत्य कला का प्रस्तुतिकरण देना था। उसकी आँखें नम थीं, कदम बोझिल। फूलो बेमन से घोटुल के आँगन में नृत्य के लिए पहुँची। वह लड़कियों की टोली में सम्मिलित हो गई। नृत्य की पंक्तियों में एक और लड़कियों का तो दूसरी ओर लड़कों का झुंड था।

बस्तरिया पुरुष, वृषम स्कंधा, पुष्ट देहयष्टि, बाजुओं की फड़फड़ाती मछलियाँ, सिर के साफे में कौए के पंख खुँचे और हाथ में टुड़बुड़ी, मांदर वाद्य यंत्र। बस्तर बालाओं की कसी काया, लापरवाह देहाती सौंदर्य की आभा देखते ही बनती थी। मांदर बजने लगा।

'राने जावां, राने जावां हो...
गेंदा फूल
राने जावां हो.....
लेकियाँ गुनगुनाने लगीं।
'केबके जांवां ?
केबके जांवां हो .....
गोंदा फूल केबके जांवां?
(कब जायेंगें-कब जायेंगे?)
लड़के गुनगुनाने लगे।

लेकियों के एक हाथ में रूमाल और सीधा हाथ अगली लड़की की कमर में। इस तरह एक नृत्य की पंक्ति बनाई जानी थी। जो एक बार झुकती, तो दूसरी बार उठती। एक लय में नृत्य। मानो बस्तर की स्वस्थ परंपरा के कदमों में अपना निश्चल प्रणाम अपने नृत्य के दोनों में महुआ के फूल से अर्पण कर रहे थे।

फूलो का मन बेहद उदास था। बस चंद क्षण, बस! और उसके भविष्य का फैसला हो ही जायेगा। मन मारकर किसी अन्य को जीवनसाथी चुनना ही होगा!

कातर नयन, थके कदम, पस्त मन से नीची नजरें किये उसने अपना दाहिना हाथ अपनी सहेली की कमर में रखा ही था कि सन्निपात हुआ! स्नायुतंत्र झनझना उठे।

जाना पहचाना स्पर्श, हथेलियों के दबाव से उसने महसूस किया। आहुक चेलकीन का रूप धरे उसके साथ पंक्ति में शामिल हो चुका था। नृत्य की गति बढ़ती गई।

राने जावां-राने जांवां हो . . .

तेज और तेज मांदर की ध्वनि बजने लगी। तुड़बुड़ी बजने लगे। पूरा समूह झूमने लगा। एक साथ अनेक सिर झुकते और नियत समय पर उठते। हाथों में पकड़ी गई छड़ी आवाज की तीव्रता बढ़ती गई। जीवन राग, जिजीविषा का राग गूँजने लगा बस्तर की फिजाओं में!

नर्तक दल की पंक्ति की अगुवाई करने वाली फूलो के कदमों में जाने कहाँ की ऊर्जा आ गई?

झाली परब . . .

झाली परब नृत्य के बोल गूँजने लगे। फूलो आज फूलो नहीं थी। उसकी नसों में आज बस्तर बालाओं का लहू हिलोरें ले रहा था। जहाँ बस्तर की घोटुल जैसी स्वस्थ परंपराए बस्तर की लड़कियों को मनपसंद साथी चुनने का अधिकार ससम्मान देती हैं। सारा वजूद शिवतांडव युक्त हो गया था। जूड़ा खुल चुका था। गले में पहनी गई कौड़ियों की माला बिखर चुकी थी। पाँवों में पहने गए पायड़ी, पायल के छिलाव से लहू रिसने लगा था। बाजुओं में पहने गए नागमोहरी, बाजूबंद भी खुल चुके थे। और फूलो असमंजस, अनिर्णय के पाश से निकल निर्णय की डेहरी पर आ खड़ी हुई थी।

रूप किसका बदला था?
आज बहुरूपिया कौन था?

किसने वर्षों से ओढ़े अनिच्छा वाले रूप का परित्याग कर निर्णय वाला रूप धरा?

कौन बहुरूपिया का स्वांग रच आज उन्मुक्त हो चला था?

इसी झूमा-झटकी वाले नर्तन के बीच से दो जोड़ी पैर बाहर की ओर पलायन कर चुके थे।

उस घोटुल से दो जोड़ी पाँव बाहर की ओर कूच कर चुके थे, जा चुके थे। कहीं दूर बस्तर के पहाड़ों, जंगलों, सल्फी, सागोन, शीशम ने आँखें बिछाकर स्नेह के फूल बिखेर दिए थे। वे हवाओं के मार्फत संदेश भेज रहे थे उन दोनों को। जाओ बहुत दूर, बहुत दूर जहाँ बस्तर उनकी प्रतीक्षा कर रहा है! सदियों से चुपचाप ऐसे ही।

116 सोनिया कुंज
देशबंधु प्रेस के सामने,
ज्ञानाश्रय स्कूल के ऑपोजिट,
नगर निगम कालोनी,
रायपुर-492001 (छ.ग.)
मो.नं.- 9301836811

विशेष अनुरोध

सम्मानित सदस्यों से विनम्र अनुरोध है कि सदस्यता शुल्क मनीआर्डर, आर.टी.जी.एस / एन.ई.एफ.टी, आदि ई-बैंकिंग माध्यमों से भेजने के पश्चात् एक पोस्ट-कार्ड पर अपना पूरा नाम-पता, पिन कोड नम्बर सहित लिखकर 'अक्षरा' कार्यालय को अवश्य सूचित करें। ताकि पत्रिका प्रेषित करने / मिलने में होने वाली असुविधा से बचा जा सके।

बैंक, खाता संख्या निम्नवत् है-

Ac/ No. 50413818696, IFSC- IDIB000T610

इंडियन बैंक, हिन्दी भवन शाखा, भोपाल

एक रात की खातिर

मूल : शाहिद जमील अहमद
अनु. : बानो सरताज

जन्म – 17 जुलाई 1945।
जन्म स्थान – पांढरकवड़ा, यवतमाल,(महा.)
शिक्षा – एम. ए., एम. एड., पीएच. डी.।
रचनाएँ – 108 पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार।

मेरे कंधों से कब उतरेगा साबी? तू बोलता क्यों नहीं? तुझे पता है अब मैं बूढ़ा हो चुका हूँ। शरीर अशक्त हो गया है। तुझे लाद कर दो कदम चलता हूँ तो मेरी साँस फूल जाती है, नाफ पड़ जाती है। नाफ ठीक होती है तो चक पेड़ जाती है। तुझे मुझ पर दया क्यों नहीं आती? तूने मुझे मरणासन्न क्यों कर दिया है? वृक्षों पर फल आए तो उनकी टहनियाँ हरी हो जाती हैं। मैं कितना अभागा हूँ कि मुझे भाग भी लगे तो धुन की भाँति लगे। तेरी माँ भाग्यवान थी कि शीघ्र ही जीवन से छुटकारा पा गई।

मेरी जिंदगी भी कोई जिंदगी है? मरने से कहीं खराब, कहीं कठिन।

जी में आता है घुटनों तक मेरी टाँगें काट कर तुझे खटिया पर डाल दूँ। कम-बख्त, नसीब मरे, न तू घर से निकले और न मुझे लोगों की कटु बातें सुनना पड़ें। आज तू चौधरियों के लड़के पर क्यों भौंका था? मुए! तून मात्र भौंकने पर ही संतोष नहीं किया, दाँतों से उसकी टाँग भी झँझोड़ डाली। वह तुझे मारते नहीं तो क्या करते? पता है तुझे जितनी भी सोंटियाँ लगीं सब के सब मरे हृदय पर बरसीं मैं कितना विवश हूँ कि तुझे और मारने को कहता रहा। मुझे माफ कर दे साबी! मैं उनके क्रोध से भयभीत हो गया था और जिस बात से मैं डर रहा था, वह होकर रही। अत्याचारियों ने मेरी हड्डी-पसली भी एक दी। मैं बस यही कह सकता हूँ कि जिन्होंने तुझे मारा। अल्लाह उनको तेरी जैसी संतान दे तो मेरी छाती में ठंडक पड़े। आज तो मुझे तुझ पर भी गुस्सा आया। जी में आया कुल्हाड़ी से तेरी बाँहें और पिंडलियाँ काट दूँ जिनसे तू चौपायों की भाँति चलता हुआ ड्योढ़ी से बाहर निकल जाता है। यदि तुझे कैद करके रखूँ तो तू रो-रो कर आकाश सिर पर उठा लेता है। कितना निर्दयी है तू! मैं तेरा क्या इलाज करूँ? क्या बताऊँ? गुस्से में क्या-क्या सोच जाता हूँ पर फिर तेरी माँ का चित्र आँखों के सामने घूम जाता है। तेरे होने से पल्ले हम दोनों ने कितने सपने सजाए थे! सोचा था, तू आएगा तो घर में बहार आ जाएगी पर तू ऐसा आया कि अपनी माँ को ही खा गया।

तेरी लकड़ी जैसी टाँगों की मालिश करते-करते मेरी बाँहें सो गई हैं। कभी-कभी तो जी में आता है, टोके से तुझे इतना बारीक कर दूँ कि तेरे कण मिट्टी में मिल कर मिट्टी हो जाएँ पर फिर अपनी विवशता याद आ जाती है। सोचता हूँ क्रोध का उबाल उतरेगा तो तुझे धरती से कैसे इकट्ठा करूँगा? तुझ से बातें कैसे करूँगा? तू मेरे शरीर का अंग है, मुझे एहसास है कि तू कोई वृक्ष नहीं कि जिसकी एक टहनी काट दी तो दूसरी निकल आएगी। दूसरी निकल भी आए तो तेरा स्थान नहीं ले सकती क्योंकि तू मेरी पहलूठी की टहनी हो न!

आह! पर तेरे साथ ये समस्त बातें ही व्यर्थ हैं। न तू देखता है, न सुनता है, न समझता है। तू पत्थर है पत्थर! न दुख तुझ पर प्रभाव डालता है, न सुख कोई आनंद देता है।

वह स्वकथन करता रहा, साबौ अपने आप में मगन उसके कान को चाटे जा रहा था। मुख से लार गिर कर पिता के कुर्ते में समाती जा रही थी। एक-दो बार तंग आकर हाथ की सहायता से साबी के मुँह को कान से हटा दिया था पर साबी की करुण चीत्कार पर मुँह पकड़ कर फिर कान पर लगा दिया था। पिता रो रहा था। पुत्र अपने ध्यान में मक्खियों की भाँति उसके कान का गुड़ चाटे जा रहा था।

डेरे पर पहुँच कर उसने साबी को एक ओर रखा और बैलों की खरनी तैयार करने के लिए आस्तीनें चढ़ाने लगा। साबी की आवाज पर चौंका। उसने हाथ सामने फैला रखा था, कह रहा था-'बाबा, आना दे . . . दे।' उसे फिर क्रोध आ गया, खीज कर बोला, 'आना कहाँ है कम्बख्त मेरे पास। मेरे लिए इतने आने कहाँ से लाऊँ। तुझे तो पूरा दिन यही काम है।' साबी चीखता रहा, वह उसकी ओर ध्यान दिए बिना अपना काम करता रहा। भैंस को चारा डालने के पश्चात् वह हुक्का लेकर एक ओर बैठ गया, प्रतीक्षा करने लगा कि भैंस चारा

खाले तो दूध दुह ले और सूर्यास्त से पूर्व गाँव पहुँच जाए।

वापसी पर फिर साबी को कंधों पर लादा और बायें हाथ में दूध की बाल्टी लेकर गाँव की ओर चला। साबी को भूला हुआ सबक याद आया, फिर चपड़-चपड़ कान को चूसना आरंभ कर दिया एक-दो बार साबी के थूक से कान बंद होता महसूस हुआ तो उसने छोटी अँगुली की सहायता से उसे साफ किया। दूध की बाल्टी एक हाथ से दूसरे हाथ में बदल कर गाँव की ओर बढ़ा। जब वह चौराहे पर पहुँचा तो उसे दूर से अम्मा जन्नते आली दिखाई दीं जो दूसरे गाँव से आने वाली सड़क से चली आ रही थीं। वह समझ गया जन्नते उसी के काम से गई होंगी।

उसने कई बार अम्मा जन्नते से कहा था कि उसे अब विवाह नहीं करना पर वह एक न मानीं, आग्रह करती रहीं। तर्क देती रहीं कि उसे पुनर्विवाह अवश्य करना चाहिए। जरूरी नहीं कि दूसरी पत्नी से भी उसकी संतान साबी जैसी अपंग हो और फिर तुम्हारे घर में रोटी पकाने वाला भी तो कोई नहीं अंततः उसने विवाह के लिए 'हाँ' कह दिया।

अम्मा जन्नते उसके समीप आईं पसीना पोंछती हुए बोली, 'लड़की वालों ने हाँ कह दी है। पहले तो वह साबी के कारण मानते न थे पर जब मैंने बताया कि तुम्हारे पास दो बीघे जमीन है तो मान गए।'

साबी को ढोते-ढोते उसके जीवन के 12 वर्ष बीत गए थे। आखिर उसका विवाह हो गया। दुख का नया अध्याय आरंभ हुआ। पहले तो साबी को गाँव के लोग पीटते थे अब घर ही में धुनाई होने लगी। घर में उसकी जान की दुश्मन जो आ गई थी। विवाह के तीसरे ही दिन विमाता ने अपने मायके के सूट पर थूक लगा देने के अपराध में साबी के मुँह पर मिरचों वाला सोंटा दे मारा था जिससे साबी का ऊपर वाला ओंठ लहुलहान हो गया था।

उसने को बहुत समझाया कि 'ये तो पागल है तुम तो समझदार हो।' उसके तेवर और बिगड़ गए। हिंसक हो गई, क्रोध में चिल्लाने लगी, 'न दिन को चैन, न रात को आराम। इसने तो मेरा जीवन नरक बना दिया। इसे ले जा कर नहर में क्यों नहीं फेंक देते?'

शरीफा के मुख से नहर में फेंकने का सुझाव सुन कर उसे सहसा अपने कंधों का बोझ हल्का होता महसूस हुआ। शरीफा की करवटों एवं अपने अभाव ने उसे अंधा कर दिया। विचारों के चक्रव्यूह में फँस गया। सोचा, 'शरीफा क्या कह गई? साबी को नहर में फेंक दूँ? पर कैसे फेंक दूँ? वह तो मेरे जिगर का टुकड़ा है। मेरे प्राण हैं उसमें।'

दूसरा विचार आया, शरीर का कोई अवयव सड़ जाए तो उसे काट कर फेंक दिया जाता है बिल्कुल वैसे ही जैसे वृक्षों की सूखी टहनियाँ काट दी जाती हैं!

वह पूरा दिन गुम सुम रहा। साँझ होने लगी तो उसने साबी को कंधे पर लादा और डेरे की ओर चल दिया। आज रात पानी की उसकी पारी थी। रास्ते भर उसने साबी से बात नहीं की। न उसे अपना दुख सुनाया, न स्वयं को सात्वना दी। आज भैंस का दूध भी नहीं निकाला।

इशा की अजान के बाद उसने साबी को कंधे पर उठाया और नहर के किनारे-किनारे चलने लगा। चुप-चाप विचारों के थपेड़ों से जूझता एक डेढ़ घंटे तक पैदल चलने से सर्दी की सात में भी कपड़े पसीने से भीग गए। उसने सोचा यहीं इस बोझ को फेंक कर वापस हो जाए। फिर ख्याल आया कि यह कम्बख्त किनारे के पास आकर शोर न मचा दे इसलिए आगे पुल तक चहुँच गया। आधा पुल पार करने के बाद उसने लोहे के जंगले से नीचे झाँका, आँखें बंद की और . . . और . . . और. . . और बोझ को नहर में फेंक दिया।

छप से आवाज ने कुछ क्षणों के लिए उसे निष्क्रिय कर दिया पर जैसे ही उसे होश आया, उसने दौड़ लगा दी।
नहर से पर्याप्त अंतर पर आकर वह पल भर रुका। उसके कान में खुजली हुई। उसका हाथ अनायास कान पर गया ताकि साबी के मुँह की पकड़ कर अलग कर दे पर -
साबी तो वहाँ नहीं था।
वह तो नहर में समा चुका था।

पर नहीं, कंधों का बोझ उतर गया था। वहाँ से उतर कर मस्तिष्क में पहुँच गया था और मस्तिष्क कंधों से नाजुक होता है।

घर पहुँचते-पहुँचते वह तीव्र ज्वार की चपेट में आ गया। सीधा अपनी चारपाई पर जा गिरा, पछतावे ने उसे घेर लिया था। सबसे बड़ा पछतावा तो उसे यह था कि आज की रात भी शरीफा की रात न हो सकेगी।

सरताज हाउस जीतेन्द्र नगर,
नीयर प्रथम तल एम.एस.ई.बी.,
टॉवर, पांढरकवाड़ा रोड,
यवतमाल-445001 (एम.एस.)
मो.-9423418497

बंजारे को पुकारता रहता है एक घर

- दिनकर कुमार

जन्म – 5 अक्टूबर 1967।
जन्म स्थान – दरभंगा बिहार।
रचनाएँ – दस पुस्तकें प्रकाशित, कतिपय सम्पादित।
अनुवाद – विशेष कार्य।

बंजारे को पुकारता रहता है एक घर
जो घर कल्पना की जमीन पर निर्मित होता है
जिस घर की तमन्ना में बंजारा
भटकता फिरता है जंगल पहाड़ मैदान
देश परदेश गली गली नगर नगर
जिस घर की आस में बंजारा
कदम-कदम पर सहता रहता है दुत्कार फटकार

बंजारे को पुकारता रहता है एक घर
जैसे पंछी को पुकारता है घोंसला
जैसे नदियों को पुकारता है सागर
बंजारे की आँखों में झिलमिलाता रहता है एक घर का सपना
जिसकी चाह बरबाद करती है बंजारे को

बंजारे को पुकारता रहता है एक घर
जिस घर में इत्मीनान की दीवारों का सहारा लेकर
बंजारा राहत की साँस लेना चाहता है
जिस घर में बंजारा अपने अभिनय को छोड़कर
अपने असली चेहरे को आईने में निहारना चाहता है
जिस घर में बंजारा
स्वाभिमान के साथ जीना और मरना चाहता है

दुनियादारी की परीक्षा में उतीर्ण नहीं हो सका

विफलता का परचम साथ-साथ चल रहा है
पीछे-पीछे व्यंग्य की हँसी सुनाई दे रही है
फुसफुसाहटों में शिकायतें हैं--
क्या कर पाए
क्या हासिल कर पाए

दुनियादारी की परीक्षा में उतीर्ण नहीं हो सका
इसीलिए फब्तियों का दंड सहना होगा
सिर झुकाकर एकतरफा फैसले को सुनना होगा
शब्दों के कोड़े पीठ पर बरसते रहेंगे
अपमान का विष चुपचाप पीना पड़ेगा

दुनियादारी की परीक्षा में उतीर्ण नहीं हो सका
इसीलिए राहत दे नहीं पाएगी कविता
तसल्ली नहीं दे पाएगा संगीत का राग
सृजन की धुन के पीछे
छिप नहीं पाएँगी दैनिक जीवन की जरूरतें
रोटी के सवाल को हल किए बगैर
निरर्थक ही बनी रहेगी समस्त प्रतिभा

उदास लोगों से मिलता हूँ

उदास लोगों से मिलता हूँ
और गहरी हो जाती है मेरी उदासी
चेहरे पर पराजय के हस्ताक्षर
आँखों में सुलगते हुए सवाल
उन आँखों में झाँकते हुए भी
घबराहट होने लगती है

उदास लोगों से मिलता हूँ
अंदर ही अंदर कुछ टूटने लगता है
ये कैसे मनुष्य हैं जो
चलते-फिरते शव की तरह नजर आते हैं
जो जीवन धारण का दंड भुगतते हुए
रोना चाहकर भी खुलकर रो नहीं सकते

उदास लोगों से मिलता हूँ
पता नहीं कैसे शब्दों के बिना ही
पीड़ा की पुस्तक का सार समझ जाता हूँ
माथे की सलवटों का उलाहना सीधे
कलेजे में उतर जाता है
आँखों को फेर लेने पर भी
कोई राहत नहीं मिलती
कदम से कदम मिलाकर अँधेरा
साथ-साथ चलता है।

व्हाइट बिल्डिंग, शांति पथ
कलिताकुची, गुवाहाटी-781171 (असम)
मो.-9435103755

कब उजियारा आयेगा

- गरिमा सक्सेना

जन्मतिथि - 29 जनवरी 1990
जन्मस्थान - पिथौरागढ़ , उत्तराखंड।
शिक्षा - अभियांत्रिकी स्नातक।
रचनाएँ - पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

कई उलझनें खोंप रखी हैं
जूड़े में पिन से
कब उजियारा आयेगा
वह पूछ रही दिन से

तेज़ आँच पर रोज़
उफनते भाव पतीले से
रस्सी पर अरमान पड़े हैं
गीले-सीले से
जली रोटियाँ भारी पड़तीं
जलते जख़्मों पर
घर तो रखा सँजोकर
लेकिन मन बिखरा भीतर
काजल, बिंदी, लाली, पल्लू
घाव छिपाते हैं
अभिनय करते होंठ बिना
मतलब मुस्काते हैं
कई झूठ बोले जाते हैं
सखी पड़ोसिन से

छुट्टी या रविवार नहीं
आते कैलेंडर में
दिखा नहीं सकती थकान
लेकिन अपने स्वर में
सजाये
तोतली सी बोलियाँ

गढ़ रही हैं
नए कल का
पुस्तकें प्रारूप

देख विवशता, बरतन भी
आवाजें करते हैं
परदे झट आगे आ जाते
वो भी डरते हैं
डाँट-डपट से उम्मीदें हर
शाम बिखरती हैं
दीवारें भी बतियाती हैं
चुगली करती हैं
रात हमेशा तुलना करती
रही डस्टबिन से

छन रही है धूप

पत्तियों की
छन्नियों से
छन रही है धूप
दिख रहा
पगडंडियों का
अब सुनहरा रूप

सूर्य बनने को
चली हैं
शावकों की टोलियाँ
स्वप्न आँखों में
जा रहीं
अल्हड़ गगरियाँ
खिलखिलाने घाट पर
स्वर्ण,
मिट्टी को बनाने
कृषक निकले बाट पर

चाहते
सुख-दुख फटकना
आँख के दो सूप

मंदिरों में
बज रही हैं
आस्था की घंटियाँ
रोटियों को
थाप देतीं
खनखनाती चूड़ियाँ

लग रही है
भोर मनहर
गीत का प्रतिरूप

ए-212, सेंचुरी सरस अपार्टमेंट, यलहंका, बैंगलोर-560064 (कर्नाटका)
मो.- 7694928448

रजनीगंधा

– लक्ष्मीनारायण बुनकर

जन्म – 5 अक्टूबर 1956।
शिक्षा – एम.ए., पीएच.डी.।
रचनाएँ – ग्यारह पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान – कबीर सम्मान सहित अनेक सम्मानों से सम्मानित।

काली अँधेरी रात में
महकते हैं
रजनीगंधा के फूल
ढोकर लाती है हवा
उनकी खुशबू
अपने कंधों पर।

भाग्यशाली हैं हम
और वह हवा
जो खुशबू से अघाते नहीं।

तुम रात में ही क्यों महकती हो
क्यों नहीं खिला करतीं दिन में भी
ताकि कामगारों की थकान
हो जाए कुछ कम
राहत मिले उन्हें भी
तुम्हारे स्पर्श से।
सूरज की गर्मी से
गर्माती जिंदगी को
सख्त जरूरत है तुम्हारी
तुम्हीं दे सकती हो
खुशबूदार हवा
दिन में भी महककर।

सार्थकता

बादल निर्जल होकर
बरसना चाहते हैं
नदी शुष्क होकर
बहना चाहती है
वृक्ष
पुष्प विहीन होकर
फलना चाहते हैं
वाणी अवरुद्ध होकर
कुछ कहना चाहती है
नहीं, यह असंभव है
बादलों को सजल
नदी को सरस
वृक्षों को पुष्पित
और वाणी को
मुखरित होना पड़ेगा।
तभी कर पाएँगे वे
अपनी सार्थकता को सिद्ध।

मिडिल स्कूल के सामने,
शिवाजी नगर,
गुना-473002 (म.प्र.)
मो. 9993572032

योग विज्ञान एक परिचय

- जयजय राम आनंद

जन्म - 1 अप्रैल 1934।
जन्मस्थान - मैनपुरी (उ.प्र.)।
शिक्षा - एम.ए., एम.एड., पीएच.डी।
रचनाएँ - आठ पुस्तकें प्रकाशित।

(10 वाँ विश्व योग दिवस के संदर्भ में)

भारत में जन्म लिया, परम योग विज्ञान,
अनुशासन क्रमबद्धता, अद्भुत रीति विधान।

सम्प्रदाय या धर्म से, रखे न नाता योग,
तन मन आत्मा भाव से, होय अनमना भोग।

सांसारिक अध्यात्म की, इच्छा हो भरपूर,
तन मन बसीं बुराइयाँ, योग भगाता दूर।

संयम साधन साधना, तन मन परम विकास,
दिव्य शक्ति के योग से, बाँटे योग सुवास।

ऋषि मुनियों ने योग को, परखा साधा खूब,
हँसी खुशी जीवन जिया, ज्यों लहलहाती दूब।

महर्षि पतन्जलि योग के, आदि प्रणेता तात,
मोक्ष प्राप्त की राह की, जग को दी सौगात।

आठ चरण में यम नियम, आसन प्राणायाम,
प्रत्याहार औ' धारणा, ध्यान समाधि सुनाम।

शौक तपस्या स्वाध्याय, साधक मन संतोष,
पूर्ण समर्पण ईश में, पाँच नियम परियों।

महर्षि पतंजलि ने दिए, आसन लाखों लाख,
तन मन को सुख दें सदा, दुनिया भर में साख।

चौरासी आसन दिए, हठयोगी को धूप,
तन मन के आरोग्य को, देते सुन्दर रूप।

**ई-7/70 अशोका सोसायटी,
अर्थात् कोलोनी,
भोपाल - 462016 (म.प्र)**

सूचना

अक्षरा के सम्माननीय पाठकों, सदस्यों से विनम्र आग्रह है कि पते के साथ अपना मोबाइल नंबर भी अवश्य भेजें। ताकि पत्रिका आपको पहुँचने में विलंब न हो।

गीतों को मरने न दूँगा

- गिरीश पंकज

जन्म - 1 नवंबर 1957।
शिक्षा - एम.ए.।
रचनाएँ - विभिन्न विधाओं में सौ से अधिक पुस्तकें प्रकाशित।
सम्मान - उ.प्र. हिंदी संस्थान के साहित्यभूषण सम्मान सहित अनेक सम्मान।

मर जाऊँगा भले अभी पर,
गीतों को मरने न दूँगा।।
गीत मरा तो मेरी चेतना,
मन की सभी उमंग मर गई।
कालिख ही छाएगी केवल,
सहसा कोई तरंग मर गई।
काम कोई भी ऐसा मैं तो,
खुद को ही करने न दूँगा।।

गीत रहे तो गतिमय जीवन,
मीत कई बन जाएँगे।
गीत नहीं तो समझो हम सब,
अर्थहीन कहलाएँगे।
नई लहर आना है आए,
खुद को मैं बहने न दूँगा।।

छंद भले कर दिए किनारे,
उनके बिन न काम चले।
हर अंतरमन में भावों के,
पौधे कुछ सुकुमार पले।
सींचूँगा हरियर पौधों को,
इनको मैं सड़ने न दूँगा।।
मर जाऊँगा भले अभी पर,
गीतों को मरने न दूँगा।।

♦ ♦ ♦

वे भी ढलते हैं।
गैरों की क्या कहें,
हमें निज सपने
छलते हैं।।
भरमाते हैं लोग यहाँ,
हमको ठग जाते हैं।
अपनी पीड़ा हम दुनिया को,
कहाँ बताते हैं।
हम विश्वासों की पोटल को,
थामे चलते हैं।।
एक स्वप्न जब टूटा,
फिर हम दूजा गढ़ते हैं।
रुकते हैं पथ पर हताश फिर,
आगे बढ़ते हैं।
कितनी काई है पथ पर,
हर बार फिसलते हैं।।
बहुत दिनों के बाद
हमें यह बात समझ आई।
चलना, गिरना, उठना,
जीवन की है सच्चाई।
सूरज जैसे लोग उगे फिर,
वे भी ढलते हैं।।

♦ ♦ ♦

लिखना नहीं सिखा
जो ऊपर से आया मैंने,
बिल्कुल वही लिखा।

सोच-सोच कर लिखना उसको,
काव्य नहीं कहते।
सच्चे कवि लिखने से पहले,
पीड़ा को सहते।
अंतर मन में आए कविता,
इसको नहीं सिखा।।

प्रसव-वेदना-सी व्याकुलता,
कविता जनती है।
अय्याशी के बीच कभी क्या,
रचना बनती है।
वह क्या जाने मर्म सृजन का,
जिसका हृदय बिका।।

कुछ कहते हम तो लिखते हैं,
कविता नित्य अनेक।
खाते-पीते और मौज में,
खिंचती जाती रेख।
वह पीड़ा में दहता भी है,
हमको नहीं दिखा।।
कितने आए और गए सब,
कुछ पर नहीं गए।
उनको पढ़ते हैं तो लगता,
अब तक अर्थ नए।
जो बासी न पड़े कभी,
वो ही सृजन टिका।

♦ ♦ ♦

नमन पिता!
नमन पिता है, नमन पिता।
मेरे इस जीवन को तुमने,
सदा किया है, चमन पिता।।

नादां था, अज्ञानी था।
करता नित मनमानी था।
कितना मना किया तुमने,
मैं करता शैतानी था।
मेरी हर गलती को तुम तो,
कर लेते थे सहन पिता।।

जेब तुम्हारी खाली थी।
पर अपनी दीवाली थी।
तेरी सूखी लेकिन मेरी,
भरी-भरी-सी थाली थी।
जाने कैसे धन लाते क्या,
रखते खुद को रहन पिता।।

पाला-पोसा बड़ा किया,
पाठ बहुत-सा पढ़ा दिया।
हिम्मत दी हम बच्चों को,
फिर पैरों पर खड़ा किया।
पल-प्रतिपल जीवन को अपने,
करते थे तुम दहन पिता।।

सेक्टर-3, एचआईजी -2/2,
दीनदयाल उपाध्याय नगर,
रायपुर-492010
मो. 9425212720

अगन हिंडोला

- अभिषेक मुखर्जी

'कितने कलंदर आए, सिकंदर आए, आज वे आसमान में तारे बन चमक रहे हैं, धरती को अपनी खूँरेजी से लाल कर ऊपर जा विराजते हैं। वहाँ से देखते हैं कि एक भी पौधा लाल पत्तियाँ लेकर कहाँ उगता है, सबके रंग धानी हरे होते हैं। फिर भी नहीं सँभलते। (पृ. 68)' अगन हिंडोला एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास है। यह केवल शेर शाह की कहानी ही नहीं कहता अपितु उस राजनीतिक रूप से अंधकार युग की गाथा सुनाता है; सामाजिक विपर्यय की कहानी-गाँव, सूबा, राजधानी और सम्पूर्ण देश की कहानी, परिवर्तित होते समय की कहानी-सम्पूर्ण कालखण्ड की कहानी। कुछ काल्पनिक चरित्रों का निर्माण करना और उनके मध्य कथोपकथन एवं रोचक संवाद प्रस्तुत करना आवश्यक है और यहीं लेखिका की कलम ने चमत्कार कर दिखाया है।

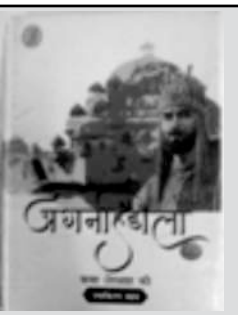

पुस्तक : अगन हिंडोला
लेखक : उषाकिरण खान
प्रकाशक : वाणी प्रकाशन,
मूल्य : 495/-

नवयुवक फरीद और चंदा की प्रेम कहानी, और उस अध्याय का दु:खद अन्त पाठक में मन को छू लेता है। चन्दा के कहे गए ये अंतिम कुछ शब्द 'जैसे मैं जलकर मर रही हूँ, तू भी ताजिंदगी जलता रहेगा और मरेगा (पृ. 30)', ने सचमुच ही आजीवन शेर शाह का पीछा किया। प्रौढ़ावस्था में, मलिक मुहम्मद जायसी के सान्निध्य में 'पद्मावत' की पंक्तियों को सुनते हुए शेर शाह का अंतस हाहाकार कर उठा-'जल ही तो रहा हूँ चाँद कुँअर, जल रहा हूँ (पृ. 188)।' शेरशाह की इस प्रेम कथा से अधिकतर लोग अज्ञात, अपरिचित होंगे।

इतिहास के पाठ्यपुस्तक में पढ़े '**Reforms of Sher Shah Suri**' को लेखिका ने दो काल्पनिक ग्रामीण पात्रों के मध्य हुए कथोपकथन एवं रोचक संवादों द्वारा बहुत ही सुंदर ढंग से दर्शाया है-एक पात्र ग्रामीण हिन्दू पण्डित है तो दूसरा मौलवी-सच में यह प्रसंग अत्यन्त प्रशंसनीय है।

'जुहार, ओ पण्डित जी, जो जी चाहे बुलाएँ लेकिन अपनी पंजी बाँच कर जमीन की सीमा समझावें। शाही फरमान है-ऊसर और उपजाऊ खेत को अलग-अलग खतियान में बाँटने का।'

'बड़ा सूझ-बूझ का काम किया है मियाँ, नदियाँ, जंगल और खेत का प्रकार सब अगर खतियान में दर्ज हो जाएगा तो अलग-अलग तरह की मालगुजारी मुकर्रर करने में आसानी होगी . . .

'फरमान यह भी है, पण्डित जी कि जमीन की हैसियत के हिसाब से मालगुजारी ही नहीं, कीमत भी तै कर दी जाए। सड़क और सराय शाही बाढ़ या तालाब खोदने के लिए किसान से जमीन तयशुदा दर पर खरीद हो; न किसान को नुकसान सहना पड़े न शाही खजाने को।' (पृ. 99)

इस प्रसंग द्वारा लेखिका ने न केवल शेर शाह द्वारा किये गए प्रशासनिक सुधारों का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है अपितु तत्कालीन बिहार के ग्रामीण समाज की वास्तविक छवि और जनसाधारण की आशा-निराशा, भय और आकांक्षा को भी स्पष्ट किया है। ये आम जनता साम्प्रदायिक दंगों और रक्तपात से पूर्णतया विरत रहना चाहती हैं, वे सब शान्ति, प्रगति और सार्विक उन्नयन के पक्ष में हैं। पुनपुन-गंगा के तटवर्ती क्षेत्र के साधारण कृषक प्रसन्नचित्त हैं कि 'फरीद मियाँ शेरशाह बन गया। खेतों की हालत सुधार दिया। रकबा ठीक कर दिया, सिंचाई के लिए गाँव-गाँव में जोहड़ खुदवा दिया, रहट कई गाँवों में लगवा दिए। (पृ. 94)' यह प्रसंग अतयन्त प्रासंगिक भी है -क्या आज भी, हम साधारण नागरिक, धार्मिक कट्टरता, साम्प्रदायिक द्वेष और तनाव चाहते हैं? या शान्ति, समृद्धि, के साथ साथ-शिक्षा स्वास्थ्य और कर्मनियुक्ति के क्षेत्रों में सार्विक उन्नति की कामना करते हैं?

लेखिका ने, पटना नगर को बसाने में शेर शाह के अवदान को भी दर्शाया है-इस पटना को मैं पूरी तरह आबाद देखना चाहता हूँ। आप सबों से गुजारिश है कि इसकी खूबसूरती और जरूरत के साथ बसने दीजिये। किसी तरह की जरूरत हो तो हमें बताइएगा। किले के लिए पत्थर लाया जाएगा उसी से सड़कें, इबादतगाह बना सकते हैं।' (पृ. 90)

शेर शाह की न्यायप्रियता को नगर सेठ के प्रसंग द्वारा बहुत ही अच्छे से दर्शाया गया है। शेरशाह के पुत्र, आदिल खाँ ने नगर सेठ की गृहवधुओं के साथ दुर्व्यवहार किया था। राजपथ पर, नगर सेठ के अभियोग को सुनकर, शेर शाह स्वयं घोड़े से उतरकर उनको आश्वासन देते हुए कहते हैं 'आपकी बहू-बेटी हमारी भी बहू-बेटी है। आपकी इज्जत हमारी इज्जत है। अगर शहजादा ही ऐसा करेगा जो आगे चल कर सुलतान का दर्जा पाने वाला होगा तो दूसरा ओहदेदार क्या करेगा? नहीं मैं यह सब बर्दाश्त नहीं करूँगा। उन्हें बख्शूँगा नहीं। (पृ. 119)'

शेरशाह उदार था, धार्मिक कट्टरता से मुक्त। मंदिर और मस्जिद दोनों के निर्माण हेतु वह यथासाध्य धनराशि प्रदान करता। मुल्लाओं की गतिविधियों से परेशान होकर, अपने मित्र और मार्गदर्शक हसन अली से उसने कहा-'मैं क्या करूँ? इन मुल्लाओं के कारनामे से मेरे दिल के टुकड़े-टुकड़े हो गए हैं, ये मजहब के शेखों में से एक हैं, इनकी बनावटी पाकीज़गी ने दुनियावी

इंसानों को अपने जाल में ले रखा है, मेरा दिल चाहता है के इन्हें चौरस्ते पर फाँसी चढ़ाकर सुकून पाऊँ **(पृ. 103)**।'

इस उपन्यास का सबसे प्रशंसनीय, महत्त्वपूर्ण एवं सुदृढ़ पक्ष है- नैना बंजारन का सशक्त चरित्र चित्रण। आज से लगभग पाँच-छ: सौ साल पहले की एक अपढ़ ग्रामीण बंजारन में वो समझदारी मिलती है जो आज के पढ़े लिखे समाज में भी दुर्लभ है। नैना बंजारन कहती है-'कौन सा पाँच वक्त का नमाज पढ़ता है तू? हमई कौन सत्त नारायन की चौकी बैठाते हैं। तो काहे उनके रंग-ढंग अपनाये जो उन्हें (ईश्वर) मन्दिरों, मस्जिदों, खानकाहों में कैद रखते हैं। **(पृ. 114)**।' ये पंक्तियाँ तो आज के परिवेश में भी अत्यधिक प्रासंगिक है। अपनी जोरदार दलीलों एवं तर्कों द्वारा नैना बंजारन, मुसलमान गुलबानो और हिन्दू लड़के बिल्लू के विवाह को समर्थन करती है।

उस समय जिन हारे हुए राजकुलों की सन्तानों को नाचने वाले या बंजारों के दल को सौंप दिया जाता था, वे सभी इस दल के ही हो जाते। कुछ कन्या सन्तानों को सर्वसमक्ष नचवाने का आदेश रहता तो कुछ शिशु राजपुत्रों को नपुंसक बनाने का हुक्म होता। यह बंजारों, खानाबदोशों का दल भी शायद ऐसे ही बना था; सभी निराश्रय, बेसहारा। हारजीत दोनों धर्मों के राजाओं, सुल्तानों की होती रहती तब खानाबदोशों की जमात की वृद्धि होती। कभी हिन्दू आते तो कभी मुसलमान। वहाँ सदा से लोकतंत्र रहा क्योंकि सारे राग विराग के बाद भी धन संपत्ति विभेद के जो कारण होते हैं उसकी वहाँ कोई गुंजाइश ही नहीं रहती। अत: ऐसे परिवेश में नैना जैसी भावपूर्ण स्त्री का होना कोई आश्चर्य नहीं। आखिर जिस दुनिया में वह जीती है उसका ऊँच-नीच देखती भोगती तो है। नैना लेखिका की कल्पनाशक्ति और संवेदनशील अंतस का निर्माण है, उसे लेखिका की विचारपुत्री कहना उचित होगा। गौर करने वाला विषय यह भी है कि अपने यहाँ तत्कालीन पश्चिमांचल / उत्तरपश्चिमांचल (युद्ध वाले स्थान) के लोग अधिक कट्टर और कर्मकांडी नहीं होते थे। उन्हें संसार की असारता का अधिक भान होता। यही पश्चिमांचल ही इन बंजारों की आदि भूमि रही है ; वे बंजारे सतत् मार-काट, जय-पराजय यही सब देखते रहते। अत: उनके लिये जीवन का उल्लास सर्वोपरि रहता, धर्म-कर्म अपनी जगह चलता रहता, कर्मकांड और कट्टरता रहित। श्री रांगेय राघव जी ने अपने उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' में भी इन खानाबदोश, बंजारों की स्वच्छन्द जीवनशैली को ही दर्शाया है, जिसमें धार्मिक कट्टरता का पूर्णतया अभाव है।

लेखिका ने सदैव ही अपनी रचनाओं में पीड़ित जन साधारण को एक सशक्त वाणी प्रदान की है। अगन हिंडोला में भी इसका व्यतिक्रम नहीं हुआ है-यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी सफलता यह है कि एक तरफ लेखिका राजा-महाराजाओं और शहंशाओं की कथा व्यक्त करती हैं तो दूसरी ओर साधारण जनमनास की कहानी भी कहती हैं। ग्रामीणों की जीवन शैली का वर्णन करती हैं। धरतीपुत्रों के अंतस की व्यथा को व्यक्त करती हैं; बंजारों और आदिवासियों की कथा कहती हैं-ये सभी इन रक्तपिपासुओं से त्रस्त हैं। तभी तो लेखिका बंजारे सरदार से कहलवाती हैं-'हम जो इंसानी समंदर से छिटकी या फिंकी हुई बूँदें हैं बंजारों की वे उनकी दिलजोई के अलावा करते क्या हैं? लाखों हारे हुए इंसानों की तरह कत्ले-आम न हुए यही क्या कम है? हमें कोई हक नहीं है ऊपर वाले से कुछ माँगने का और न ऊपर वाले का कोई फर्क जान पड़ता है, हमारे जानिब! क्या सचमुच कोई है जो अपने न दिखने वाले हाथों से सब कुछ चला रहा है? **(पृ. 116)**'

इस उपन्यास में एक और स्त्री पात्र है-लाड मलका, जिनका चरित्र चित्रण बहुत ही गहराई से किया गया है। सुल्तानों और बादशाहों की कथा में एक अदना रक्कासा के जीवन का इतना मार्मिक वर्णन करना -यह उषाकिरण जी की कलम द्वारा ही संभव है। लाड मलका थी तो एक रक्कासा परन्तु चुनारगढ़ के शासक ताज खाँ ने अपने वृद्धावस्था में उनसे निकाह किया था। ताज खाँ के कत्ल के बाद शेर शाह ने ही उनकी प्राणरक्षा की। लाड मलका की सलाह पर शेर शाह ने उनसे निकाह किया और उनके खजाने एवं उनकी फौज के मालिक बन गए। चुनारगढ़ के खजाने और फौज की सहायता से ही शेर शाह मुगलों से लोहा ले सकें। शेर शाह ने निकाह तो किया पर लाड मलका को कभी अपनाया नहीं। 'वह निकाह पढ़ने तक बीवी थी अभी तक शरीके हयात नहीं बनाया है **(पृ. 54)**।' लाड मलका यद्यपि आजीवन चुनारगढ़ की स्वामिनी बानी रहीं तथापि वह मिलन के लिए सदैव तरसती रहीं। पहले तो विगत यौवन, वृद्ध ताज खाँ से उसका निकाह हुआ और फिर जब उसे शेर शाह के रूप में सक्षम, सबल पुरुष रत्न प्राप्त हुआ, तो उस पुरुष ने ही उसे कभी अपनाया नहीं। फिर भी लाड मलका ने शेर शाह का आजीवन साथ दिया और शेर शाह भी सदैव उनको सम्मान की दृष्टि से देखते परन्तु योद्धा पुरुष सिंह शायद स्त्री मन की आशा-आकांक्षा को समझ नहीं पाया। शेरशाह को लगता 'लाड मलका मियाँ ताज खाँ की बीवी बन कर तमाम चुनारगढ़ की मालकिन थीं, आज भी हैं। उनको हुकूमत का नशा है। वह खुश हैं **(पृ. 54)**।'लाड मलका और फतेह मलका के मध्य हुए कथोपकथन द्वारा लेखिका ने स्त्री मन की गहराई में अवस्थित दुविधा, संशय और कश्मकश को बहुत विचक्षणता से दर्शाया है। बादशाह की बेगम हो या कोई रक्कासा-स्त्री का जीवन एक जैसा ही था। वे स्वाधीन न थी, आजीवन पुरुष मुखापेक्षी ही बनी रहतीं।

लेखिका स्वयं इतिहासविद हैं अत: उपन्यास में वर्णित ऐतिहासिक तथ्यों के साथ किसी प्रकार की कोई छेड़-खानी का प्रश्न ही नहीं उठता है। उन्होंने इस स्वनिर्मित बादशाह को एक सम्पूर्ण मनुष्य के रूप में दर्शाया है, अपनी सभी खूबियों और खामियों सहित। शेर शाह के गुण दोषों का, चालाकियों का, प्रतिहिंसा की भावना का सभी का उल्लेख किया है। वह उदार था। लेकिन रायसीन दुर्ग के राजा पूरणमल के मामले में प्रतिशोध लेने को आमादा हो गया था। वह अजेय कालिंजर दुर्ग को जीतने का हठ कर बैठा और यह हठ प्राणघाती सिद्ध हुआ। जो घटित हुआ था वही इस उपन्यास में वर्णित है, हाँ कल्पना का सहारा अवश्य लिया गया है, जिससे यह कृति अत्यन्त पठनीय है।

गुरु गोविन्द सिंह अपार्टमेंट,
ब्लॉक-बी 50 बी. एल. घोष रोड,
बेलघड़िया, कोलकाता-700057 (पश्चिम बंगाल)
मो. - 8902226567

हिंदी की वाचिक परंपरा का समकालीन परिदृश्य

- अंजनी कुमार झा

आलोचना, महाकाव्य, कथा, कविता, गीत, गजल को श्रेष्ठतर बनाने वाले उद्भ्रांत की रचनात्मकता पर आधारित काव्य 'स्वयंप्रभा, अभिनव पाण्डव, कहानी का सातवाँ दशक, प्रज्ञा वेणु, राधा माधव' आदि का लोकार्पण एक साथ होना जिसमें नामवर सिंह कमलेश्वर, नित्यानंद तिवारी, नरेंद्र कोहली, अशोक वाजपेयी सहित अनेक साहित्यकारों की टिप्पणियों और आलोचनाओं पर संग्रहित पुस्तक 'हिंदी की वाचिक परंपरा का समकालीन परिदृश्य' कई मायनों में पठनीय और ज्ञानवर्द्धक है। नामवर सिंह के विचार में विद्यापति रवीन्द्रनाथ के गीत सदियों से लोगों की स्मृतियों में बसे हैं। गीत मनुष्य की आदिम प्रवृत्ति है जो कभी अप्रासंगिक नहीं हो सकती। जो लोक कंठ में बस जाए, समाज का स्वर हो जाए वही गीत है। इनके गीत लोककंठ में बस गए। निराला से अधिक जीवन के अवसाद किसने देखे, फिर भी पाँच सौ गीत जीवन के उल्लास के 'स्वयंप्रभा' के चित्रण में अधिक कल्पनाशीलता न दिखने पर चिंता जाहिर की। सीख न देते हुए वे बहुत कुछ बोल गए-सीख वाकी दीजिए, जाको सीख सुहाए।

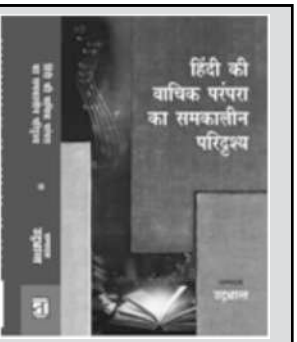

पुस्तक : हिंदी की वाचिक परंपरा का समकालीन परिदृश्य
लेखक : उद्भ्रांत
प्रकाशक : नमन प्रकाशन

अनादिसूक्त को सर्वश्रेष्ठ बताया। इसमें लय, छंद, योग, और साधना की विभिन्न पद्धतियाँ हैं। इनकी तीन पुस्तकें अस्ति, अभिनव पाण्डव एवं राधामाधव के एक साथ लोकार्पित होने को वे ऐतिहासिक घटना बताते हैं। कोई भी किताब अपने दम पर खड़ी होती है। कमलेश्वर ने अपना मत प्रकट करते हुए कहा कि कवि और लेखक हमेशा पूरक होते हैं। उद्भ्रांत की गजल के साथ महत्त्वपूर्ण चीज है कि वह उर्दू रवायत के साथ आती है। उन्होंने कहा, मैं उनकी निरंतर चलती साहित्य यात्रा का गवाह रहा हूँ। समांतर कथा आंदोलन के भी ये हिस्सा बने थे। गीत, गजल, नवगीत, नई कविता और प्रबंध कविता, छंद, मुक्तछंद और छंदमुक्त सबकुछ इसमें है, जो उनकी व्यापक रेंज को बताता है। नित्यानंद तिवारी के विचार में, उन्होंने प्रयत्न किया कि गीता में आधुनिक युग की मुक्ति-कामना को अनेक स्तरों पर प्रेरित और प्रस्तावित किया गया है। उनकी रचनाओं पर गोष्ठियाँ लगभग कुछ-कुछ अंतराल के बाद होती ही रही हैं। उन्हें सुयोग और प्रतिष्ठा मिली हुई है। उनकी कविता में ब्यौरे बहुत हैं, वे दृश्य भी खूब देखते हैं। एक सलाह दी कि जहाँ चूक अक्षम्य हैं, वहाँ न चूकें तो ये रघुवीर सहाय और नागार्जुन हो जाएँगे। उनमें रचनात्मक आवेग बड़ी तीव्र है।

हेमंत जोशी के मत में, 'प्रज्ञावेणु' की हिंदी में एक सांस्कृतिक अनुगूँज है जो मौजूद है और वो रहनी चाहिए। उनके काव्य के जीवन में और अपने व्यक्तिगत जीवन में हर तरह की चुनौती से जूझने का वे साहस रखते हैं। उनकी जिंदादिली ही यह कहलवा लेती है कि- **'वो चेहरा दोस्तों का ले के आए हुए हैं,**
पर बात है कुछ भीतर से घबराए हुए हैं।
दुश्मन तो नहीं थे कभी फिर क्या हुआ इनको,
मैं बचके निकल आया तो मुरझाए हुए हैं।' (1999)

बली सिंह के मंतव्य में, उनकी कविताओं में जहाँ एक ओर जनविरोधी नेता है वहीं दूसरी ओर उनका विरोध करते हुए कुछ नौजवान भी हैं -**'क्रुद्ध युवा साथियों की / एक पंक्ति / कूद कर / सामने आ गई।'**

उनकी कविताओं में एक ओर सभी चीजों का भोग करने वाला पूँजीपति वर्ग है तो दूसरी ओर शोषित श्रमजीवी वर्ग यानी मजदूर और किसान। यह अनहोनी नहीं हैं शीर्षक कविता में -
'मजदूर काले-कलूटे / सड़क पर चल रहे हैं,
उनके कपड़े फटे हैं, / उनकी आँखों में कीचड़ और,
मुँह में धूल की रोटियाँ है।'

उनकी आत्मकथा भी काफी महत्त्वपूर्ण है। उद्भ्रांत नाम हरिवंशराय बच्चन ने इनको दिया है। वे उनके काव्यगुरु रहे हैं। अभय मौर्य के मत में, शंबूक की माँ का जो सर्ग है, वह महत्त्वपूर्ण कविता है। राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने बताया कि नवगीतकार के रूप में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। हम देखते हैं कि जब-जब मानवीय क्षमताओं का व्यावसायीकरण हुआ है, आंतरिक प्रेरणा की बँधी हुई सत्ता काव्य के पारंपरिक ढाँचों की ओर मुड़ी है। राजेंद्र अवस्थी के विचार में, उनकी भूमिकाएँ बहसतलब हैं। इतनी लंबी भूमिका लिखने के लिए कवि भावनावश मजबूर हुआ होगा। इस भूमिका में भी कुछ जरूरी बातें आई हैं जिनसे कवि के चिंतन को समझा जा सकता है। सलाह दी कि हिंदी कहानी को सातवें और छठे दशक से आगे बढ़ाइए।

राहुल देव के दृष्टिकोण में, 'प्रज्ञावेणु' केवल काव्य अनुवाद है। यह क्लिष्ट, संस्कृतनिष्ठ हिंदी है। अमर गोस्वामी ने अपने उद्गार में कहा कि 'प्रज्ञावेणु' में जिस तरह से छंद की उस लय की बात कर रहे हैं, वो लय इसमें नहीं आ पायी। उनकी भूमिका बहुत पठनीय है और कई तरह के सवाल भी पैदा करती है। प्रो. वाचस्पति उपाध्याय की दृष्टि में, पद्मनाभ ने इनको आकृष्ट किया और फिर एक रचना हुई जो हमारे सामने है। ये बहुत अभिनंदनीय है और एक अच्छी कृति आज के आपाधापी के युग में इन्होंने लिखी। ये जो प्रासंगकिता और समकालीनता की बातें हैं, इनका कोई

विशेष अर्थ नहीं है क्योंकि जीवन की परिस्थितियाँ तो वही ही हैं, जो हजारों वर्ष पहले थीं, मनुष्य की प्रकृति वही है, जो हजारों वर्ष पहले थी।

प्रदीप पंत के मत में, पुस्तक 'कहानी का सातवाँ दशक' के बिल्कुल शास्त्रीय आलोचना के रूप में कोई पढ़ने की कोशिश करेगा तो उसे निराशा हाथ लगेगी। रवीन्द्र कालिया के अनुसार, हिंदी में लगभग एक दर्जन कहानियाँ ऐसी हैं जो कि अपने पात्रों को जलील करने के लिए लिखी गई है। अपनी कुंठा को मिटाने के लिए लिखी गई है। उस दौर के माहौल में उन्हें पढ़कर काफी जानकारी मिलती है। देवेंद्र चौबे के मत में, उनकी 'कहानी का सातवाँ दशक' उस जमाने की हलचल दिखाई पड़ेगी। इसमें सातवें दशक की रचनात्मक या वैचारिक उथल-पुथल है और उसमें जो रचनात्मक उत्तेजन है, खासतौर से लेखकों के बीच की जो बहस है, इसमें बार-बार दिखाई। अशोक वाजपेयी को उनकी 'पूजाघर' सीरीज और 20 वीं सदी से संबंधित कविताएँ अच्छी लगीं। इनमें नया बिंब है, भाषा भी सहज है। मधुकर गंगाधर के मत में, कहानी लिखने के लिए इन्होंने एक लंबा समय लिया। किस समय इन्होंने कहानियाँ लिखीं, किस समय कहानियाँ छपीं, क्या वे इतिहास के परिप्रेक्ष्य में सही उतरती हैं? क्योंकि युग-धर्म से अभिभूत कहानियाँ ये हैं। समर्थ रचना सिर चढ़ कर बोलती है। 'शब्द कमल' इसी बात का जीवंत प्रमाण है।

मखमूर सईदी के मुताबिक, हिंदी शायर-उर्दू शायर में पहले जो फासले थे, दूरियाँ थीं-कम हो रही हैं और इन्हें कम करने में हमारे उद्भ्रांत जैसे लोग हैं। जगन्नाथ आजाद के अनुसार, उद्भ्रांत साहब हिंदी के एक मारूफ और मकबूल शायर हैं। निर्मल वर्मा के विचार में, उनका प्रबंध काव्य 'स्वयंप्रभा' पूरा पढ़ा। इसमें रामायण के एक अल्पज्ञात प्रसंग को पहली बार काव्य का विषय बनाया गया है। लीलाधर मंडलोई ने बताया कि उनकी जो मूल पूँजी है वो आख्यान है। उनकी काव्य 'राधामाधव' एक भाव की तरह है। राधा के बहाने कृष्ण की पूरी कथा है। शिवकुमार मिश्र का मानना है कि उनकी कविताएँ अपनी शक्ति की स्वयं गवाही देती हैं। इस अँधेरे समय में न केवल वे निरंतर लिख रहे हैं, वरन् टिके हुए हैं-यह बड़ी बात है। इनकी कविताएँ स्वयं बोलती हैं। विनोद शाही के विचार में, यह 'अभिनव पाण्डव' महाकाव्य को हमें समझना है और इसके नायक युधिष्ठिर को समझना है तो वो उद्भ्रांत हैं। रामप्रकाश कुशवाहा ने कहा कि 'अभिनव पाण्डव जैसा काव्य मनोविज्ञानसम्मत है और इसीलिए इसका एक तरह का पाठक नहीं है। इसमें मनोविकृति को भी शामिल किया गया है।' भगवान सिंह ने कहा कि उनके विचारों में हर जगह एक खास तरह की बुलंदी है और वह कविता में झलकती है। वे ऐसी कविता के रचयिता हैं, जिसने बहुत सारी प्रतिक्रियाएँ पैदा की। खगेंद्र ठाकुर के विचार में, आज का कवि जिस समस्या से टकराता है उसमें कुछ न कुछ है। कर्ण सिंह चौहान के मत में, उनकी विशेषता है कि वो कठिन से कठिन काम कर गुजरते हैं। अलग-अलग काव्यरूपों में जो प्रयोग उन्होंने किए हैं, ऐसे प्रयोग कम ही लोगों ने किए होंगे। पुरुषोत्तम अग्रवाल के दृष्टिकोण में मिथक निश्चित रूप से इतिहास नहीं होते, लेकिन वो मिथ्या भी नहीं होते। मिथक इसीलिए किसी समाज में जीवित रहते हैं और समकालीन बने रहते हैं। डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी के मत में उद्भ्रांत जी बहुत धुन्नी और आशावादी व्यक्ति हैं। रमेश ऋषिकल्प ने ठीक ही कहा कि साहित्य हो, कविता हो, चाहे कहानी हो, हम उसकी सूक्ष्म अनुभूतियों को व्यापक विस्तार दें। 'स्वयंप्रभा' की खोज उन्होंने अपनी घनघोर पीड़ा के क्षणों में की है जिस समय वो मौत से जूझ रहे थे और अनेक तरह के परा अनुभव से गुजर रहे थे। 'स्वयंप्रभा' अपनी लंबी अभिनव भूमिका के लिए चर्चित रहेगी। हरदयाल के अनुसार हर आदमी जब किसी साहित्यिक रचना को पढ़ता है तो कहीं न कहीं अपने संदर्भ के साथ उसे जोड़ता है।

जगदीश चतुर्वेदी के विचार में परंपरा जीवन का अनिवार्य तत्व है लेकिन हमें उसका परिष्कार करते रहना चाहिए जो आज की कविता से संभव होता दिख रहा है। केदार नाथ सिंह के मत में शब्दकमल काव्य संग्रह के लिए मैं साधुवाद कहता हूँ। हिल रही, टूटी हुई आस्थाओं के हमारे समय में यदि कोई अपनी रचना धर्मिता में जिद की हद तक आस्था का अनुसरण करता है तो मुझे क्या किसी भी साहित्यिक को मुग्ध करने के लिए पर्याप्त होनी चाहिए। अरविंद त्रिपाठी के अनुसार उनके साहित्य पर जब भी चर्चा होती तो इन्हें कहानीकार के रूप में अवश्य याद किया जाता। सुरेश शर्मा के मत में असल में एक बड़ा कवि हर दौर में कविता की, समाज की आवश्यकता के अनुसार उसका उद्देश्य तय करता है। अजय तिवारी के विचार में उन्होंने गीतों में अवसाद का बड़ी ईमानदारी से चित्रण किया है। एक ही पंक्ति से पता चल जाएगा-'बहुत क्रूर होता है यह साँसों का डाकिया, खींच दिया है अंतर्देशीय पर हाशिया।' कुबेरदत्त उनमें शिल्प की सादगी भी है और पुरकारी भी। उनके गीतों में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रवह मन्यता भी है। उनके गीतों को गहरी तन्मयता के साथ रागबद्ध करके गाया भी जा सकता है। विभूति नारायण राय अभिन पाण्डव का हिंदी साहित्य में बहुत अच्छे से स्वागत किया गया। मुकेश भारद्वाज हमारे जो मिथक है, इन्होंने उनको जीवित किया है। डॉ. माहेश्वर के अनुसार मेहनत से उत्पन्न कविताएँ लिखी हैं और कई बार अपने स्वयं की बात बहुत चुटीलेपन से कहती है। निर्मला जैन ने कहा कि तक टीबन एक दार्शनिक तत्व को छूने की उन्होंने कोशिश की है। धीरंजन मालवे के मत में 'कहानी का सातवाँ दशक' की भाषा ताकतवर धारदार के साथ काफी निर्गम है। इसके अंदर व्यंग्य, विनोद भी है। 'अस्ति' की कविताओं का फलक अत्यंत व्यापक है और व्यष्टि से शुरू होकर समष्टि तक जाता है। वे आशावाद के जीते-जागते प्रतिरूप हैं। हेमलता महिश्वर ने 'त्रेता-विमर्श और दलित चिंतन' के विषय पर आपत्ति जतायी और कहा कि त्रेता एक मिथक है। मिथक के साथ विमर्श कैसे हो सकता है? डी. एन. सिंह ने कहा कि ये समकालीन कवि तो हैं ही भविष्यधर्मी कवि भी। पंकज शर्मा ने कहा अभिनव पाण्डव का कवि समर्थ और सफल दिखता है।

लेखक ने लंबी भूमिका पंत जी या किसी अन्य की होड़ में नहीं लिखी गई। 'स्वयंप्रभा' में आज के पाठक को प्रदूषण से उत्पन्न खतरों के अतिरिक्त पर्यावरण की शुद्धता पर बल देते हुए कर्म-साधन की महत्ता और नारी-स्वातंत्र्य जैसे समकालीन प्रश्नों से भी जोड़ने की कोशिश की है। लगता है जैसे मैंने मिथकीय रचना करके कोई अपराध कर दिया हो।

108, 48, शिवाजी नगर,
भोपाल -462016 (म.प्र.)
मो.-9425303668

स्मृति शेष कथा अशेष

- राजेन्द्र सिंह गहलौत

बंगाल का प्रथम विभाजन 19 जुलाई 1905 को भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड कर्जन द्वारा किया गया था जो कि दोनों विभाजित भागों की भारतीय जनता के विरोध के कारण सन् 1911 में रद्द कर दिया गया तथा पूर्वी बंगाल एवं पश्चिमी बंगाल पुन: एक हो गये। देश के विभाजन के साथ ही 1947 में बंगाल दूसरी बार विभाजित हो गया तथा इस बार हिन्दू बाहुल्य एवं मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र के आधार पर बंगाल का पूर्वी भाग पाकिस्तान में चला गया तथा पश्चिमी भाग भारत में रहा। लेकिन देश के विभाजन में हिन्दू मुस्लिम एकता मे भी फर्क साम्प्रदायिक तनाव बढ़ा। जबकि देश विभाजन के पूर्व ही बन 1946 में बंगाल मे कलकत्ता एवं नौवाखली में भीषण दंगे हुए तथा देश विभाजन के बाद सन 1950 और सन 1964 में पूर्वी पाकिस्तान में हिन्दू मुस्लिम के मध्य साम्प्रदायिक दंगे हुए। सन 1971 में पूर्वी पाकिस्तान एक बार पुन: विभाजित हो कर बांग्लादेश के नाम से एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया। जिसके इस्लामिक राष्ट्र बनने के बाद हिन्दू बंगालियों को काफी तादाद में विस्थापित होना पड़ा जिसका असर हिन्दू मुस्लिम अंतर्संबंधों में भी पड़ा। दूसरी ओर बंगाली शरणार्थियों का भी लगातार भारत आना जारी रहा जिनके पुनर्वास की समस्याओं से भी देश को जूझना पड़ा तथा देश के पश्चिमी बंगाल के साथ ही उत्तर प्रदेश, असम, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ आदि प्रांतों में विस्थापित बंगालियों को बसाया गया। बंग भंग के इतिहास तथा बंगभंग से विस्थापित बंगालियों की दशा, हिन्दू मुस्लिम बंगालियों के मध्य हुए दंगे उनके मन में व्याप्त परस्पर वैमनस्य सबको रेखांकित करते हुए हिन्दी भाषा में कम ही उपन्यास दृष्टिगोचर होते हैं जबकि बांग्ला भाषा में संभवत: इस विषय पर काफी लिखा गया है। यद्यपि 6 दिसंबर 1992 को बाबरी मस्जिद तोड़े जाने पर बांग्लादेश के मुसलमानों ने बांग्लादेश के हिन्दू बंगालियों पर आक्रामक प्रतिक्रया की उनके सैकड़ों धर्म स्थल तोड़े गए जिसे केन्द्र में रख कर बांग्लादेश की प्रतिष्ठित साहित्यकार तसलीमा नसरीन ने बहुचर्चित कृति 'लज्जा' लिखी। लेकिन उनकी वह कृति भारत में मस्जिद तोड़े जाने पर बांग्ला देश में उसकी प्रतिक्रिया में वहाँ हुए हिंदू बंगालियों पर हिंसक घटनाओं को रेखांकित करती है वह प्रतिक्रियात्मक घटना बंग-भंग से नहीं जुड़ पाती है। ऐसी स्थिति में प्रतिभू बनर्जी का आलोच्य उपन्यास मेरी जानकारी में संभवत: एक मात्र हिन्दी भाषा में लिखा हुआ उपन्यास है जो बंग-भंग के इतिहास तत्कालीन परिस्थितियों तथा विस्थापित बंगालियों की पूरी व्यथा कथा को रेखांकित करता है। उपन्यास के कथानक का प्रारंभ अतीत के बंगाली परिवार के एक दृश्य से होता है, यह परिवार जतिन बाबू का है। उपन्यास के कथानक में 'वन्देमातरम' गीत के प्रभावशाली स्वर सुनाई पड़ते हैं तो ह्रदय विदारक 1770 के भीषण अकाल की स्मृतियाँ भी मुखर होती है साथ ही द्वितीय महायुद्ध की भी बातें की जाती है यह सब जतिन के बाबा अघोरनाथ के स्वर में प्रस्तुत होता है ।

पुस्तक : स्मृति शेष कथा अशेष
लेखक : प्रतिभू बनर्जी
प्रकाशक : डी पेनामना प्रेस
मूल्य : 525/-

तत्कालीन बंगालियों के रोजी रोटी की समस्या से जूझते हुए वर्मा प्रवास, जात्रा नाटक का आयोजन आदि के दृश्य जतिन के काका लोकनाथ दत्त के माध्यम से प्रस्तुत होता है। उपन्यास के पात्र रहमान के माध्यम से हिन्दू मुस्लिम एकता के दृश्य जहाँ दिखलाई पड़ते हैं, वहीं समय बदलने के बाद मुस्लिम बाहुल्य क्षेत्र में मुस्लिमों द्वारा ठाकुर दा को अपमानित करने के दृश्य से हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य, साम्प्रदायिक दंगों के दृश्य भी प्रस्तुत होते हैं। गाँधी जी के असहयोग आन्दोलन, युवा क्रांतिकारी खुदीराम बोस की फाँसी, चौरी चौरा कांड, ब्रिटिश सरकार द्वारा जारी 'जरीब कानून' तथा 1924 का 'नजरबंदी कानून' आदि को उपन्यास के कथानक में समाहित किया गया है। अघोरनाथ पर असहयोग आंदोलन में सक्रिय होने का आरोप लगा कर भैरवनगर में नजरबंद किया गया तथा नजरबंदी से वापस लौटने के बाद उन्होंने अपने ग्राम में बहुत सारे परिवर्तनों को देखा। जबकि अघोरनाथ के पुत्र जतिन बाबू की स्मृतियों से तत्कालीन बंगाल की बहुत सारी स्थितियाँ उपन्यास में उभर कर सामने आती है। हिन्दू मुस्लिम

दंगे, युवाओं का स्वाधीनता संग्राम में शामिल होना, अंतर्जातीय विवाह, हिन्दू विधवा विवाह कानून आदि। बंगाल के गरम खून ने सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व को स्वीकारा। जबकि मुस्लिम लीग ने हिंदू मुस्लिम के बीच मतभेदों की खाई को और चौड़ा किया तथा इसके साथ ही पाकिस्तान निर्माण की माँग ने जोर पकड़ा। अंतत: 1947 में देश का विभाजन हुआ। अघोरनाथ एवं जतिन के परिवार को बंगाल से विस्थापित होना पड़ा तथा कोलकाता बाद में वर्धमान जिले के पल्ला कैंप में शरण मिली फिर वहाँ से भारत सरकार के पुर्नवास मंत्रालय द्वारा निर्देशित करने पर उन्हें मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ के माना कैम्प में शरण लेना पड़ा। वहीं जतिन को हेल्थ इंस्पेक्टर की नौकरी मिली तथा रिटायरमेन्ट के बाद पूर्वी मध्यप्रदेश के एक शहर को उन्होंने स्थाई निवास बनाया।

देश के विभाजन में पंजाब एवं सिंध के विस्थापितों की भीषण दुर्दशा के चित्र बहुत सारी कृतियों में चित्रित है लेकिन देश विभाजन में बंगाल के विभाजन एवं विस्थापितों की दयनीय दशा का चित्रण कम ही हिन्दी भाषा की कृतियों में चित्रित किया गया। इसके पीछे एक प्रमुख कारण यह भी है कि बाँग्ला साहित्यकारों ने सिर्फ अपनी मातृभाषा बँग्ला में ही साहित्य सृजन किया। इस दृष्टिकोण से भी आलोच्य उपन्यास हिन्दी भाषा में लिखे जाने की वजह से हिन्दी भाषी पाठकों हेतु महत्त्वपूर्ण बन जाता है। यद्यपि उपन्यास का कथानक सिर्फ 1947 के देश विभाजन की पूर्व की स्थितियों एवं देश विभाजन के साथ ही बंगाल के विभाजन बंगालियों के विस्थापन तथा पुर्नवास की स्थितियों को ही अपने कथानक में समेटता है लेकिन उपन्यासकार ने उपन्यास की भूमिका में सन 1905 में पहली बार बंग-भंग के इतिहास से लेकर 1947 में बंगाल विभाजन एवं बाँग्ला देश के निर्माण तथा वहाँ से विस्थापित हिंदू बंगालियों पर भी विस्तार से चर्चा की है।

उपन्यास में एक लंबे कालखंड की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थितियों को सहेज कर यथासंभव उन्हें कथानक में शामिल किया गया है जबकि विस्तृत चर्चा पात्रों के कथनों एवं संस्मरणों के माध्यम से भी प्रस्तुत की गई है। यह सब उपन्यासकार के गहन अध्ययन से ही संभव हो सका है जिसके हेतु वे बधाई के पात्र हैं। नि:संदेह वर्तमान साहित्य में उनका यह उपन्यास अपनी विषयवस्तु के साथ ही उसकी रोचक प्रस्तुति की वजह से भी हर वर्ग के पाठकों द्वारा सराहा जाएगा।

सुभद्रा कुटी
बस स्टैंड के सामने,
बुढ़ार, जिला शहडोल- 484110 (म. प्र.)
मो.- 9329562110

रचनाकारों से अनुरोध

- ***मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।***
- ***रचना फुल स्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित मूल प्रति में भेजें।***
- ***रचनाकार/लेखक अपना पूरा परिचय, पता, पिनकोड, फोन नंबर एवं फोटो साथ भेजें।***
- ***डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचना वापस भेजी जा सकती है। अत: लेखकों से निवेदन है कि लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।***
- ***'अक्षरा' में प्रकाशन हेतु रचना भेजने के बाद उसे अन्यत्र प्रकाशन हेतु न भेजें। यदि अन्यत्र प्रकाशित हो रही हो तो कार्यालय को अवश्य सूचित करें।***
- ***आप अपनी रचनाएँ* myakshara18@gmail.com *पर ई-मेल द्वारा भी भेज सकते हैं।***

ठेला मेरा खटारा

- अभिषेक जैन

इस पुस्तक का आवरण देखते ही चेहरे पर मुस्कुराहट और जिज्ञासा जाग उठती है। 'ठेला मेरा खटारा' शीर्षक और उसके नीचे एक ट्रक चलाते प्रसन्नचित मुद्रा में एक सरदार जी का चित्र पाठक के मन में सवाल पिरोने लगता है कि आखिर ठेले यानी ट्रक और उसके अगले पहिये के नीचे दबे तेज नारायण और पिछले हिस्से के उखड़े हुए पहिये में सम्बंध क्या है? पृष्ठ पलटने पर पाया कि चित्र से अधिक पाठक के चित्त को प्रसन्न कर देने वाली हास्य व्यंग्य की कहानियों का यह संग्रह है।

पुस्तक : ठेला मेरा खटारा
लेखक : तेज नारायण

प्रथम कहानी 'पाठशाला का पहला दिन' मेरी पसंदीदा कहानी रही। क्रैक जी नामक व्यक्तित्व का उल्लेख कई कहानियों में था, उनसे जैसे एक परिचय सा हो गया है। क्रैक जी से मिलने की आकांक्षा जागृत हो जाती है। जब 'क्रैक गाइड बने' और 'जब क्रैक बॉक्सिंग लड़े' नामक कहानियाँ काफी गहन अभिप्राय वाली लगीं। वैसे 'क्रैक ने जब दंगों में भाग लिया' और प्रकाशक के बारे में 'पिरकासक दे अनाथालया विच्च' कहानियाँ अन्यत्र कहीं भी पढ़ने को नहीं मिलती हैं। कहानियों में लेखक की दूरगामी कल्पनाएँ भी गजब की हैं। कहानी 'जीवन का उद्देश्य' में उसने कल्पना की है कि यदि वह इंजीनियर बना तो हावड़ा-पुल के नीचे एक ट्यूब-रोड बनायेगा और देखिये जो निर्माण उस समय असंभव माना जाता रहा होगा। वह आज मोदी सरकार के राज्य में हावड़ा-ब्रिज की सहायतार्थ हुगली नदी के नीचे से एक ट्यूब-रोड भी बन गया है। स्मरण रहे कि ये सभी कहानियाँ वर्ष 1960-85 के दौरान लिखी गई थी जबकि उस समय ऐसी कल्पना करने की भी किसी ने जरूरत नहीं की होगी। इसी तरह कहानी 'जब क्रैक ने दंगा किया' में भी पाठकों को झटका देते हुए कहानी की दिशा अचानक उलट-पुलट कर पाठकों की कल्पनाओं को झटका दे देती है। पृष्ठ-51 में लेखक ने लिखा है कि 'जब भीड़ में ऐसा डबल-घोष किया' कि-इस 'डबल-घोष' पर पर्याय शब्दावली का उपयोग आज भाजपा सरकार के नेता 'डबल-इंजन' की सरकार बनाकर कर रहे प्रतीत होते हैं। आजकल 'डबल-इंजन' की सरकार शब्दावली के बिना कोई भी भाजापाई उद्घोष पूरा नहीं होता है।

इसी तरह कहानी 'जब क्रैक बॉक्सिंग लड़े' कथा में भी लेखक ने अपनी दूरगामी कल्पना की बानगी पेश की। जब वह लिखना है कि इस तरह मार-धाड़ आपसी लोगों में चल पड़ी जिसमें ये दोनों मुल्कों को दो अलग-अलग लड़ाकों पर चलाते हुए तीसरे लड़ाके को उछलते हुए एक टाँग से प्रहार कर रहे थे। लेखक की ऐसी मा-धाड़ की कल्पना उस समय असंभव थी। किन्तु आज कम्प्यूटर-एनिमेशन तकनीक से वीडियो तथा फिल्मों में ऐसी मार-धाड़ खूब 'देखते हैं। ऐसी मार-धाड़ की भविष्यवाणी लेखक ने अपनी इस कहानी में वर्ष 1960-65 के दौरान ही कर डाली थी, जबकि उस समय भारत में न तो कम्प्यूटर होता था और ऐनिमेशन का तो प्रश्न भी नहीं एठता था। अब पूरी पुस्तक के बारे में मेरे विचार प्रस्तुत करूँ तो यही कहूँगा कि मैंने कुछ ऐसी लघु कथा पढ़ीं जो आधुनिक जीवनशैली और मुद्दों के बारे में व्यंग्यात्मक तरीके से बात करती हैं। कहानियों प्रयुक्त कठबोली हिंदी शब्द इन्हें बहुत प्रासंगिक बनाते हैं। किताब की हर कहानी अपने आप में मानसिक रूप से गुदगुदाने वाली है और अंत में एक गहन संदेश भी देती है। लेखन की शैली ऐसी है कि व्यक्ति को अपनी बुद्धि में गहराई से उतरना पड़ता है और संदर्भ को समझना पड़ता है। लेकिन एक बार संदर्भ स्पष्ट हो जाने पर पाठक लेखक के विचारों की गहराई से मंत्रमुगध हो जाता है।

पुस्तक की छपाई उत्तम कागज पर है। हर कथा को साथ प्रकाशक ने रेखाचित्रों के साथ सुसज्जित किया है। किताब के शीर्षक 'ठेला मेरा खटारा' के खटारापन में कोई कसर न छूट जाए, इसके लिए प्रकाशक ने टाइपिंग में भरपूर योगदान दिया ऐसा प्रतीत होता है क्योंकि कहानियाँ पढ़ने में खाने में कंकड़ का मजा देने हेतु टाइपिंग में भी खटारापन को अपनाया है।

तीन श्रेष्ठ कवियों का हिंदी पत्रकारिता में अवदान

- मनीषचन्द्र शुक्ल

वरेण्य पत्रकार-संपादक पंडित अच्युतानंद मिश्र की नई पुस्तक 'तीन श्रेष्ठ कवियों का हिंदी पत्रकारिता में अवदान-अज्ञेय, रघुवीर सहाय एवं धर्मवीर भारती' राष्ट्रीय पुस्तक न्यास से प्रकाशित हुई है। यह पुस्तक श्री अच्युतानंद मिश्र की कई वर्षों की सतत् साधना का फल है। मिश्र जी पत्रकारीय शुचिता के धरातल को अक्षत और पुष्ट करने के लिए सदैव सक्रिय रहे हैं। इस पुस्तक में साहित्य, पत्रकारिता और भाषा पर जिस संवेदनशीलता, गहन-अध्ययन और अंतर्दृष्टि से विवेचन-विश्लेषण किया गया है, वह अपने आप में अनुवीक्षणीय है। तीनों कवि मूलत: साहित्यकार थे लेकिन पत्रकारिता में आने से पूर्व साहित्य में सक्रिय और मान्य हो चुके थे। अज्ञेय ने 'दिनमान' एवं 'प्रतीक' के माध्यम से, रघुवीर सहाय 'नवजीवन', और 'दिनमान' के माध्यम से तथा धर्मवीर भारती ने 'धर्मयुग' और 'संगम' के माध्यम से एक बृहद पाठक समुदाय को प्रशिक्षित किया। इन पत्रिकाओं में आलोचनात्मक विवेक के साथ साहित्य और राजनीति का मूल्यांकन हुआ करता था। ये अपने समय की बहुत सरोकार वाली पत्रिकाएँ थीं। पुस्तक में 'दिनमान और अज्ञेय' अध्याय में उल्लिखित अज्ञेय द्वारा इंदिरा गाँधी और उनकी सरकार की 'हिन्दी की राह के रोड़े' शीर्षक से तीखी आलोचना हो या 'सूखे की रपट' अध्याय के अंतर्गत फणीश्वरनाथ रेणु का 1966 में बिहार सूखे के मार्मिक विवरण का सचित्र वर्णन हो, जिसका अनुसरण करते हुए देश के अनेक समाचार-पत्रों ने सूखे की विभीषिका को प्रमुखता से छापा था। इसीलिए 'दिनमान' हिन्दी का ही नहीं, भारत का विशिष्ट साप्ताहिक समाचार-पत्र बन गया। 'दिनमान' का ध्येय वाक्य था-'राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान' यहाँ 'आह्वान।' शब्द 'दिनमान' के चरित्र की सही व्याख्या प्रस्तुत करता है। 'दिनमान' अपने स्तम्भों एवं स्तम्भों में छपे लेखों के माध्यम से संगत भाषा का आह्वान अपने पाठकों, लेखकों, पत्रकारों एवं तमाम बुद्धिजीवियों से करता हुआ दिखाई देता है। 'दिनमान' के इसी कार्य को आगे रघुवीर सहाय ने बढ़ाया। पुस्तक की प्रस्तावना में अच्युतानंद मिश्र लिखते हैं- 'स्वाधीन भारत के पहले और दूसरे दशक के हिंदी साहित्यकारों-पत्रकारों को तरासने का काम इन अग्रणी संपादकों ने किया था। उसमें सबसे पहले नाम आता है सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'। जिन्होंने 'तारसप्तक' और 'प्रतीक' के माध्यम से उस दौर के कवियों, लेखकों और पत्रकारों को पहचान दी थी। उनके सहयोगी के रूप में रघुवीर सहाय की प्रतिभा सामने आई थी। रघुवीर सहाय की पत्रकारिता 1947 में लखनऊ के दैनिक 'नवजीवन' के माध्यम से और धर्मवीर भारती की पत्रकारिता 1948 में प्रयाग में 'संगम' के माध्यम से शुरू हो चुकी थी। स्वाधीन भारत के पहले दशक तक स्वाधीनता संग्राम के कई अग्रणी संपादक सेनानी जीवित थे। पंडित बाबूराव विष्णु पराड़कर, पंडित अंबिकाप्रसाद वाजपेयी, पंडित माखनलाल चतुर्वेदी जैसे तेजस्वी संपादकों, जिन्होंने हिन्दी पत्रकारिता को नए शब्द, नई भाषा, नए तेवर और नए संस्कार दिए थे, से उनका आशीर्वाद इन्हें प्राप्त था। इन्हीं तीन साहित्यकार-संपादकों की कहानी इस पुस्तक में वर्णित है।

पुस्तक : तीन श्रेष्ठ कवियों का हिंदी पत्रकारिता में अवदान
लेखक : अच्युतानंद मिश्र
प्रकाशक : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास

ये तीनों कवि उस समय के संपादक हैं, जब साहित्यकार की भूमिका लोकनायक की होती थी। उस समय के साहित्यकार अपने लेखन के माध्यम से समाज के हर पक्ष पर अपनी बात रखते थे। उनकी बात बहुत चाव से लोगों के द्वारा पढ़ी या सुनी जाती थी। तीनों कवियों ने साहित्य के साथ-साथ पत्रकारिता को भी जीवंत बनाये रखा, साथ ही पत्रकारिता को जनपक्षीय भी। पुस्तक में कृष्णबिहारी मिश्र लिखते हैं कि-'विज्ञप्त तथ्य है कि पत्रकारिता से जब साहित्यकार की भूमिका जुड़ती है, तो पत्रकारिता को विधायक आयाम से सम्पन्न करती है।' यह पुस्तक इन्हीं तीन विशिष्ट कवियों की पत्रकारिता विषयक कृति

भूमिका को रेखांकित करती है। हालाँकि साहित्य जगत में इनके इस पत्रकारीय अवदान को देखने का कोई सायास प्रयास नहीं किया गया। यह दुर्भाग्यपूर्ण है। ये कवि हिन्दी साहित्य और हिन्दी पत्रकारिता दोनों में समादृत रहे हैं। इन्हें साहित्य में भरपूर सम्मान भी मिला। पुस्तक में कृष्णबिहारी मिश्र लिखते हैं- 'कैसी विडंबना है इतिहास की कि इस मार्मिक और मूल्यवान बिन्दु के प्रति हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास लेखक प्राय: उदासीन रहे हैं। हिन्दी पत्रकारिता के कर्म-धन्य संपादक पंडित अच्युतानंद मिश्र की विचक्षणता ने इतिहास के इस अनवधानता जनित बिन्दु को लक्ष्य किया और इस मार्मिक बिन्दु को विशेष गुरुता के साथ रेखांकित किया है।'

यह पुस्तक छ: अध्याय में विभक्त है। संवाद और साक्षात्कार पर आधारित अध्याय में वरिष्ठ पत्रकार जवाहरलाल कौल से अच्युतानंद मिश्र की विस्तृत बातचीत है। यह साक्षात्कार स्वाधीन भारत की हिन्दी पत्रकारिता की दिशा तथा 'दिनमान' और 'धर्मयुग' में अज्ञेय, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती की संपादकीय विवेक को पुष्ट करता है। यह पुस्तक अज्ञेय, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती की पत्रकारीय दृष्टि, उनकी उपलब्धियों को समझने तथा पत्रकारीय अवदान को नई पीढ़ी तक संप्रेषित करने का सार्थक प्रयास है। तीनों संपादकों में वैचारिक अंतर्विरोध के बावजूद अनेक समानताएँ भी थीं। ये तीनों कवि पेशे से पत्रकार नहीं थे लेकिन अपने लेखन से पत्रकारीय मूल्यों के एक सजग प्रहरी के रूप में पत्रकारिता को एक नई दिशा दी तथा साहित्यिक विषयों को सामान्य पढ़े-लिखे व्यक्ति तक पहुँचाने का काम पत्रकारिता के माध्यम से करते रहे। इनका मानना है कि यदि पाठकों की चेतना को समृद्ध करना है या उनकी चेतना में सम्पन्नता लाना है, तो पत्रकारिता में साहित्य का होना जरूरी है। इन तीनों कवियों ने अपनी पत्रिका 'दिनमान', 'प्रतीक' और 'धर्मयुग' के माध्यम से पत्रकारिता में साहित्य की महत्ता को प्रतिपादित किया। पुस्तक में अच्युतानंद मिश्र लिखते हैं कि-'हिन्दी पत्रकारिता की भाषा गढ़ने में तीनों ने अपनी शैली में योगदान दिया था। तीनों ने हिन्दी के साथ भारतीय साहित्य और भाषाओं को प्रोत्साहित किया था। वे साहसी और प्रयोगधर्मी थे। भारतीय मनुष्य और मानवीयता उनके साहित्य और पत्रकारिता दोनों के केन्द्र में थी।' अनेक वैचारिक अंतर्विरोध के बावजूद भारतीय मनुष्य और मानवीयता इनके केन्द्र में थी। तीनों के आपसी संबंध बहुत प्रगाढ़ थे। रिश्तों में निकटता थी। यह पुस्तक इसका प्रमाण है। 'एक सहकर्मी को श्रद्धांजलि' लेख जो 'दिनमान' के अप्रैल 1986 अंक में छपा था। इस लेख को पढ़कर अज्ञेय और रघुवीर सहाय के रिश्तों की आत्मीयता को बहुत बारीकी से समझा जा सकता है। इसी तरह अज्ञेय भारती परिवार के कितने निकट थे, अज्ञेय के निधन के बाद 'धर्मयुग' के अप्रैल 1987 अंक में 'अज्ञेय और धर्मवीर भारती' शीर्षक से प्रकाशित लेख को पढ़कर समझा जा सकता है। इस पुस्तक में 'अज्ञेय और धर्मवीर भारती' लेख का एक प्रसंग उदधृत है- 'अगस्त 1959 में कोलकाता के किसी साहित्यिक समारोह में अज्ञेय आए थे। सारे शहर में उनकी चर्चा थी। एक दिन दोपहर को मेरे छोटे से एक कमरे के घर के द्वारा की कुंडी खड़की और मैंने चकित होकर देखा-अरे, अज्ञेय जी! सादर भीतर बुलाया, उन्होंने साधारण कुशल-क्षेम पूछी। एक गिलास ठंडा पानी पिया और बोले, 'बहुत अधिक आदर-सत्कार, मान-सम्मान से घबरा गया हूँ। मखमली गुदगुदे गद्दों पर दो दिन से नींद भी ठीक से नहीं आई। सोना चाहता हूँ, मेरे कमरे में एक खूँटी लगी थी। जो झोला बगल में लटकाए आए थे उसे उस पर टाँगा और बोले, 'आशा करता हूँ कि आपको असुविधा नहीं होगी'। मैं बोली, असुविधा, मेरा तो अपने ऊपर इतराने का मन हो रहा है'। तो हल्का सा मुस्कुराए और एक साधारण सी दरी बिछे हुए मेरे तख्त पर ऐसे सोए जैसे मानो कहीं से लंबी कैद से छूटकर निश्चिन्त मन से कोई खुली हवा में साँस ले।' इस पुस्तक में ऐसे अनेक प्रसंग हैं, जो मानवीय मूल्यों के प्रति भारतीय मानस को सचेत करने का सार्थक प्रयास है। यह पुस्तक बुद्धिजीवियों, लेखकों, पत्रकारों और अनुसंधित्सुओं के लिए एक उपयोगी पुस्तक सिद्ध होगी। इतिहास में जब भी अज्ञेय, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती के पत्रकारीय अवदान को उल्लिखित किया जाएगा, यह पुस्तक सदैव रेखांकित की जाएगी।

एच-701, नीलपदम-1, वैशाली सेक्टर-5,
गाजियाबाद- 201012 (उ.प्र.)
मो.-9873889159

कर्म से तपोवन तक

– जया केतकी

आधी दुनिया का प्रतिनिधित्व करने वाली नारी पर लिखी गई कथा है 'कर्म से तपोवन तक' उपन्यास जो संतोष जी की समृद्ध कलम से नि:सृत हुआ है। यूँ तो माधवी–गालव पर अनेक कथाएँ लिखी गईं और नाटक भी बनाए गए परंतु फिर भी उसके शोषण का बिंदु जस का तस रहा। ठीक उसी तरह जिस तरह द्रौपदी और अर्जुन की कथा पांचाली के रूप में विख्यात हुई।

क्या एक खूबसूरत विदुषी नारी के जीवन का सर्वाधिक हिस्सा दूसरों को संतुष्ट करने के लिए ही है। और वह भी पुरुष– कभी वह पिता होता है, कभी पति तो कभी पुत्र। संरक्षक के तौर पर खड़े हुए पुरुष की दृष्टि भी नारी को पाने की ही रही है।

पुस्तक : कर्म से तपोवन तक
लेखक : संतोष श्रीवास्तव
प्रकाशक : किताबवाले प्रकाशन

माधवी के भीतर की प्रेम की छटपटाहट को कोई भी पुरुष महसूस क्यों नहीं कर पाया। यदि गालव का उससे प्रेम था तो वह कैसे अपनी प्रेमिका को दूसरों को सौंप सका। माधवी को गालव से दूर रहने, बिछड़ने का डर हमेशा ही बना रहा। पृष्ठ 41 पर उसकी मनोदशा का वर्णन किया है संतोष जी ने। माधवी का मन भी दुविधा में था अगर गालव से पुन: वियोग होता तो किंतु इससे भी ऊपर माधवी का विचार था, हो वियोग हो ही जाए, कम से कम गालव तो अपने उद्देश्य में सफल होगा। वह भी तो गुरु दक्षिणा के लिए दर–दर भटक रहा है। तभी गलियारे की रेलिंग पर दो नीले पर वाले पक्षी आकर बैठ गए। गालव ने माधवी का हाथ कस कर पकड़ लिया। उस एक पल में कितना कुछ कह दिया एक दूसरे से। घड़ी भर बाद सेवक ने आकर सूचना दी, मुनिवर महाराज सभागृह में आप दोनों को बुला रहे हैं। तो क्या गालव को भी माधवी से बिछड़ने का डर बना हुआ था?

उपन्यास की शक्ल में लिखी गई माधवी आत्मीय गालव की कथा इतिहास में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। यूँ तो इस कथा को अनेक बार लिखा गया, अनेक व्यक्तियों द्वारा परंतु फिर भी स्वतंत्र लेखन में संलग्न संतोष श्रीवास्तव की इस पुस्तक का आवरण ही सहसा ध्यान आकर्षित कर लेता है।

कथा के पहले समर्पण में वे लिखती हैं–लिखते हुए माधवी की जिन चुप्पियों ने मुझे मथा उन्हें तोड़ने के दुस्साहस को समर्पित।
यह किताब माधवी की सोच द्रुत गति से हर कोण को तर्क में लिए थी। चाहे पिताश्री ययाति हों, चाहे विश्वामित्र हों, चाहे गालव, महाराज हर्यश्व या दिवोदास। इस चक्रव्यूह में फँसी है तो माधवी। माधवी पिताश्री ययाति की संपत्ति, माधवी गालव के दान ग्रहण करने वाले पात्र में डाली गई दान की वस्तु, माधवी गालव द्वारा मंडी में विक्रय की जा रही वस्तु। माधवी हर्यश्व और दिवोदास की क्रीतदासी। पितृसत्ता की आँच में मोम सी पिघलती माधवी अपना अस्तित्व खो सकती थी किंतु .....
उसने स्वयंवर मंडप के द्वार से बाहर तपोवन की ओर माला उछाल दी। फिर जहाँ खड़ी थी वहीं से मुड़ कर कहा–'मेरे जीवन में आए जिन पुरुषों से मैं ठगी गई हूँ। अंदर तक टूट गई हूँ उस टूटन, उन दरारों को मैं स्वर्ण से जोड़कर और भी अधिक मूल्यवान बना लूँगी। मेरा अतीत मुझे बिखरने नहीं देगा मैं जानती हूँ। जीवन कभी भी इतना नहीं तोड़ता कि पुन: खड़े न हो सकें। स्वयं को समेट न सकें। जो भी हुआ मैंने उसका सामना किया और पूरे हौसले से उस परिस्थिति से निकली। जीवन इतना बुरा भी नहीं। मैं जानती हूँ जीवन हर बार नया रूप चाहता है और इस नए रूप को पाने के लिए चुनौतियों का सामना तो करना ही पड़ता है।'

कहीं न कहीं इन पंक्तियों के माध्यम से लेखिका उन स्त्रियों को भी साहस देती हैं जो छली गईं, प्रताड़ित की गईं, या जिन्हें अपनों ने ही पथभ्रष्ट किया।

किताब वाले प्रशासन से आई इस 140 पृष्ठीय उपन्यास में 12 अध्याय में संतोष श्रीवास्तव जी ने इस कथा को लिखा है। उनका व्याख्या करने का तरीका कितना आत्मीय है इसका अंदाज आपको पहले अध्याय की पहली लाइन पढ़कर ही हो जाएगा– सघन वन में संध्या दोपहर ढलते ही प्रतीत होने लगती है।

कहानी से पाठक परिचित हैं ऐसा मैं मानती हूँ परंतु महत्त्वपूर्ण हैं परिदृश्य जो गढ़े गए हैं। चलचित्र की भाँति गुजरते इन दृश्यों से आप कितना सहमत होते हैं यह और बात है।
लेखिका पृष्ठ 47 पर लिखती हैं–दिवोदास सचमुच माधवी का दीवाना

हो गया था। भोजन करते हुए स्वयं पहला ग्रास माधवी को खिलाया।

'जादूगरनी हो माधवी, राजमहलों के कायदे कानून से विज्ञ तो तुम दिखाई ही देती हो किंतु तुमने जो सहवास सुख मुझे दिया है, अन्य रानियों से प्राप्त नहीं हुआ।'
माधवी ने आँखें झुका लीं। सहवास की पीड़ा अब तक उसके बदन में व्याप्त थी। कदाचित इतनी पीड़ा का एहसास नहीं होता यदि दिवोदास उसके साथ पशुवत व्यवहार न करता। अपने ऐसे व्यवहार का दिवोदास को भी खेद था।

'माधवी तुम सोच रही होगी कि मैं कितना असंयमी और कठोर हूँ। क्या करूँ, पुत्र सुख से वंचित हृदय की पीड़ा से ऐसा हो गया हूँ। तुम्हारे साथ रहकर सुधर जाऊँगा।'
इस दृश्य को पढ़ने का साहस करना आसान नहीं और लिखना तो और भी कठिन था।

पेज 59 पर जो दृश्य खींचा है लेखिका ने वह हमें भी भ्रमण पर ले जाता है-'सूरज का रथ तीव्र गति से बढ़ रहा है। हम यात्रा आरंभ करते हैं। मार्ग में नदी में स्नान करते हुए कंदमूल फल भी खाते चलेंगे। अब इस स्थान पर अधिक रुकना व्यर्थ है। समय की बर्बादी है।' कहते हुए गालव चलने को तत्पर हुआ। माधवी के लिए तो और कोई दूसरा विकल्प न था। सिवा गालव के संग हो लेने के। और अब कोई दूसरा विकल्प उसे चाहिये भी नहीं।

गालव के साथ चलते हुए उसे ऐसा लगता था जैसे अंधकार में वह जुगनू के पीछे चल रही है। जैसे गालव वह क्षितिज है जिसमें धरती बन वह समाई है। धरती दिखती नहीं, दिखता तो बस क्षितिज ही है। यही पूर्णता तो प्रेम की पराकाष्ठा है।

अरण्य में बनी कुटिया तक पहुँचते दोपहर हो गई। थकान से उत्पन्न स्वेद कणों से माधवी का मुखड़ा शिथिल जान पड़ रहा था। लेकिन कुटिया देख बह सारी थकान भूल गई। गालव, तुम तो साक्षात विश्वकर्मा हो। गालव भी मुस्कुराने लगा-'स्वागत है मेरे मन की साम्राज्ञी।'

दोनों ने पास बहती नदी में स्नान कर संध्या वंदन किया, फिर कुटिया में प्रवेश कर मार्ग से खरीदे भोजन को ग्रहण कर तनिक भी विलंब न कर भूमि पर बिछी चटाई पर स्वयं के शरीर को निढाल छोड़ दिया। गालव माधवी से बात करना चाहता था। किंतु माधवी की पलकें नींद से बोझिल हो रही थीं, कदाचित नींद तो एक बहाना था। उसका हृदय पुत्र वियोग से व्याकुल हो रहा था।(पृ.89)

माधवी के निर्णय से प्रसन्न हैं यह पेज 97 पर लिखा है संतोष जी ने- सहसा कक्ष में सन्नाटा छा गया। अवाक था गालव और मन ही मन माधवी के इस निर्णय से प्रसन्न थे विश्वामित्र। विश्वामित्र जो मेनका के रूप सौंदर्य पर मुग्ध हो तपस्या करना भूल गए थे। इंद्र के द्वारा उनका तप भंग करने भेजी गई अप्सरा मेनका को जल क्रीड़ा करते देख विश्वामित्र सूर्य को अर्घ्य देना भूल गए थे। भूल गए थे कि वह अपने कमंडल में अर्घ्य के लिए जल लेने ही तो आए थे। आखिर स्त्री को देख क्यों डगमगा जाते हैं बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, राजा-महाराजा। विश्वामित्र और मेनका की पुत्री शकुंतला को देखकर दुष्यंत भी भूल गए थे आखेट करना। यह कैसा स्त्री देह का सम्मोहन है। सोच रही थी माधवी। शेष गुरु दक्षिणा को क्षमा कर देने की गालव के साथ बनी योजनाओं को विश्वामित्र के बस एक वाक्य से ठुकरा दिया था माधवी ने।
और वह वाक्य क्या है इसका समाधान आपको मिलेगा 'कर्म से तपोवन तक' में।

पेज 117 पढ़ते हुए आपको भी लगेगा कि किस तरह की समस्याओं से माधवी को गुजरना पड़ा।
बहुत स्पष्ट है माधवी। अब तुम मेरी गुरुमाता हो। मेरे गुरु विश्वामित्र के पुत्र की माता। हम कैसे विवाह कर सकते हैं। यह अनर्थ होगा। पाप होगा। जहाँ की तहाँ ठिठक गई माधवी। यह किस तरह का कथन है गालव का। जहाँ प्रेम की आँच तो छोड़ो एक चिंगारी तक नहीं। तो क्या गालव ने भी उसे अन्य पुरुषों की तरह मात्र भोग की वस्तु समझता है। अभी तक वह गालव के प्रति प्रेम, अनुराग के भावों से भरी थी। अब जैसे उन भावों के मेघों में दामिनी सी कौंधी- 'ओह तो अब तुम पाप-पुण्य की व्याख्या भी करने लगे? तब तुम्हारे संस्कार कहाँ थे जब तुमने मुझे एक के बाद एक चार पुरुषों के हवाले किया था। हालाँकि यह आश्रम में तैयार किया स्वयंवर मंडप है और वह वानप्रस्थ ग्रहण किये पिताश्री की पुत्री। किंतु है तो वह राजमहलों की निवासिनी। वासवदत्ता रंग का रेशमी परिधान मानो सूर्य रश्मियों को बिखरते सरोवर पर उगता हुआ श्वेत कमल पुष्प। उसके कक्ष में माता शर्मिष्ठा ने आभूषणों से भरा थाल भिजवाया था। यह सोचकर कि वह राजपुत्री है अत: उसे जो भी आभूषण पसंद आयें पहनेगी।

वनस्थली में निर्मित स्वयंवर के लिए तैयार किया मंडप ऐसा लग रहा था मानो स्वयं विश्वकर्मा ने अपने हाथों से निर्मित किया हो। मंडप में सभी निमंत्रित महानुभावों के लिए अनुकूल आसन थे। किंतु वानप्रस्थ ग्रहण किये राजा ययाति और शर्मिष्ठा कुशासन पर विराजमान थे। धूप दीप से मंडप सुगंधित हो जगमगा रहा था। माधवी को सखियों ने सोलह श्रृंगार से सजाया था। (पेज 125)
संतोष जी की इस पुस्तक में चंद्रबिंदु का ध्यान नहीं रखा गया है पर मैंने अक्षरा के अनुरूप आवश्यकतानुसार प्रयोग कर लिया है। अगले संग्रहणीय ग्रंथ की प्रतीक्षा में। अनेक शुभकामनाएँ।

द्वारा हिन्दी भवन
9826245286

SBI
हर भारतीय का बैंक

बैंकिंग इतनी आसान जैसे 1-2-3-4

बिलकुल आसान नंबर-1800-1234/1800-2100

मुख्य सेवाएँ

- खाता शेष एवं खाता संबंधित सेवाएँ
  खाता शेष एवं लेन-देन की जानकारी, खाता विवरणी
- एटीएम/डेबिट कार्ड सेवाएँ
  कार्ड ब्लॉक, दोबारा जारी करना, प्रेषण स्थिति, पिन बनाना/बदलना
- चेक बुक सेवाएँ
  प्रेषण स्थिति, नई चेक बुक हेतु अनुरोध
- डिजिटल बैंकिंग सहायता
  योनो, इंटरनेट बैंकिंग
- अन्य सेवाएँ
  टीडीएस विवरण एवं जमा ब्याज प्रमाण पत्र, शिकायत की स्थिति

....और भी बहुत कुछ

हमारे नवीनीकृत संपर्क केंद्र का शुभारंभ

आज़ादी का अमृत महोत्सव

अन्य टॉल फ्री नंबर: 1800-11-2211, 1800-425-3800

bank.sbi

नरेन्द्र मोदी, प्रधानमंत्री

डॉ. मोहन यादव, मुख्यमंत्री

सेवा के 60 दिन अविराम
लक्ष्य हमारा जन कल्याण

मोदी जी की हर गारंटी को पूरा कर रही मध्यप्रदेश की डबल इंजन सरकार

"मध्यप्रदेश सरकार प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा बताए गए मार्ग पर चलते हुए गरीबों के कल्याण, किसानों के सम्मान, युवाओं के उत्थान और महिलाओं के स्वाभिमान के लिए पूर्ण रूप से समर्पित और कृत संकल्पित है।"

-डॉ. मोहन यादव, मुख्यमंत्री

गरीब कल्याण

- विकसित भारत संकल्प यात्रा के माध्यम से 50 लाख से अधिक शासकीय योजनाओं के लाभ से वंचित लोग लाभांवित
- पीएम जन-मन योजना से जनजातीय समाज को शासकीय योजनाओं का शत-प्रतिशत लाभ सुनिश्चित। विशेष पिछड़ी जनजाति बहुल जिलों में रु. 7300 करोड़ से आंगनवाड़ी केन्द्र, छात्रावास, सड़कें, पुल और आवासों के निर्माण का निर्णय
- 56 लाख से अधिक हितग्राहियों को रु. 681 करोड़ की सामाजिक सुरक्षा पेंशन का अंतरण
- स्वामित्व योजना में 1.75 लाख ग्रामीण नागरिकों को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा भू-अधिकार पत्र वितरित

शिक्षा एवं रोज़गार

- प्रधानमंत्री जी द्वारा रु. 170 करोड़ की लागत से खरगोन में क्रांतिसूर्य टंट्या भील विश्वविद्यालय की स्थापना की घोषणा
- प्रत्येक जिले में एक शासकीय महाविद्यालय का पीएम उत्कृष्टता महाविद्यालय के रूप में उन्नयन का निर्णय
- आगर-मालवा में नया विधि महाविद्यालय, सागर में रानी अवंती बाई लोधी विश्वविद्यालय तथा गुना में तात्या टोपे विश्वविद्यालय की स्थापना का निर्णय
- मध्यप्रदेश उच्च शिक्षा में 28.9% सकल नामांकन के साथ अनुपात में राष्ट्रीय औसत से आगे निकला
- रोज़गार दिवस के अंतर्गत रिकॉर्ड 7 लाख से अधिक युवाओं को रु. 5 हजार करोड़ से अधिक का स्व-रोज़गार ऋण वितरित
- स्टार्ट-अप्स को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आयोजनों में सहभागिता के लिए वित्तीय सहायता
- अग्निवीर योजना के लिये युवाओं को 360 घंटे प्रशिक्षण देने का निर्णय लिया गया

महिला सशक्तिकरण

- प्रदेश की 1.29 करोड़ लाड़ली बहनों को रु. 3152 करोड़ की सहायता का अंतरण
- आहार अनुदान योजना में विशेष पिछड़ी जनजाति की 1.97 लाख बहनों को रु. 59 करोड़ की सहायता
- 45 लाख से अधिक बहनों को गैस सिलेंडर रीफिलिंग के लिए रु. 118 करोड़ का अंतरण

स्वास्थ्य

- दूरस्थ क्षेत्रों के गंभीर मरीजों के लिये मुख्यमंत्री एयर एम्बुलेंस सेवा शुरू करने का निर्णय
- सागर, शहडोल, नर्मदापुरम, धार, झाबुआ, मण्डला, बालाघाट, श्योपुर और खजुराहो में नये आयुर्वेदिक महाविद्यालयों की स्थापना का निर्णय

किसान कल्याण

- श्रीअन्न को बढ़ावा देने के लिए रानी दुर्गावती श्रीअन्न प्रोत्साहन योजना में मिलेट्स उत्पादक किसानों को रु. 1000 प्रति क्विंटल का अतिरिक्त प्रोत्साहन
- शून्य ब्याज दर पर ऋण योजना को जारी रखने का निर्णय

अधोसंरचना विकास

- पार्वती-कालीसिंध-चंबल लिंक परियोजना की स्वीकृति से चंबल और मालवा के 13 जिलों के 3 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में सिंचाई में वृद्धि से लगभग 1.5 करोड़ आबादी को मिलेगा लाभ
- रु. 10 हजार करोड़ की लागत से 724 कि.मी. लंबी 24 सड़क परियोजनाओं का लोकार्पण एवं शिलान्यास। व्यापार, कृषि, पर्यटन, उद्योग, तीर्थाटन को बढ़ावा
- ग्वालियर-बेंगलुरु, ग्वालियर-अहमदाबाद और ग्वालियर-दिल्ली-अयोध्या विमान सेवा प्रारंभ
- इंदौर में रु. 350 करोड़ लागत से निर्मित होने वाले एलिवेटेड कॉरिडोर से मिलेगी आमजन को सुविधा
- उज्जैन में एक नये अत्याधुनिक एयरपोर्ट की स्थापना का निर्णय
- प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा मध्यप्रदेश के विकास को गति देने के लिए रु. 7550 करोड़ की नई परियोजनाओं का लोकार्पण एवं शिलान्यास

आध्यात्मिक अभ्युदय

- 1450 कि.मी. लम्बे श्रीराम वन पथ गमन के निर्माण का निर्णय
- ओरछा में भव्य श्रीराम राजा लोक का होगा निर्माण
- उज्जैन में भव्य रूप से विक्रमोत्सव के आयोजन का निर्णय
- मुख्यमंत्री हेली पर्यटन योजना के माध्यम से विभिन्न पर्यटक स्थलों एवं धार्मिक स्थलों पर हेलीकॉप्टर प्रारंभ करने का निर्णय

मध्यप्रदेश शासन

मध्यप्रदेश जनसम्पर्क द्वारा जारी

आकल्पन : म.प्र. माध्यम/2024

अमृता प्रीतम

जन्म - 31 अगस्त 1919

प्रयाण - 31 अक्टूबर 2005

शहर

मेरा शहर एक लम्बी बहस की तरह है
सड़कें - बेतुकी दलीलों-सी...
और गलियाँ इस तरह
जैसे एक बात को कोई इधर घसीटता कोई उधर

हर मकान एक मुट्ठी-सा भिंचा हुआ
दीवारें-किचकिचाती सी
और नालियाँ, ज्यों मुँह से झाग बहता है

यह बहस जाने सूरज से शुरू हुई थी
जो उसे देख कर यह और गरमाती
और हर द्वार के मुँह से
फिर साईकिलों और स्कूटरों के पहिये
गालियों की तरह निकलते
और घंटियाँ-हार्न एक दूसरे पर झपटते

जो भी बच्चा इस शहर में जनमता
पूछता कि किस बात पर यह बहस हो रही ?
फिर उसका प्रश्न ही एक बहस बनता
बहस से निकलता, बहस में मिलता...
शंख घंटों के साँस सूखते
रात आती, फिर टपकती और चली जाती
पर नींद में भी बहस ख़तम न होती
मेरा शहर एक लम्बी बहस की तरह है...

कुफ़्र

आज हमने एक दुनिया बेची
और एक दीन ख़रीद लिया
हमने कुफ़्र की बात की

सपनों का एक थान बुना था
एक गज़ कपड़ा फाड़ लिया
और उम्र की चोली सी ली

आज हमने आसमान के घड़े से
बादल का एक ढकना उतारा
और एक घूँट चाँदनी पी ली

यह जो एक घड़ी हमने
मौत से उधार ली है
गीतों से इसका दाम चुका देंगे

पहचान

तुम मिले
तो कई जन्म
मेरी नब्ज़ में धड़के
तो मेरी साँसों ने तुम्हारी साँसों का घूँट पिया
तब मस्तक में कई काल पलट गए...

एक गुफा हुआ करती थी
जहाँ मैं थी और एक योगी
योगी ने जब बाजुओं में लेकर
मेरी साँसों को छुआ
तब अल्लाह क़सम !
यही महक थी जो उसके होठों से आई थी...
यह कैसी माया कैसी लीला
कि शायद तुम ही कभी वह योगी थे
या वही योगी है...
जो तुम्हारी सूरत में मेरे पास आया है
और वही मैं हूँ... और वही महक है...

एक मुलाक़ात

मैं चुप शान्त और अडोल खड़ी थी
सिर्फ पास बहते समुन्द्र में तूफान था...
फिर समुन्द्र को खुदा जाने क्या ख्याल आया
उसने तूफान की एक पोटली सी बाँधी
मेरे हाथों में थमाई
और हँस कर कुछ दूर हो गया
हैरान थी...
पर उसका चमत्कार ले लिया
पता था कि इस प्रकार की घटना
कभी सदियों में होती है...

लाखों ख्याल आये
माथे में झिलमिलाये

पर खड़ी रह गयी कि उसको उठा कर
अब अपने शहर में कैसे जाऊँगी ?

मेरे शहर की हर गली सँकरी
मेरे शहर की हर छत नीची
मेरे शहर की हर दीवार चुगली

सोचा कि अगर तू कहीं मिले
तो समुन्द्र की तरह
इसे छाती पर रख कर

हम दो किनारों की तरह हँस सकते थे
और नीची छतोंऔर सँकरी गलियों
के शहर में बस सकते थे...
पर सारी दोपहर तुझे ढूँढ़ते बीती
और अपनी आग का मैंने
आप ही घूँट पिया

मैं अकेला किनारा
किनारे को गिरा दिया
और जब दिन ढलने को था
समुन्द्र का तूफान
समुन्द्र को लौटा दिया...

अब रात घिरने लगी तो तू मिला है
तू भी उदास, चुप, शान्त और अडोल
मैं भी उदास, चुप, शान्त और अडोल
सिर्फ- दूर बहते समुन्द्र में तूफान है...

बैंक ऑफ़ बड़ौदा
Bank of Baroda

साथ होने का लाभ

बॉब परिवार खाता

मेरा परिवार, मेरा बैंक

पूरे परिवार द्वारा संयुक्त रूप से रखे जाने वाले जमा शेष के आधार पर परिवार के प्रत्येक सदस्य को लाभ

होम और कार लोन पर ब्याज दर में छूट

अधिक जानकारी के लिये स्कैन करें

*नियम व शर्तें लागू

www.bankofbaroda.in | हमें फॉलो करें: | 1800 5700 / 1800 5000

प्रेषक, प्रकाशक, मुद्रक कैलाशचन्द्र पंत, भोपाल द्वारा, स्वत्वाधिकारी मध्य प्रदेश राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, श्यामला हिल्स, भोपाल से प्रकाशित एवं श्रेया ऑफसेट, 4 लाजपत भवन, जोन-1, एम.पी.नगर, भोपाल से मुद्रित।